



ऐच्छिक हिन्दी—III

Editor

Dr. Vinod Kumar

Printed by
EXCEL BOOKS PRIVATE LIMITED
A-45, Naraina, Phase-I,
New Delhi-110028
for
Lovely Professional University
Phagwara

पाठ्यविवरण
ऐच्छिक हिन्दी—III

उद्देश्य:

- विद्यार्थियों की हिन्दी भाषा और साहित्य में रूचि पैदा करना।
- विद्यार्थियों को भाषा की मौखिक और लिखित अभिव्यक्ति में कुशल बनाना।
- विद्यार्थियों को व्याकरणिक नियमों और सिद्धांतों का व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करना।
- विद्यार्थियों को काव्य के स्वरूप का ज्ञान प्रदान करना।

Sr. No.	Content
1	हिन्दी साहित्य: भोक्तकाल को पारोस्थोतयो
2	भोक्तकाल को सामोन्य प्रवृत्तयो
3	भोक्त के प्रमुख भेद: सगुण भोक्त धरल।भोक्त के प्रमुख भेद: नलगुण भोक्त धरल।
4	सत कल्य के प्रमुख कलवे: कबीर और उनका कल्य।
5	सूफो कल्य के प्रमुख कलवे: जलयसी और उनका कल्य।
6	रलम कल्य के प्रमुख कलवे: तुलसीदलस और उनका कल्य।
7	कृष्ण कल्य के प्रमुख कलवे: सूरदलस और उनका कल्य।
8	भोक्तकलल: एक स्वणे युग के रूप में।
9	मेंरी सवेस्रष्ठ कहलनेयो: जैनन्द्र। जैनन्द्र वल्योक्तत्व और कृतत्व
10	कहलनेयो को समीक्षल।

Content

Unit 1:	हिन्दी साहित्य: भक्तिकाल की परिस्थितियाँ <i>Vinod Kumar, Lovely Professional University</i>	1
Unit 2:	भक्तिकाल की सामान्य प्रवृत्तियाँ <i>Reeta Singh, Lovely Professional University</i>	6
Unit 3:	भक्ति के प्रमुख भेद – सगुण भक्ति धारा <i>Vinod Kumar, Lovely Professional University</i>	14
Unit 4:	भक्ति के प्रमुख भेद – निर्गुण भक्ति धारा <i>Hardeep Kaur, Lovely Professional University</i>	22
Unit 5:	संत काव्य के प्रमुख कवि: कबीर और उनका काव्य <i>Vinod Kumar, Lovely Professional University</i>	34
Unit 6:	सूफी काव्य के प्रमुख कवि: जायसी और उनका काव्य <i>Reeta Singh, Lovely Professional University</i>	43
Unit 7:	राम काव्य के प्रमुख कवि: तुलसीदास और उनका काव्य <i>Reeta Singh, Lovely Professional University</i>	54
Unit 8:	कृष्ण काव्य के प्रमुख कवि: सूरदास और उनका काव्य <i>Hardeep Kaur, Lovely Professional University</i>	62
Unit 9:	भक्तिकाल स्वर्ण युग के रूप में <i>Vinod Kumar, Lovely Professional University</i>	70
Unit 10:	मेरी सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ – जैनेन्द्र <i>Reeta Singh, Lovely Professional University</i>	75
Unit 11:	जैनेन्द्र – व्यक्तित्व एवं कृतित्व <i>Vinod Kumar, Lovely Professional University</i>	112
Unit 12:	कहानियों की समीक्षा <i>Vinod Kumar, Lovely Professional University</i>	129

इकाई 1: हिन्दी साहित्य: भक्तिकाल की परिस्थितियाँ

Notes

अनुक्रमणिका (CONTENTS)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

1.1 हिन्दी साहित्य का प्रमुख काल – भक्तिकाल (सं. 1375 से सं. 1700 तक)

1.1.1 राजनीतिक परिस्थितियाँ

1.1.2 धार्मिक परिस्थितियाँ

1.1.3 साहित्यिक परिस्थितियाँ

1.1.4 सामाजिक परिस्थितियाँ

1.2 सारांश (Summary)

1.3 शब्दकोश (Keywords)

1.4 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी:

- हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- भक्तिकाल (पूर्व मध्यकाल) की परिस्थितियों को जानेंगे।
- भक्तिकाल की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियों को समझेंगे।

प्रस्तावना (Introduction)

हिन्दी साहित्य गुणवत्ता एवं परिणाम की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण रहा है। सामान्यतः हिन्दी साहित्य को तीन भागों में विभक्त किया गया है— आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल।

पूर्व मध्यकाल को भक्तिकाल (सं. 1375–1700) के नाम से जाना जाता है। हिन्दी साहित्य के सन्दर्भ में भक्तिकाल से तात्पर्य उस काल से है जिसमें मुख्यतः भागवत धर्म के प्रचार तथा प्रसार के परिणामस्वरूप भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात हुआ और उसकी लोकोन्मुखी प्रवृत्ति के कारण धीरे-धीरे भक्ति विषयक साहित्य की बाढ़-सी आ गई।

1.1 हिन्दी साहित्य का प्रमुख काल - भक्तिकाल (सं. 1375 से सं. 1700 तक)

किसी भी युग का साहित्य एवं साहित्यकार तत्कालीन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी का मानना है कि 'प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है'। जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के रूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थितियों के अनुसार होती है।

1.1.1 राजनीतिक परिस्थितियाँ

राजनीतिक इतिहास की दृष्टि से भक्तिकाल को हम दो भागों में बांट सकते हैं। पहले भाग में तुगलक और लोधी वंश का शासन दिल्ली पर रहा (सं० 1375 से सं० 1526 तक) और दूसरे भाग में मुगल वंश के बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहांगीर और शाहजहाँ का शासन रहा (सं० 1526 से सं० 1700 तक)। इस दृष्टि से यह काल विशुद्ध, अशान्त तथा संघर्षमय काल कहा जा सकता है।

पृथ्वीराज चौहान की मृत्यु के पश्चात् भारत में कोई भी दृढ़ हिन्दू राज्य नहीं रह गया था। परिणामतः मुहम्मद गौरी ने यहाँ शासन करने की ठानी, जबकि इससे पूर्व सभी मुसलमान आक्रमणकारी लूट मार कर के लौट जाते थे। कुतुबुद्दीन ऐबक ने यहाँ गुलामवंश की नींव रखी फिर खिलजी वंश के अलाउद्दीन ने केन्द्रीय शासन को सुदृढ़ बनाने का प्रयत्न किया। किन्तु उसके आँख मूँदते ही बहुत से हिन्दू राजा उठ खड़े हुए और उन्होंने अपने-अपने राज्यों की स्थापना की और 15वीं शताब्दी तक पहुँचते-पहुँचते राजपूताना एक प्रमुख शक्ति बन गया। 1526 में पानीपत के मैदान में बाबर ने इब्राहीम लोधी को पराजित करके मुगल शासन की नींव डाली जिसके अकबर, जहांगीर और शाहजहाँ बड़े पराक्रमी शासक हुए।

निःसन्देह इस काल में कतिपय कट्टर तथा साम्प्रदायिक मुस्लिम शासकों द्वारा हिन्दू जनता पर अकथनीय अत्याचार भी ढाये गए किन्तु सभी विदेशी संकीर्ण हृदय थे, ऐसी बात नहीं। इसके साथ-साथ मुस्लिम प्रजा भी विशेष सुखी नहीं थी। धर्म के आधार पर शिया और सुन्नी लोगों में विद्वेष की आग सदा सुलगती रही। अरबी, तुर्की, ईरान तथा अफगान आदि मुसलमान आपस में सदा जलते रहते थे। शासक वर्ग में भी राज्य में निर्मम हत्याओं का सिलसिला चलता रहा। अलतमश के सिर पर आरामशाह का खून है। रजिया तथा नसरुद्दीन ने अपने कई भाइयों को पद से वंचित करके राज्य प्राप्त किया। रजिया और उसके प्रेमी का वध हुआ। अलाउद्दीन खिलजी ने अपने चाचा और मुहम्मद तुगलक ने अपने पिता की हत्या करके राज्य प्राप्त किया। अलाउद्दीन की मलिक काफूर के द्वारा मृत्यु हुई। सिकन्दर लोधी ने अपने भाई को ठिकाने लगाया। मुगल सम्राटों में शहजादा खुर्रम को अपने कुल के बहुत से आदमियों को ठिकाने लगाना पड़ा और औरंगजेब ने राज्य-प्राप्ति के लिए क्या कुछ नहीं किया। अकबर, जहांगीर और शाहजहाँ के समय को छोड़कर मुस्लिम-काल का शेष सारा समय मारकाट, गृह-कलह, विदेशी आक्रमणों के आतंक तथा युद्ध का काल रहा है।



Note

भक्तिकाल के चार कवियों – कबीर, जायसी, तुलसी और सूर की वर्ण्य सामाग्री युग के राजनीतिक वातावरण के प्रतिकूल है।

1.1.2 धार्मिक परिस्थितियाँ

ऐसी बात भी नहीं है कि सभी मुसलमान शासक हिन्दुओं के प्रति अनुदार और असहिष्णु रहे हों। “बहुत से मुस्लिम शासकों ने संस्कृत तथा देशी भाषाओं के साहित्य, संगीत और कला को प्रोत्साहन दिया। कश्मीर के जैनुलाबुद्दीन के प्रोत्साहन से जोनराज ने संस्कृत में दूसरी राजतरंगिणी लिखी। जौनपुर के सुल्तानों ने शास्त्रीय संगीत का पुनरुद्धार करवाया और “संगीत शिरोमणि” नामक ग्रंथ संस्कृत में तैयार हुआ। हुसैन शाह बंगाली ने ‘महाभारत’ और ‘भागवत’ का बंगाली में अनुवाद करवाया।” सच यह है कि अधिकांश मुसलमान शासक भारतीय थे।

इन मुसलमान शासकों के अधिकांश मन्त्री और सलाहकार हिन्दू थे। “हुसैन शाह बंगाली का मन्त्री गोपीनाथ वसु था। कश्मीर के सुलतान शहाबुद्दीन के मुख्यमंत्री उदय श्री और चंद्रडामर थे। वहीं के सुलतान सिकन्दर का मन्त्री सुह भट्ट ब्राह्मण था जो कि मूर्ति-पूजा का विरोधी था। उसने कई मन्दिरों की मूर्तियाँ तुड़वा दी थी। इस करतूत के कारण वह सिकन्दर बुतशिकन के नाम से प्रसिद्ध हुआ परन्तु उसके बेटे जैनुलाबुद्दीन ने उन मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया। उस समय हिन्दू शासकों के द्वारा भी साहित्य, संगीत तथा अन्य ललित कलाओं को प्रोत्साहन मिला। इसमें विजयनगर के राजाओं और मेवाड़ के राणा कुम्भा का विशिष्ट स्थान है।” अकबर और उसके वंशजों के प्रशासन में हिन्दी को बराबर आश्रय मिलता रहा। हिन्दू धर्म के कट्टर विरोधी औरंगजेब ने भी अपने दरबार में हिन्दी कवियों को स्थान दिया था। सुना जाता है कि उसने स्वयं भी हिन्दी में कविता की थी।

1.1.3 साहित्यिक परिस्थितियाँ

कोई भी साहित्य तत्कालीन साहित्यिक परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता है किन्तु भक्तिकालीन साहित्य इस बात का अपवाद है। भक्तिकाल के प्रमुख चार कवियों – कबीर, जायसी, तुलसी और सूर की वर्ण्य सामग्री युग के राजनीतिक वातावरण के प्रतिकूल है। उन्हें न तो सीकरी से काम था और न प्राकृत जन गुन-गान से सरोकार था। इन भक्तों की वाणी धर्म और शान्ति प्रधान रही।

भक्ति की लहर दक्षिण से आई। शंकर से बहुत पहले दक्षिण देश में आलवार सन्तों द्वारा भक्ति का प्रसार एवं प्रचार हुआ। शंकर ने बौद्ध धर्म के विरोध में अद्वैतवाद का प्रचार किया। इसकी प्रतिक्रिया में अनेक दार्शनिक संप्रदाय चल निकले जिनमें नारायण की भक्ति पर विशेष बल दिया गया और जनता को भक्ति का स्थूल आश्रय मिला। उनमें विष्णु के अवतारों – राम और कृष्ण की कल्पना हुई। रामानन्द ने भक्ति का द्वार सबके लिए खोला और जन-भाषा में अपने सिद्धांतों का प्रचार किया। इनसे पूर्व के आचार्यों ने संस्कृत में अपने सिद्धांतों का प्रचार किया था और उनके उपदेश सुसंस्कृत जनता तक ही सीमित थे। रामानन्द ने तुलसी के लिए बहुत से मार्ग प्रशस्त कर दिये। मन और कर्म की शुद्धता और रामभजन तुलसी की भक्ति का निचोड़ कहे जा सकते हैं।



Task

भक्तिकाल की राजनीतिक और साहित्यिक परिस्थितियों का वर्णन करें।

Notes

1.1.4 सामाजिक परिस्थितियाँ

विष्णु के दूसरे अवतार श्रीकृष्ण की उपासना के विविध भेद और उपभेद लेकर चलते हुए अनेक संप्रदायों ने भी इस भूभाग को काफी प्रभावित किया। महाभारत में वर्णित दुष्टों के संहारक, अधर्म विनाशक तथा धर्म-रक्षक कृष्ण का महाभारतीय लोकरक्षक रूप ग्रहण न करके भागवत के दशम स्कन्ध में वर्णित कृष्ण के रूप का वर्णन किया गया और इस रूप की आध्यात्मिक व्याख्या करके इसे अलौकिक रूप दिया गया, किन्तु इसमें भी शनैः-शनैः भोग प्रधान मानसिक तृप्ति के उपादानों का समावेश होता गया, लोग तेजी से इधर झुके। इस युग में इनके जो उद्गार निकले उनमें भक्ति की आड़ में कुछ विलास-वासना छिपी रही, किन्तु आगे चलकर तो इसने कृष्ण को रसिया तथा छैला का रूप दे डाला।

इधर भारत में मुसलमानों के आक्रमण से पूर्व ही सूफियों ने यहां इस्लामी वातावरण तैयार कर दिया था और कुछ संप्रदाय खड़े कर लिये थे। इन्होंने भारतीय अद्वैतवाद को अपने ढंग से अपनाया और प्रेम-स्वरूप निराकार ईश्वर का प्रचार किया। इन पर योग का प्रभाव भी स्पष्ट है। ये लोग इस्लाम को छोड़े बिना यहां के नाथ संप्रदाय तथा एकेश्वरवादी विचारों को अपनाते हुए समन्वय करने में अग्रसर हुए तथा हिन्दू-मुस्लिम हृदयों के अजनबीपन को मिटाया। तुलसीदास ने 'उपखान' शब्द में कदाचित् इन्हीं की ओर संकेत किया है।

बहुतेरे हिन्दू विविध कारणों से स्वेच्छया मुसलमान बने होंगे। सभी मुसलमान बादशाह इस्लाम को तलवार के बल पर फैलाने के पक्ष में नहीं थे। फिरोज तुगलक, सिकन्दर बुतशिकन और सिकन्दर लोधी जैसे धर्मात्माओं के साथ ही जैनुलाबुद्दीन, हुसैनशाह बंगाली और शेरशाह जैसे उदारचरित शासक भी थे। कहीं-कहीं हिन्दू मुसलमान कन्याओं को ब्याह लेते थे परन्तु अपना धर्म बनाए रहते थे। कदाचित् शाहजहाँ को इसलिए फरमान निकालना पड़ा था कि मुसलमान युवती को ग्रहण करने वाले हिन्दू को मुसलमान होना ही होगा। कदाचित् इसी कारण हिन्दुओं में जाति-पाति की कट्टरता बढ़ी। विलासी मुस्लिम अधिकारियों की सस्ती रसिकता से रक्षा पाने के लिए हिन्दू, मुसलमानों में जात-पात और शादी-ब्याह के नियम और कड़े हो गये।

स्व:मूल्यांकन

रिक्त स्थान भरें:

1. भक्तिकाल का समय सम्वत् से सम्वत् तक रहा।
2. भक्तिकाल में राजनीतिक इतिहास की दृष्टि से पहले भाग में तथा वंश और दूसरे भाग में वंश का शासन रहा।
3. शंकर ने के विरोध में का प्रचार किया।

1.2 सारांश (Summary)

- साहित्यिक साक्ष्य के आधार पर भक्तिकाल का निर्धारण सं. 1375 से स. 1700 तक किया गया है। इस काल में भागवत धर्म के प्रचार तथा प्रसार के परिणामस्वरूप भक्ति आंदोलन का सूत्रपात हुआ।

- हिन्दी साहित्य में भक्ति आंदोलन का प्रारंभ दक्षिण भारत के आलवार भक्तों की परंपरा में हुआ। उत्तर भारत की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों ने इस आंदोलन के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। मुस्लिम शासकों की धर्मांधता और इस्लाम के प्रचार एवं धार्मिक नीति ने भी उत्तर भारत में जनता में भक्ति भाव को दृढ़ता प्रदान की।
- सभी विचारकों ने छन्दोबद्ध गद्य की रचना की। संस्कृत में इस संबंध में टीकाओं, व्याख्याओं की सृष्टि हुई। कबीर, जायसी, सूर, तुलसी जैसे भावुक कवि भी इससे अछूते नहीं रहे।

1.3 शब्दकोश (Keywords)

पथ-प्रदर्शन: रास्ता दिखाना, मार्ग बतलाना।

विद्यमान: मौजूद, उपस्थित।

समीपस्थ: नजदीक, पास में होना।

1.4 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. भक्तिकाल की परिस्थितियों पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।
2. पूर्व मध्यकाल अथवा भक्तिकाल की राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियों का संक्षेप में वर्णन करें।

उत्तर: स्व:मूल्यांकन

1. 1375, 1700
2. तुगलक, लोधी, मुगल
3. बौद्ध धर्म, अद्वैतवाद

1.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



Books

हिन्दी साहित्य का इतिहास – शुक्ल आचार्य रामचंद्र, पंचशील प्रकाशन।

हिन्दी साहित्य का समग्र इतिहास – शर्मा रमेशचंद्र, विद्या प्रकाशन, कानपुर।

हिन्दी साहित्य का इतिहास – द्विवेदी हजारीप्रसाद, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्।

इकाई 2: भक्तिकाल की सामान्य प्रवृत्तियाँ

अनुक्रमणिका (CONTENTS)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

2.1 प्रवृत्तिगत पृष्ठभूमि

2.2 भक्तिकालीन साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियाँ

2.3 भक्तिकाल की सामान्य प्रवृत्तियाँ

2.4 सारांश (Summary)

2.5 शब्दकोश (Keywords)

2.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

2.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी:

- भक्तिकाल की सामान्य प्रवृत्तियों की पृष्ठभूमि की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- भक्तिकाल की सामान्य प्रवृत्तियों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे।

प्रस्तावना (Introduction)

भक्ति आंदोलन वैष्णव आचार्यों का आश्रय पाकर काफी तेज़ी से उत्तर भारत में बढ़ने लगा। संत कवियों और सूफी कवियों ने निर्गुण भक्ति धारा द्वारा हिन्दु-मुसलमानों में एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया। सूरदास, तुलसीदास, कबीर, गुरूनानक देव जी, दादू, मलूक तथा जायसी निर्गुण धारा के कवियों ने इस दिशा में अपना काफी योगदान दिया। तुलसीदासकृत 'रामचरितमानस', सूफी कवि जायसीकृत 'पद्मावत' जैसा कोई दूसरा काव्य नहीं मिलता।

2.1 प्रवृत्तिगत पृष्ठभूमि

पूर्व-मध्यकालीन भक्तिकाव्य का आरम्भ होने के पहले से ही प्रान्तीय भाषाएँ अपने-अपने अपभ्रंशों का अनुसरण करते हुए हिन्दी के समानान्तर साहित्य-रचना में प्रवृत्त थीं। इनमें वर्ण्य विषयों, काव्य-रूपों तथा रचना-शैलियों की विविध परम्पराएँ प्रचलित थीं जो अनगढ़, अटपटी और ऊटपटांग लगती थीं। इनमें नवीन संस्कार और निखार का आना समय-सापेक्ष था। इनमें वर्ण्य विषय या तो प्रचलित धर्मों से संबंधित थे या लोकोन्मुखी साहित्य-सर्जन की प्रवृत्ति अपेक्षाकृत अधिक मुखर थी। परन्तु भक्तिकाव्य

की रचना होते-होते इनमें नवीन प्रवृत्तियाँ प्रवेश पाने लगीं और सुधार के साथ-साथ परिष्कार के भी लक्षण प्रकट होने लगे। तदनुसार सिद्धों, मुनियों, नाथों तथा सूफियों की प्रचलित परम्पराओं का विकास होने लगा और साहित्य-निर्माण की नवीन पद्धतियों तथा प्रवृत्तियों के रूप उभरने लगे। इस प्रकार की प्रवृत्तियों को अग्रसर करने में, मध्यदेशीय भाषा होने के कारण, हिन्दी स्वभावतः आगे रही। प्रस्तुत सन्दर्भ में हिन्दी-पूर्व परम्पराओं का भी सामान्य परिचय पा लेना तत्कालीन प्रवृत्तियों को समझने में सहायक हो सकता है।



Did u know? भक्तिकाल में सिद्धों, नाथों और सूफियों की परंपराओं का विकास होने लगा।

पालि, प्राकृत और अपभ्रंश की रचनाएँ जहाँ क्षीणतर पड़ती गयीं, वहीं संस्कृत का प्रयोग वेद-विरोधी वर्गों द्वारा भी मान्य समझा जाने लगा, और उसका न्यूनाधिक प्रयोग प्रायः सभी शिक्षित वर्गों द्वारा अनिवार्य-सा हो गया। तदनुसार संस्कृत भाषा के प्रयोग-प्रचार के साथ-साथ उसकी प्रचलित विधाओं का भी उपयोग होने लगा।

प्राकृत-साहित्य की रचना अपेक्षाकृत लोकोन्मुखी वातावरण में हुई। प्राकृत जहाँ बोलचाल की भाषा थी, वहीं जैन मतावलम्बियों के धार्मिक प्रचार-प्रसार का साधन भी बन चुकी थी। जैनधर्मियों ने प्राकृत को अपने मत-प्रचार का साधन बनाया और श्रृंगारपरक आख्यानों तथा काम-कथाओं का उपयोग शील-वैराग्य-भावना के प्रचार में किया जाने लगा। यह परम्परा बहुत-कुछ सूफियों जैसी थी। परन्तु शास्त्रीय साहित्य तथा चरितकाव्यों में अधिकतर संस्कृत की प्रचलित परम्पराओं का ही प्रभाव ग्रहण किया गया। प्राकृत-साहित्य में प्रचलित सूक्तियों के ही अनुकरण में कदाचित् 'दूहा' छंद का प्रचलन हुआ, जिसे बाद में 'साखियों' के लिए अपनाया गया।

अपभ्रंश-साहित्य में पूर्ववर्ती परम्पराओं के विकास के साथ-साथ लोक-प्रचलित अनन्य परम्पराओं का भी प्रवेश हुआ। जैन कवियों द्वारा रचित प्रबन्धकाव्यों के अन्तर्गत 'कहा', 'चरित', 'पुराण' आदि मिलते हैं और बौद्ध कवियों की रचनाओं में 'दोहे' और 'चर्यापद' प्रसिद्ध हैं। मुक्तक काव्यों के अनेक उदाहरण हमें जैन साहित्य में भी प्राप्त होते हैं, जिनमें 'चून्डी' उल्लेखनीय है। बौद्ध सिद्धों द्वारा अपनायी गयी शैली पर कदाचित् जैन-कवियों की मंगोलियन शैली का भी कुछ न कुछ प्रभाव है। यह शैली अनुभवाश्रयी निर्गुण कवियों तक में लोकप्रिय हुई – मुख्यतः गुरु-शिष्य संवाद-शैली उनकी अपनी विशेषता रहती आयी है। जिस प्रकार दोहों ने साखियों का रूप ग्रहण कर लिया, उसी प्रकार चर्यागीतों ने बानियों तथा सबदों का बाना धारण कर लिया। लोक-प्रचलित गीतों की परम्परा भी तत्कालीन फाग, चर्चरी, बारहमासा आदि के रूप में साहित्य रचना में पायी जाती है। इनका प्रयोग 'संदेशरासक' जैसी रचनाओं के अतिरिक्त सन्त-काव्य में भी हुआ है।

अपभ्रंश-साहित्य की रचना सातवीं से बारहवीं शताब्दी तक होती रही। पुरानी हिन्दी की रचनाएँ भी उससे प्रभावित रहीं। इसी काल के आसपास गुरु गोरखनाथ ने भी रचनाएँ प्रस्तुत कीं, जिनका स्पष्ट प्रभाव परवर्ती सन्त-साहित्य पर लक्षित हुआ। नाथ-साहित्य में जहाँ योग-साधना को विशेष महत्त्व मिला और निवृत्ति मार्ग का पक्ष प्रबल पड़ता दिखायी दिया, वहीं सन्त-साहित्य में भक्ति-भावना का स्वर मुखर हुआ और आत्मनिर्भरता से निर्मित प्रवृत्ति-पथ को भी प्रश्रय तथा प्रोत्साहन मिला। इन कवियों ने अपने मत-प्रचार में जैन कवियों की भाँति पौराणिक आख्यानों का उपयोग नहीं किया पर सूफी कवियों ने लोकप्रिय आख्यानों का आश्रय लेकर लाभ उठाया और अपने मत के प्रचार में उनका प्रेमाख्यानों के रूप में यथेष्ट प्रयोग किया। सन्तों ने बौद्ध सिद्धों और नाथ योगियों द्वारा स्वीकृत शैलियों को अपनाया।

Notes

अन्य कई दक्षिणात्य काव्य-शैलियां भक्ति-काव्य के माध्यम से हिन्दी-भक्तिकाव्य का अंग बन गयीं। सूफी कवियों द्वारा गृहीत अरबी-फारसी शैलियों का प्रभाव भी हिन्दी-रचनाओं पर पड़ा।

फारसी-साहित्य पर जहाँ इस्लाम की छाप पड़ी, वहीं अपनी विशेषताओं को भी सुरक्षित रखने का सजग प्रयास पाया गया। ईरानी संस्कृति में शिया-सम्प्रदाय का विशेष योगदान रहा है, जिसके फलस्वरूप उनकी अपनी विशेषताओं का प्रभाव फारसी-साहित्य पर पड़ना स्वाभाविक था। सूफी मत के आदर्शों के अनुकूल विषयों और रचना-शैलियों को प्रश्रय तथा प्रोत्साहन मिलने लगा। इस प्रकार एक नयी साहित्यिक परम्परा का सूत्रपात हुआ। फारसी-साहित्य की लोकप्रियता भारत में इतनी बढ़ी कि यहाँ के निवासियों ने भी उसकी अभिवृद्धि में रुचि लेना आरम्भ कर दिया और भारतीय ग्रन्थों तक के अनुवाद फारसी में होने लगे। फारसी-साहित्य में भारतीय विषयों का समावेश करनेवालों में अमीर खुसरो और फैजी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, जिनका अनुसरण कई परवर्ती कवियों ने किया। अब्दुल कुद्दूस गंगोही (मृत्यु 1537 ई०) ने तो कतिपय हिन्दी-मुक्तकों की शैली तक को अपनाया। फारसी-साहित्य के अनुकरण में मसनवी शैली भी हिन्दी में लोकप्रिय हुई। अपनी प्रवृत्तियों और परम्पराओं के कारण फारसी-साहित्य भारतीयों को अरबी-साहित्य से अधिक अनुकूल लगा और तदनुसार उसका प्रभाव भी पड़ा।

2.2 भक्तिकालीन साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियाँ

भक्तिकालीन साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियों का वर्णन इस प्रकार है:

1. **गुरु महिमा:** 'सन्त काव्य', 'प्रेम काव्य', 'राम भक्ति शाखा' तथा 'कृष्ण भक्ति साहित्य' में गुरु महिमा का समान रूप से प्रतिपादन मिलता है। जहाँ कबीर ने गुरु को गोविन्द से बड़ा बताया है वहीं जायसी का कहना है कि—“बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा।”
2. **भक्ति की प्रधानता:** इस काव्य की चारों काव्यधाराओं अर्थात् सन्त, प्रेम, राम तथा कृष्ण साहित्य में ईश्वरासन के लिए भक्ति पर समान बल दिया गया है। यद्यपि कबीर के ईश्वर निराकार हैं और वे ज्ञान मान्य हैं किन्तु, भक्ति के बिना उसकी प्राप्ति नहीं होती। भक्ति ज्ञान का प्रमुख साधन है—“हरि भक्ति जाने बिना बूड़ि मुआ संसार।”
3. **अहंकार का त्याग:** कबीर का कहना है कि मान और प्रेम विरोधी तत्त्व हैं। कबीर के शब्दों में:

प्रिया चाहे प्रेम रस राखा चाहे मान।

इक म्यान में दुइ खड्ग देखी सुनी न कान॥

सूर और तुलसी आत्मार्पण को भगवद्दर्शन के लिए अनिवार्य मानते हैं। सूर में अहं का इतना विगलन हो गया था कि उनकी वाणी से सहज ही फूट निकलता था—“प्रभु हो सब पतितन को टीकौ।” तुलसी के सेव्य-सेवक भाव में यत्र-तत्र दैन्य प्रस्फुटित हो उठता है—“सेव्य-सेवक भाव बिनु भव न तरिय उरगारि।”

4. **वीर काव्यों की रचना:** यद्यपि भक्तिकाल में धार्मिक काव्यों की प्रमुखता रही है किन्तु इसमें वीर काव्यधारा भी निरंतर चलती रही है। तुलसी तथा जायसी ने अपने प्रबन्ध काव्यों में प्रसंगवश वीररस का उल्लेख किया है। इस काल में भी आदिकाल की भांति वीर काव्यों की निरंतर रचना हुई, भले ही इसकी मात्रा कम है। ऐसे वीर काव्य प्रायः राजाश्रय में लिखे गये।



Task

भक्तिकाल साहित्य में भक्ति की प्रधानता पर नोट लिखें।

Notes

5. **प्रबन्धात्मक चरित काव्य:** भक्तिकाल में कुछ ऐसे चरित काव्यों के प्रणयन का पता मिलता है जो आदिकालीन जैन काव्यों या पौराणिक काव्यों की पद्धति पर विरचित हैं। इनमें जैन काव्यों तथा रासो काव्यों की शैलीगत प्रवृत्तियाँ देखी जा सकती हैं। सधारू अग्रवाल, शीलभद्र सूर, देवप्रभ सूरि और पदमनाभ आदि इस काल के प्रमुख चरित काव्यों के लेखक हैं।
6. **नीति काव्य:** भारतीय साहित्य में नीति काव्यों के निर्माण की परंपरा बहुत पुरातन है। वेद, रामायण, महाभारत, पुराणों तथा अन्य काव्यों में नीतिपरक उपदेश मिल जाते हैं। संस्कृत साहित्य में नीति के अनेक स्वतंत्र ग्रंथ भी उपलब्ध होते हैं। यह परम्परा पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश के काव्यों में बराबर मिलती है। नाथों व सिद्धों के साहित्य में अनेक नीतिपरक सूक्तियाँ मिलती हैं। भक्तिकाल में कबीर, नानक और दादू दयाल आदि सन्तों की वाणियों तथा रामचरितमानस और पद्मावत आदि प्रबन्ध काव्यों में नीति संबंधी उपदेश प्रासंगिक रूप से मिल जाते हैं।
7. **गद्यात्मक साहित्य:** भक्तिकाल में अवधी को छोड़कर हिन्दी की अन्य सभी विभाषाओं में गद्य साहित्य का यत्किंचित निर्माण हुआ। हिन्दी का यह प्राचीन गद्य-भाषा, शैली, विषय का सांस्कृतिक अध्ययन आदि- अनेक दृष्टियों से बहुत मूल्यवान है। वास्तव में यह आधुनिक गद्य की भूमिका प्रस्तुत करता है। इस युग में गद्य के अनेक रूप कथावात, वर्जन, चरित्र, वयनिका पद्यावली, वंशावली, प्रश्नोत्तर, वचनमृत पत्र, गोष्ठ बालावबोध वृत्ति, टिप्पणी-टीका, तर्जुमा तथा तकसीर आदि अनेक शीर्षकों के अन्तर्गत देखे जा सकते हैं। भक्तिकाल के गद्य के प्रमुख विषय हैं- धर्म, देश, अध्यात्म, चिकित्सा, ज्योतिष, भूगोल, कोकशास्त्र और काव्यग्रंथ। अतः उत्तर मध्यकाल भाषाई दृष्टि से पुरातन भारतीय साहित्य के पुनरुत्थान का काल है।
8. **नाम की महिमा:** सन्तों, सूफियों तथा सगुण साधकों में कीर्तन, भजन तथा नाम स्मरण विगलन हो गया था कि उनकी वाणी से सहज रूप से स्मरण को समान रूप से महत्त्व दिया। जायसी स्मरण की महिमा की महत्ता प्रदर्शित करते हुए कहते हैं- 'सुमिरो आदि इक करतारू जेहि दीन्हे कीन्ह संसारू'। कबीर के नाम के महत्त्व को अनेकत्र स्वीकार किया है। सूर की गुणात्मक प्रेमाभक्ति में कीर्तन-स्मरण एवं जप को पूरा-पूरा महत्त्व मिला है।
9. **रीति काव्यों की रचना:** हिन्दी को संस्कृत का काव्यशास्त्र विरासत के रूप में मिला है। हिन्दी के सभी कवि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में उक्त शास्त्र से प्रभावित रहे हैं। आदिकाल में रीतिकाव्यों के निर्माण के विषय में कवि का ध्यान आकर्षित नहीं हुआ किन्तु भक्तिकाल में हिन्दी रीति-निरूपण परम्परा का आरम्भ कृपाराम की 'हित तरंगिणी' से आरम्भ हो गया। संस्कृत में भक्ति के क्षेत्र में रूप गोस्वामी पहले से ही भक्ति रसामृत सिन्धु तथा उज्ज्वल नीलमणि आदि काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का प्रणयन कर चुके थे। भक्तिकाल के अंत में कविता राज दरबारों में प्रवेश कर गई। अतः उस समय के कवियों का कर्म कविता करने के साथ-साथ अपने आश्रयदाताओं और सामन्तों आदि के लिए काव्य के सौंदर्यवर्धक उपकरणों का ज्ञान उपलब्ध कराना भी हो गया था। निःसंदेह कविता की यह प्रवृत्ति भक्ति के प्रबल प्रवाह के सामने अत्यंत क्षीण रही किन्तु बाद में यह उत्तरोत्तर पुष्ट होती गई और इसका पूर्ण परिपाक रीतिकाल में दिखाई पड़ा।

2.3 भक्तिकाल की सामान्य प्रवृत्तियाँ

भक्तिकाल के आरम्भ में ही प्रान्तीय भाषाएँ अपने-अपने अपभ्रंशों का अनुसरण करते हुए हिन्दी के समांतर साहित्य रचना में प्रवृत्त थीं। इनमें वर्ण्य, काव्य, रूपों तथा रचना शैलियों की विविध परम्पराएँ प्रचलित थीं जो कुछ अटपटी और अनगढ़-सी प्रतीत होती थीं। धीरे-धीरे इनमें निखार आया। भक्तिकाल के आते-आते इनमें सिद्धों, नाथों और सूफियों की परम्पराओं का विकास होने लगा और साहित्य निर्माण की नवीन पद्धतियों और प्रवृत्तियों के रूप उभरने लगे। इस क्षेत्र में हिन्दी भाषा सब से आगे रही।

बौद्ध सिद्धों द्वारा अपनायी शैली, जिसमें संवाद शैली और लोक प्रचलित गीतों की परम्परा प्रमुख थी, का विकास निर्गुण संतों के काव्य में देखने को मिलता है। निर्गुण भक्ति-काव्य ने नाथ साहित्य से अधिक प्रभाव ग्रहण किया। संतों कवियों की वाणी में नाथ पंथ के योग साधना और प्रवृत्ति मार्ग का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

अमीर खुसरो और फैजी ने फारसी कवियों को प्रेरणा दी। भारतीय ग्रंथों के अनुवाद फारसी भाषा में होने लगे।

1. **सदाचार तथा नैतिक भावना पर बल:** निर्गुण साहित्य की प्रेरणा प्राचीन काल से ही विद्यमान है। जिसे बौद्ध धर्म की श्रमण संस्कृति से बल और बढ़ावा मिला। इसका उद्देश्य व्यक्तिगत उत्कर्ष के लिए आध्यात्मिक दृष्टि का सहारा लेना था।

कालान्तर में महाज्ञानियों द्वारा उसे बहुजन हिताय का नया मोड़ दिया गया जिसमें वैदिक आदर्श 'सर्वे भवन्तु सुखिन' की ध्वनि प्रतिध्वनित थी।

2. **व्यक्तिगत साधना की अपेक्षा सामूहिक पूजन अर्चन पर बल:** विदेशी एवं विजातीय मुसलमानों के आक्रमणों और शासन के फलस्वरूप हिन्दुओं ने आत्मरक्षार्थ उपाय खोजने शुरू किये। हिन्दुओं के काशी और मथुरा जैसे स्थानों पर बड़े-बड़े मंदिर गिरा दिये जाने के फलस्वरूप छोटे-छोटे मंदिरों की एक बाढ़ सी आ गई। घर-घर में देवताओं की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हो गयीं। यह अपने ढंग की एक सामूहिक जागृति थी जिसके फलस्वरूप व्यक्तिगत साधना की अपेक्षा सामूहिक पूजन-अर्चन, भजन कीर्तन की प्रवृत्ति जोर पकड़ने लगी। सगुण भक्त कवियों ने अपने काव्य द्वारा इस प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया। राम भक्त कवियों ने टकराव की स्थिति को दूर कर वैष्णव, शैव और शाक्तों को एक करने का प्रयास कर आपसी भेदभाव दूर किये। उन परिस्थितियों में जातीय एकता अत्यावश्यक थी।

3. **लोक भाषाओं का महत्त्व:** भक्तिकालीन कवियों ने आम आदमी तक अपने विचार पहुँचाने के उद्देश्य से लोक भाषाओं को अति उत्तम साधन माना। उन्होंने मौखिक परम्परा की स्तरीय रचनाओं को भी लिपिबद्ध कर उन्हें सुरक्षित रखने की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया। लोक भाषाओं को महत्त्व दिये जाने का ही यह फल है कि भक्तिकाल में जहाँ महाकाव्यों के माध्यम से शास्त्रीय शैली में राजपुरुषों तथा दिव्य नायकों को महत्त्व मिलने लगा। साथ ही इस काल में लोकगीतों, लोक कथाओं आदि को भी यथेष्ट सम्मान मिलने लगा।

ये सभी रचनाएँ लोक रुचि के अनुरूप थीं। अतः ये जनसाधारण में अत्यधिक लोकप्रिय हुईं। ज्ञान मार्ग संत कवियों ने आम बोलचाल की भाषा को अपनाया तो प्रेम मार्गी सूफी संत कवियों

ने अवधी भाषा को और कृष्ण भक्त कवियों ने ब्रज भाषा और राम भक्त कवियों ने अवधी भाषा को अपनाया इस युग का साहित्य सर्वाधिक लोकप्रिय हुआ क्योंकि यह मूल रूप में जनसाधारण के लिए उन्हीं की भाषा में लिखा गया।

4. **समन्वयात्मक दृष्टि को बढ़ावा:** लोगों में आत्म विश्वास बढ़ाने का यह परिणाम हुआ कि पारस्परिक सहयोग के लिए समन्वयात्मक दृष्टि से काम लिया जाने लगा। सूफी संतों की समन्वयात्मक प्रवृत्ति ज्ञान मार्गी संतों ने भी अपनाई। समन्वय की इस भावना से जो साहित्य रचा गया उससे धार्मिक साम्प्रदायिकता का स्वर क्षीण हो गया। संत कवियों (कबीर और गुरुनानक) तथा सूफी संत कवियों को हिन्दू और मुसलमान समान रूप से आदर की दृष्टि से देखते हैं।

5. **नाम की महत्ता:** जप, कीर्तन आदि निर्गुणधारा एवं सगुण धारा के कवियों में समान रूप से मान्य हैं। कबीर 'नाम' को सभी रसायनों से उत्तम समझते हैं— "सभी रसायन हम करें, नहीं नाम समकोय" सूफी कवि और कृष्ण भक्त कवि कीर्तन की महत्ता को स्वीकार करते हैं।

संक्षेप में कहें तो नाम में निर्गुण और सगुण दोनों का समन्वय हो गया है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

‘अगुण सगुण हुई ब्रह्मस्वरूपा। अकथ अगादि अनादि मोरे मत बढ़ नाम दुहुँ ते। किये जेहि निज बस निज बूते’

6. **गुरु की महिमा:** गुरु के महत्त्व को निर्गुण और सगुण दोनों धाराओं के कवियों ने स्वीकार किया है। कबीर कहते हैं— गुरु बड़े गोबिंद से मन में देख विचारि। जायसी ने भी 'पद्मावत' में गुरु के महत्त्व को दर्शाने वाला पात्र 'सुआ' का निर्माण किया— 'गुरु, सुआ जेहि पन्थ दिखावा'। सूरदास ने लिखा— 'बल्लभ नख चन्द्र छटा बिन सब जग माहि अंधेरा' और तुलसी ने 'मानस' के आरम्भ में गुरु बन्दना करते हुए लिखा— 'बन्दऊ गुरु पद पद्म परागा'।

भक्तिकालीन कवियों ने गुरु को ईश्वर से मिलाने वाला या ईश्वर से मिलने का मार्ग बताने वाला या जीवन पथ में सही राह दिखाने वाला माना है।

7. **शास्त्र ज्ञान की अपेक्षा निजी अनुभव पर विशेष बल:** भक्तिकालीन कवियों ने शास्त्रज्ञान की अपेक्षा निजी अनुभव को अधिक महत्त्व दिया। कबीर को 'ढाई अक्षर प्रेम के' का महत्त्व देते हुए ज्ञान को निरर्थक बताते हुए कहते हैं— 'पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय'। तुलसी भी केवल वाक्य ज्ञान को अपर्याप्त मानते हुए कहते हैं— 'वाक्य ज्ञान अत्यन्त निपुण, भव पार न पावे कोई'। सूर और नन्ददास की गोपियां तो अपने प्रेम के निजी अनुभव के आधार पर उद्धव जैसे ज्ञानी को भी यह कहने पर विवश कर देती हैं—

जो ऐसे मरजाद मेटि मोहन को ध्यावै।

काहे न परमानन्द प्रेम पदवी सबु पावै॥

ज्ञान जोग सब कर्म ते प्रेम परे है सांच।

है या पटतर देत है हीरा आगे कांच॥

साधन अथवा मार्ग भले ही अलग-अलग थे पर लक्ष्य एक ही था।

Notes

स्व:मूल्यांकन

रिक्त स्थान भरें:

1. प्राकृत साहित्य की रचना वातावरण में हुई।
2. लोक प्रचलित गीतों की परम्परा, ... और चर्चरी आदि के रूप में साहित्य रचना में पायी जाती है।
3. का प्रभाव परवर्ती सन्त साहित्य पर लक्षित हुआ।
4. भक्तिकालीन साहित्य में और लिखे गये।

2.4 सारांश (Summary)

- साहित्यिक प्रवृत्तियों की पृष्ठभूमि में पूर्व-मध्यकाल में भक्तिकाव्य की रचना आरम्भ हुई और इसे लोक-जागृति का योगदान सुलभ रहा। अनुभवाश्रयी निर्गुण-साहित्य की मूल प्रेरणा प्राचीन काल से ही विद्यमान रही है, जिसे श्रमण-संस्कृति की ओर से बल और बढ़ावा मिला। उसका मूल उद्देश्य व्यक्तिगत उत्कर्ष के निमित्त आध्यात्मिक दृष्टि का सहारा लेना था, पर कालान्तर में महाज्ञानियों द्वारा उसे 'बहुजनहिताय' का नया मोड़ दे दिया गया जिसमें वैदिक आदर्श 'सर्वेभवनतु सुखिनः' की ध्वनि प्रतिध्वनित थी। इसकी सफलता के लिए सदाचार तथा नैतिक भावना पर यथेष्ट बल दिया जाने लगा और आगे चलकर यह भक्तिकाव्य की एक प्रमुख विशेषता बन गयी।
- हिन्दू जनता मुस्लिम आक्रमणों से भयभीत होने की अपेक्षा अधिक सजग और सचेत हो गयी। फलस्वरूप काशी और मथुरा जैसे धार्मिक स्थानों में बड़े-बड़े मंदिरों के ध्वस्त किये जाने पर छोटे-छोटे मंदिरों की बाढ़-सी आ गयी तथा घर-घर में देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हो गयीं। यह अपने ढंग की सामूहिक जागृति थी, जिससे व्यक्तिगत साधना की अपेक्षा सामूहिक पूजन-अर्चन और भजन-कीर्तन की प्रवृत्ति जोर पकड़ने लगी।
- यह प्रवृत्ति सगुण भक्ति के अनुकूल पड़ी। आपसी भेद-भाव को कम करने के लिए सुगम मार्ग ढूँढ़े जाने लगे और परस्पर टकराव के प्रति सावधानी बरती जाने लगी। समन्वय की भावना से इस दिशा में बड़ा बल और प्रोत्साहन मिला।
- लोक-चेतना का परिणाम लोकभाषाओं के बढ़ते महत्त्व में लक्षित हुआ और वे मनोभावों तथा हृदयोद्गारों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनने लगीं। मौखिक परम्परा की स्तरीय रचनाओं को भी लिपिबद्ध कर उन्हें सुरक्षित रखने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी। एक ओर जहाँ महाकाव्यों के माध्यम से शास्त्रीय शैली में राजपुरुषों तथा दिव्य नायकों को महत्त्व दिया जा रहा था, वहीं दूसरी ओर जन-जीवन की उपेक्षित अनुभूतियों को भी अभिव्यक्ति मिलने लगी थी जिससे लौकिक वर्ण्य विषयों का स्वर मुखर होने लगा था।
- इस काल में लोकगीतों और लोक-कथाओं को यथेष्ट सम्मान मिलने लगा और लोक-प्रचलित एवं परिचित दृष्टान्तों, रूपकों, प्रतीकों तथा लोकोक्तियों को भी यथा-योग्य स्थान दिया जाने लगा। ऐसी रचनाएँ लोक-रुचि के अनुकूल पड़ने लगीं और उनकी लोकप्रियता बढ़ने लगी। अपनी-अपनी अनुभूतियों को लोक-प्रचलित भाषा शैली में जन-साधारण तक पहुँचाना रचयिताओं का उद्देश्य रहा करता था।

- सन्तों की समन्वयात्मक प्रवृत्ति को सूफी मत से भी प्रश्रय मिला। फिर भी, भारतीय परम्परा में इष्टदेव को जहाँ प्रियतम के रूप में स्वीकार किया गया है; वहाँ सूफी परम्परा में उसे प्रियतम ठहराया गया है।
- इस क्रम में जो रचनाएँ प्रस्तुत की गयीं उनमें धार्मिक साम्प्रदायिकता का स्वर क्षीणप्राय हो गया। ऐसी रचनाओं में बहुधा उनके रचयिताओं के नामोल्लेख का पाया जाना भी एक अन्य विशेषता है, जिसका मूल बौद्ध-सिद्धों की रचनाओं में पाया जा सकता है।

2.5 शब्दकोश (Keywords)

अल्पकालीन: थोड़े समय का।

समाविष्ट: सम्मिलित, शामिल।

2.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. भक्तिकालीन काव्य की प्रवृत्तिगत पृष्ठभूमि का उल्लेख कीजिए।
2. भक्तिकाल में सदाचार, नैतिक मानव और सामूहिक पूजन अर्चन पर बल दिया गया। इस पर टिप्पणी कीजिए।
3. भक्तिकालीन काव्य की सामान्य प्रवृत्तियों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
4. निम्न पर नोट लिखें:
(क) रीति काव्यों की रचना
(ख) गद्यात्मक साहित्य
(ग) वीर काव्यों की रचना।

उत्तर: स्व:मूल्यांकन

- | | |
|-----------------|---------------------------------------|
| 1. लोकोन्मुखी | 2. फाग, बारहमासा |
| 3. गुरु गोरखनाथ | 4. वीर काव्य, प्रबन्धात्मक रचित काव्य |

2.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



Books

हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास – विश्वनाथ त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन।

हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास – बाबू गुलाबराय, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन।

हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ० ईश्वरदत्त शील, आभा रानी।

इकाई 3: भक्ति के प्रमुख भेद - सगुण भक्ति धारा

अनुक्रमणिका (CONTENTS)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

3.1 भक्तिकालीन काव्यधारा

3.1.1 सगुण भक्ति-धारा

3.1.2 सगुण भक्ति-धारा की उपधाराएँ

3.2 सारांश (Summary)

3.3 शब्दकोश (Keywords)

3.4 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

3.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी:

- भक्तिकालीन काव्यधारा से परिचित होंगे।
- सगुण भक्ति धारा की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- सगुण भक्ति धारा की उपधाराओं से परिचित होंगे।
- कृष्ण भक्ति शाखा और राम भक्ति शाखा का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

प्रस्तावना (Introduction)

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल का समय संवत् 1375 से लेकर संवत् 1700 तक माना जाता है। इस काल में राजनीतिक दृष्टि से शान्ति स्थापित हुई। राजपूती वीरता का ह्यास हो चुका था। मुसलमान भी युद्ध से ऊब गये थे और विजित देश में शान्ति चाहते थे। हिन्दू चाहते थे कि उनका धर्म भी सुरक्षित रहे और मुसलमान उसका विरोध या खण्डन न करें। साथ ही हिन्दुओं में कुछ लोग ऐसे भी थे जो अपना धार्मिक व्यक्तित्व अलग रखना चाहते थे। बाबू गुलाब राय के अनुसार, हिन्दू मुसलमानों के विरोधी नहीं थे। वे तो सारे संसार को 'सिया राम मय' जान कर 'जोरि युग पाणी' प्रणाम करने को तैयार थे किन्तु ऐक्य की वेदी पर अपने इष्ट देवों के प्रति अपनी अनन्य भावना का बलिदान नहीं करना चाहते थे। उस समय दक्षिण से सगुण भक्ति आन्दोलन चल रहा था, उससे उनकी हृदय-तन्त्री झंकृत हो उठी थी। जो उपदेश श्री रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, चैतन्य महाप्रभु, तुकाराम आदि सन्तों और महात्माओं ने जनता को दिये थे, वे अब सूरदास और तुलसीदास की काव्यमयी वाणी में एक नवीन रूप से अवतरित हुए।

3.1 भक्तिकालीन काव्यधारा

भक्ति की लहर दक्षिण से आई। आदि शंकराचार्य ने बौद्ध धर्म के बढ़ते प्रभाव को कम करने के लिए अद्वैतवाद का प्रचार किया। इसकी प्रतिक्रिया में अनेक दार्शनिक सम्प्रदायों का उदय हुआ। भक्ति का बीज तो भारत में वैदिक काल से था और अनुकूल परिस्थितियाँ पाकर वह इस युग में एक धारा के रूप में प्रवाहित हुआ।

भक्ति धाराएँ: भक्तिकाल में दो प्रमुख भक्ति धाराएँ प्रवाहित हुईं—

1. सगुण भक्ति-धारा।
2. निर्गुण भक्ति-धारा

सगुण भक्ति-धारा में ईश्वर के साकार सगुण रूप की उपासना राम और कृष्ण रूप में भगवान् विष्णु के अवतारों की कल्पना करके सख्य और सेवक भाव से भक्ति-कर ईश्वर की प्राप्ति का मार्ग बताया गया।

आगे चल कर इन दोनों भक्ति-धाराओं की दो-दो शाखाएँ हो गईं।



Notes

सगुण भक्ति धारा की दो उपधाराएँ हैं— कृष्ण भक्ति शाखा तथा राम भक्ति शाखा।

सन्त काव्य की पृष्ठभूमि: हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल (1375-1700 वि.) में भक्ति की दो धाराएँ— सगुण तथा निर्गुण प्रवाहित हुईं। सगुण धारा के अन्तर्गत राम-कृष्ण भक्ति की शाखाएँ आती हैं, निर्गुण के अंतर्गत सन्त तथा सूफियों का काव्य आता है। आचार्य शुक्ल ने नामदेव एवं कबीर द्वारा प्रवर्तित भक्ति-धारा को 'निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा' की संज्ञा से अभिहित किया है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इसे 'निर्गुण भक्ति साहित्य' तथा डॉ. रामकुमार वर्मा ने इसे 'सन्त-काव्य-परम्परा' का नाम दिया है। ज्ञानाश्रयी शब्द से यह भाँति उत्पन्न होती है कि इस धारा के कवियों ने ज्ञानतत्त्व को सर्वाधिक महत्त्व दिया होगा, जबकि वास्तव में इन्होंने प्रेम के सम्मुख समस्त ज्ञानराशि को तुच्छ माना है। भक्ति का आलम्बन सगुण आश्रय ही उपयुक्त है, अतः निर्गुण भक्ति साहित्य का नाम असमीचीन प्रतीत होता है। इस धारा के कवियों का विशेष दृष्टिकोण सन्त शब्द से भली-भाँति व्यक्त होता है, अतः इस धारा को सन्त काव्य की संज्ञा देना अपेक्षाकृत संगत प्रतीत होता है।

3.1.1 सगुण भक्ति-धारा

यह काव्यधारा उन भक्तों के अन्तःस्थल से प्रवाहित हुई जो अपने इष्ट देवों की पूजा और उपासना में मग्न थे। वे देश और जाति का कल्याण भगवद् भजन में ही देखते थे। राजदरबारों के ऐश्वर्य में उनको कोई आकर्षण नजर नहीं आता था। कृष्ण-भक्त कवि कुंभनदास ने सम्राट् अकबर के राजदरबार में निमन्त्रण को ठुकराते हुए कह दिया था— 'संतन को कहा सीकरी सों काम'। सगुण भक्त कवि मुसलमानों के विरोधी तो न थे किन्तु उनसे मिलने की भी इच्छा नहीं रखते थे। मुसलमान शासक धड़ाधड़ हिन्दुओं को इस्लाम धर्म स्वीकार करने पर विवश कर रहे थे, अतः सगुण भक्त कवियों ने अपने काव्य द्वारा धर्म और जाति की रक्षा करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। अकेले तुलसीकृत 'रामचरितमानस' ने

Notes

न केवल हिन्दुओं को एक किया बल्कि उनकी रक्षा भी की। आज तक घर-घर में उसका पाठ किया जाता है। यह इस ग्रन्थ की महत्ता को दर्शाता है।

3.1.2 सगुण भक्ति-धारा की उपधाराएँ

सगुण भक्ति-धारा दो उपधाराओं या शाखाओं में प्रवाहित हुई।

1. कृष्ण भक्ति-शाखा
2. राम भक्ति-शाखा

कृष्ण भक्ति शाखा

श्री चैतन्य महाप्रभु और वल्लभाचार्य ने भगवान विष्णु के अवतार श्री कृष्ण को भक्ति का आधार बनाया। उनकी भक्ति 'भागवत पुराण' पर आधारित थी। इस भक्ति में ज्ञान की अपेक्षा प्रेम को अधिक महत्त्व दिया गया। आत्म चिन्तन की अपेक्षा आत्म समर्पण पर अधिक बल दिया गया। वल्लभाचार्य ने श्री कृष्ण को 'परब्रह्म' और 'दिव्य गुण सम्पन्न' माना। उनके लोक को वैकुण्ठ माना जिसके अन्तर्गत वृन्दावन, यमुना, गोवर्धन, आदि सभी वे स्थल आते हैं जहाँ श्री कृष्ण ने अलक्ष भाव से गो चारण और रासलीला की थी। कृष्ण भक्त-कवियों ने आत्मा और परमात्मा में सखी-सखा भाव माना।

हिन्दी साहित्य में कृष्ण भक्ति-काव्य की रचना आदिकाल में विद्यापति पदावली से आरम्भ हुई। उनकी भक्ति पर श्रृंगार का भी गहरा रंग था। अतः भक्तिकाल में सूरदास को ही कृष्ण भक्ति-काव्य का प्रवर्तक मानना चाहिए। इनकी प्रसिद्ध रचना 'सूर सागर' श्रीमद् भागवत पर ही आधारित है। सूरदास के अतिरिक्त कृष्ण भक्ति-शाखा के अन्य कवि अष्टछाप के आठ कवि आते हैं। इनमें से केवल नन्द दास ही अधिक प्रसिद्ध हुए। इनकी रचना 'भँवर गीत' में ज्ञान पर प्रेम की विजय दिखा कर कृष्ण भक्ति के सिद्धांतों का प्रभावी ढंग से चित्रण हुआ है।



Did u know? कृष्ण भक्ति शाखा में भगवान श्री कृष्ण को भक्ति का आधार मान कर उनके प्रेम को महत्त्व दिया गया है।

कृष्ण भक्ति की विशेषताएँ:

1. **श्रीकृष्ण को पूर्ण ब्रह्म मानना:** सभी कृष्ण भक्त कवि श्रीकृष्ण को भगवान विष्णु का सोलह कला सम्पूर्ण अवतार मानते हैं। उनके श्रीकृष्ण पूर्ण ब्रह्म है जो इस सारी सृष्टि के निर्माता हैं तथा संसार की प्रत्येक वस्तु उन्हीं का अभिन्न अंग है। कृष्ण भक्त कवियों ने श्रीकृष्ण के माधुर्य रूप को ही अपनाया। उनके श्रीकृष्ण रास के रचैया, बंसी के बजैया और गोपियों के दुलारे हैं। इन कवियों ने श्रीकृष्ण के योगीराज, युद्धवीर, राजनीति कुशल आदि रूपों को नहीं अपनाया।
2. **श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन:** हिन्दी साहित्य के इतिहास में इन कवियों ने श्रीकृष्ण के बाल या युवा रूप का सुन्दर चित्रण किया है, इन लीलाओं में बालगोपाल की वात्सल्यपूर्ण लीलाओं तथा माधुर्य भावपूर्ण लीलाओं की प्रधानता रही। इन कवियों में प्रेम वर्णन कुछ चुने हुए

प्रसंगों तक सीमित रहा। श्रीकृष्ण का क्रीड़ा स्थल केवल यमुना कुंज ही रहा। इनकी लीलाओं में भक्ति का पुट अधिक था। इसी प्रकार की कृष्ण लीला बाद में (रीतिकाल में) श्रृंगारिकता में बदल गई।

3. **संगीतात्मकता:** श्रीकृष्ण की लीलाओं के वर्णन में संगीतात्मकता की अधिकता पाई जाती है। इससे रीति काव्य का सुन्दर विकास हुआ। इसी में अनेक राग रागनियां पाई जाती हैं। हरिदास, सूरदास तथा मीरा के पदों में संगीतात्मकता की सुन्दर छाप मिलती है और आज भी संगीत के क्षेत्र में इन पदों का बहुत महत्त्व है। वास्तव में श्रीकृष्ण का चरित्र ही कुछ इतना विचित्र है कि इसके वर्णन में साधारणतया संगीतात्मकता का तत्त्व आ गया है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'राधा' को 'लिरिकल' पात्र की संज्ञा दी है। इसी प्रकार लगभग सम्पूर्ण कृष्ण काव्य मुक्तक शैली में लिखा गया है।
4. **श्रृंगार रस की प्रधानता:** प्रायः सभी कृष्ण भक्त-कवियों ने माधुर्य भक्ति के कारण अपने काव्य में श्रृंगार रस का वर्णन प्रमुख रूप से किया है। गोपियों के संयोग और वियोग का बड़ा ही सुन्दर और स्वाभाविक वर्णन कृष्ण भक्त कवियों ने किया है। संयोग में श्रीकृष्ण राधा का सौन्दर्य, गोपी प्रेम, चीर हरण, दानलीला, रास लीला आदि का वर्णन है। यह वर्णन स्वाभाविक और वासना रहित है। इसमें अलौकिकता पाई जाती है। वियोग वर्णन का सुन्दर उदाहरण सूर के 'भ्रमर गीत' और नन्ददास के 'भँवर गीत' में देखा जा सकता है। मीरा का वियोग वर्णन भी उच्चकोटि का बन पड़ा है।
5. **विषय-वस्तु की मौलिकता:** भक्तिकालीन कृष्ण भक्त कवियों ने 'भागवत् पुराण' को ही आधार माना किन्तु इससे वातावरण के अनुकूल कुछ मौलिकता दिखाने का भी प्रयत्न किया। उदाहरण के लिए 'भागवत्' में भी श्रीकृष्ण आरम्भ से लेकर अन्त तक अलौकिकता लिए पाए जाते हैं। जबकि कृष्ण भक्त कवियों ने उनका नाम भी स्पष्ट: 'राधा' लिख दिया है। अतः हम कह सकते हैं कि हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने विद्यापति और जयदेव को आधार मानते हुए अपनी कल्पना शक्ति का पूर्ण प्रयोग किया है और अपने समय के वातावरण के अनुसार नये प्रसंगों को भी जोड़ दिया है।
6. **प्रकृति चित्रण:** कृष्ण काव्य भाव प्रधान है इसी कारण इसमें प्रकृति चित्रण स्वतन्त्र रूप से नहीं हुआ। प्रकृति के जो सुन्दर चित्र देखने को मिलते हैं वे केवल पृष्ठभूमि अथवा उद्दीपन के रूप में चित्रित हुए हैं। पात्र के भावों को बढ़ाने (उद्दीप्त करने) के लिए प्रकृति का उसी प्रकार का रूप दिखाया गया है। अर्थात् प्रकृति चित्र भावानुकूल ही हुआ है। प्रकृति के कोमल-कठोर, मनोहर-भयानक दोनों रूपों का चित्रण कृष्ण काव्य में देखने को मिलता है।
7. **सामाजिक पक्ष:** कृष्ण भक्त-कवियों ने श्रीकृष्ण की लीलाओं के वर्णन के साथ ही उस समय के सामाजिक पक्ष को भी नहीं छोड़ा। कृष्ण भक्त-कवियों ने उस समय की धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक दशा का भी अपने काव्य में समावेश किया है। यथा 'भ्रमर गीत' और 'भँवर गीत' के उद्धव गोपी संवाद में अलखवादी, घमण्डी, शरीर को बेकार कष्ट देकर साधना करने वालों का गोपियों ने परिहास उड़ाया है। वर्णाश्रम का पतन धार्मिक विडम्बनाओं और सामाजिक कुरीतियों का चित्रण भी कृष्ण काव्य में देखने को मिलता है।

Notes

राम भक्ति शाखा

भक्ति की धारा उत्तर भारत में आने से पूर्व दक्षिण भारत में पूरी तरह से फैल चुकी थी। वैदिक धर्म के कर्मकाण्ड को न मानने वालों ने वैष्णव धर्म की स्थापना की और भगवान की भक्ति का सहारा लिया गया। ईसा के 500 वर्ष पूर्व श्रीराम और श्रीकृष्ण को ईश्वरावतार के रूप में माना जाने लगा था।

राम भक्ति को महानता के शिखर पर लाने का श्रेय स्वामी रामानुजाचार्य को है। इनके सम्प्रदाय में विष्णु या नारायण की उपासना की जाती है। उन्ही के सम्प्रदाय में राधवानन्द हुए जिनके शिष्य रामानन्द ने सारे देश का भ्रमण कर अपने सम्प्रदाय को बढ़ाने का प्रयास किया। उन्होंने वैकुण्ठ में स्थित विष्णु भगवान के स्थान पर इस संसार में अवतरित उनके रूप 'श्रीराम' को अपना आराध्य देव माना।

राम भक्ति का वास्तविक उत्थान गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं, विशेषकर "रामचरितमानस" में देखने को मिलता है। तुलसी ने श्रीराम को मर्यादा पुरूषोत्तम भगवान राम के रूप में चित्रित किया, जो शील, शक्ति और सौन्दर्य के प्रतीक थे। डॉ० राम कुमार वर्मा ने स्पष्ट शब्दों में कहा है – "राजनीति की जटिल परिस्थितियों में धर्म की भावना किस प्रकार अपना उत्थान कर सकती है, यह राम काव्य ने स्पष्ट कर दिया।"

राम भक्ति की विशेषताएँ

1. **राम का स्वरूप:** रामभक्त कवियों के उपास्यदेव राम विष्णु के अवतार हैं और परम ब्रह्म स्वरूप हैं। वे पाप विनाश और धर्मोद्धार के लिए युग-युग में अवतार लेते हैं। कृष्ण कवियों के कृष्ण ब्रह्म के प्रतीक हैं। गोपियाँ जीवात्मा हैं और स्वयं कृष्ण-भक्त अपने आप पर गोपी का आरोप करके अपने-आपको कृष्ण की सेवा में अर्पित करता है। राम विष्णु का अवतार हैं और भक्त कवि मानव रूप में उनका साधक है।

इनके राम में शील, शक्ति, सौन्दर्य का समन्वय है। सौन्दर्य में वे त्रिभुवन को लजावन हारे हैं। शक्ति से वे दुष्टों का दलन करते हैं और भक्तों को संकट से मुक्त करते हैं वे अपने शील-गुण से लोक को आचार की शिक्षा देते हैं। राम-भक्ति परम्परा में रसिकता का उदय हुआ और उसमें सखी 'संप्रदाय' आदि चल निकले पर यह सब कृष्ण भक्ति साहित्य के अनुकरण पर ही हुआ।

2. **समन्वयात्मकता:** राम काव्य का दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक है। इसमें समन्वय की भावना है। इसमें न केवल राम की उपासना है बल्कि कृष्ण, शिव, गणेश आदि देवताओं की भी स्तुति की गई है। तुलसी ने सेतुबन्ध के अवसर पर राम द्वारा शिव की पूजा करवाई है। यद्यपि रामभक्ति काव्य में रामभक्ति को श्रेष्ठ माना है तो भी उसकी भक्ति भावना अत्यन्त उदार है। रामभक्तों का आराध्य सगुण भी है और निर्गुण भी तो भी भगवान् का सगुण रूप भक्तिसुलभ है।
3. **लोक संग्रह की भावना:** लोक-कल्याण भावना की दृष्टि से भी यह साहित्य अत्यन्त उपादेय है। इस साहित्य में जीवन की अनेक उच्चारण अनुभूतियाँ प्रस्तुत की गई हैं। इन्होंने गृहस्थ जीवन की उपेक्षा नहीं की बल्कि लोक-सेवा और आदर्श गृहस्थ राम-सीता को उपस्थित करके जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। राम काव्य का आदर्श पक्ष अत्यन्त उच्च है। इस काव्य में जीवन का मूल्यांकन आचार की कसौटी पर किया गया है। राजा-प्रजा, पिता-पुत्र, पति-पत्नी, भाई-भाई, स्वामी-सेवक और पड़ोसी-पड़ोसी के सुन्दर संबंधों पर आद्धत

समाज आचार के बल पर ही जी सकता है। राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। आदर्श की प्रतिष्ठा उनके जीवन का अर्थ और इति है।

4. **भक्ति का स्वरूप:** राम का चरित्र त्रिलोकातिशायी है। राम-भक्त कवि राम के शील, शक्ति और सौन्दर्य पर मुग्ध हैं। यही कारण है कि राम-भक्त कवि ने अपने और राम के बीच सेवक-सेव्य भाव को स्वीकार किया है। तुलसीदास का कहना है-

राम भक्त कवियों का भक्ति संबंधी दृष्टिकोण अपेक्षाकृत अधिक उदार है। निःसन्देह राम-भक्ति को यहां सर्वश्रेष्ठ बताया गया है, किन्तु अन्य देवी-देवताओं की पूजा की भी यहां अस्वीकृति नहीं है जैसे कि सूर को छोड़कर अन्य पुष्टिमार्गी कवियों में। राम-भक्त कवि ज्ञान और कर्म की अलग-अलग महत्ता स्वीकार करते हुए भक्ति को श्रेष्ठ मानते हैं।

5. **रस:** रामकथा अत्यंत व्यापक है। उसमें जीवन की विविधताओं का सहज सन्निवेश है। राम काव्य में सभी रसों का समावेश है किन्तु सेवक-सेव्य भाव की भक्ति होने के कारण निर्वेदजन्य शांत रस की प्रधानता है। राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं और भक्त-कवि भी मर्यादावादी है, कदाचित् यही कारण है कि इस साहित्य में शृंगार रस के संयोग और वियोग पक्षों का सम्यक् परिपाक नहीं हो सका। यह बात अधिकतर तुलसी के साहित्य पर चरितार्थ होती है। आगे चलकर राम-भक्ति साहित्य परम्परा में सखी संप्रदाय में नख-शिख, अष्टयाम आदि रति-उत्तेजक विषयों का वर्णन होने लगा। राम-भक्ति के रसिक संप्रदाय में शृंगार रस का यथेष्ट परिपाक हुआ है। तुलसी के साहित्य में, विशेषकर 'रामचरितमानस' में, सभी रसों का समावेश है। युद्ध-वर्णन में वीर और रौद्र रस हैं। राम के ब्रह्मत्व के प्रतिपादन प्रकरणों में अद्भुत और भक्ति रस की अच्छी छटा है।
6. **राम भक्ति में मधुर रस का समावेश:** तुलसी के पूर्व और उनके समय में भी राम-साहित्य में मधुर रस का समावेश हो चुका था किन्तु तुलसी के समय में वह अपने पूर्ण रूप में उभर नहीं सका। तुलसी ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जिस दुष्ट दमनकारी रूप की कल्पना की थी वह कुछ समय के बाद धीमी पड़ गई। 16वीं शताब्दी के बाद के साहित्य में कृष्ण भक्ति काव्य की प्रेम-लीलाओं के समान राम-साहित्य छबीले राम की रसिकतापूर्ण लीलाओं से भर गया। इसमें राम और जानकी के प्रणय, विलास, हास, वन और जल विहारों तथा काम-कैलियों का निःशंक भाव से चित्रण किया जाने लगा। तुलसी जितनी दृढ़ता के साथ मर्यादावाद का पालन करते रहे उसके परवर्ती साहित्यकारों ने प्रतिक्रियात्मक रूप में मर्यादा की उनकी अवहेलना कर राम-भक्ति साहित्य में रसिकता का समावेश किया।
7. **काव्य शैली:** सगुण परम्परा के कवि या तो स्वयं विद्वान थे अथवा विद्वानों की सत्संगति में साहित्य के धर्मों के संबंध में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर चुके थे। अलंकार-शास्त्र की अवहेलना इनमें दृष्टिगोचर नहीं होती है। इनका अनेक काव्य शैलियों पर अधिकार था। राम-काव्य में सब शैलियों की रचनाएं मिलती हैं। 'रामचरितमानस' और 'अष्टयास' में वीरगाथाओं की प्रबंध पद्धति है। मंगल काव्य का उल्लेख मिलता है।
8. **छन्द:** रचनाभेद, भाषाभेद, विचारभेद, अलंकारभेद के साथ राम काव्य में छन्दभेद भी पाया जाता है। वीरगाथाओं के छप्पय, सन्त काव्य के दोहे, प्रेम काव्य के दोहे, चौपाई और इनके अतिरिक्त कुण्डलिया, सोरठा, सवैया, घनाक्षरी, तोमर, त्रिभंगी आदि छन्द प्रयुक्त हुए हैं। दोहा, चौपाई का

Notes

मुख्य प्रयोग हुआ है। तुलसी ने इनका प्रयोग अधिकारपूर्वक किया है। केशव ने अनेक छन्दों में कला का प्रदर्शन किया है, परन्तु उनमें भावानुकूलता नहीं है।

9. **अलंकार:** राम भक्त-कवि पंडित हैं। इनमें अलंकारशास्त्र के प्रति अवहेलना नहीं है। जहां इन्होंने विविध छन्दों का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया है केशव को छोड़कर इनमें से किसी ने भी शब्दालंकारों का आदर नहीं किया। वैसे तो तुलसी-काव्य में प्रायः सभी अलंकार मिल जाते हैं, परन्तु वे उपमा और रूपक के लिए विशेष प्रसिद्ध हैं।
10. **भाषा:** राम काव्य की भाषा प्रधानतः अवधी है। केशव की राम-चन्द्रिका में ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। बाद के राम-भक्ति के रसिक संप्रदाय के कवियों ने प्रायः ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। तुलसी ने अवधी तथा ब्रज दोनों भाषाओं का सफल प्रयोग किया है। राम-काव्य में भोजपुरी, राजस्थानी, संस्कृत और फारसी भाषाओं के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। तुलसी ने भाषा का परिष्कृत रूप प्रस्तुत किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भक्तिकालीन रामकाव्य मात्र और परिणाम की दृष्टि से कृष्ण काव्य से न्यून है और संभव है कि सन्त काव्य और प्रेम-काव्य से भी न्यून हो, जब तक इस धारा के रसिक संप्रदाय के कवियों का साहित्य प्रकाश में न आ जाये, पर यह साहित्य काव्य रूपों, शैली और भाषा की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध है। भाषा की दृष्टि से तो यह साहित्य महान ही है।

स्व:मूल्यांकन

रिक्त स्थान भरें:

1. सगुण भक्ति धारा की दो शाखाएँ और हैं।
2. और ने भगवान विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण को भक्ति का आधार बनाया।
3. को कृष्ण भक्ति काव्य का प्रवर्तक मानना चाहिए।
4. सभी कृष्ण भक्त कवियों ने माधुर्य भक्ति के कारण अपने काव्य में रस का वर्णन प्रमुख रूप से किया है।

3.2 सारांश (Summary)

- भक्तिकालीन काव्यधारा में दो प्रमुख भक्तिधाराएँ प्रवाहित हुई— निर्गुण भक्ति-धारा और सगुण भक्ति-धारा। सगुण भक्ति धारा में ईश्वर के साकार सगुण रूप की उपासना राम और कृष्ण रूप में भगवान विष्णु के अवतारों की कल्पना करके सख्य और सेवक भाव से करने पर जोर दिया गया।
- सगुण भक्त कवियों ने अपने काव्य द्वारा धर्म और जाति की रक्षा करने का महत्वपूर्ण काम किया। वे देश और जाति का कल्याण भगवद् भजन में ही देखते थे।
- सगुण भक्ति धारा दो उपशाखाओं में विभाजित थी— कृष्ण भक्ति शाखा और राम भक्ति शाखा। भगवान विष्णु के अवतार श्री कृष्ण को भक्ति का आधार बना कर ज्ञान की अपेक्षा प्रेम को अधिक महत्व दिया गया।

- भक्तिकाल में सूरदास को कृष्ण भक्ति काव्य का प्रवर्तक माना जाता है। इनकी प्रसिद्ध रचना 'सूरसागर' श्रीमद्भागवत पर आधारित है।
- इसमें श्री कृष्ण को पूर्ण ब्रह्म माना गया है श्रृंगार रस संगीतात्मकता, मौलिकता, प्रकृति-चित्रण इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं।

3.3 शब्दकोश (Keywords)

अविस्मरणीय: न भूलने वाला।

संस्थापक: बनाने वाला, बुनियाद रखने वाला।

3.4 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. सगुण भक्ति धारा की वैचारिक पृष्ठभूमि और उसके योगदान का उल्लेख कीजिए।
2. सगुण भक्ति धारा की उपशाखाओं और उनकी विशेषताओं का वर्णन करें।
3. कृष्ण भक्ति धारा की मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालें।
4. कृष्ण भक्ति धारा और राम भक्ति धारा की प्रमुख प्रवृत्तियों का वर्णन करें।
5. निम्न पर टिप्पणी करें:
(क) कृष्ण भक्ति शाखा में संगीतात्मकता और प्रकृति चित्रण।
(ख) राम भक्ति काव्य में राम का स्वरूप और समन्वयात्मकता।

उत्तर: स्व:मूल्यांकन

1. कृष्ण भक्ति शाखा, राम भक्ति शाखा
2. श्री चैतन्य महाप्रभु, वल्लभाचार्य
3. सूरदास
4. श्रृंगार

3.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



Books

हिन्दी साहित्य का इतिहास – वाष्णेय डा. लक्ष्मी सागर, लोकभारती प्रकाशन।

हिन्दी साहित्य का समग्र इतिहास – शर्मा रमेश चंद्र, विद्या प्रकाशन, कानपुर।

हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ० नगेन्द्र, मयूर पेपर बाक्स।

इकाई 4: भक्ति के प्रमुख भेद – निर्गुण भक्ति धारा

अनुक्रमणिका (CONTENTS)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

4.1 निर्गुण भक्ति धारा

4.1.1 निर्गुण भक्ति का स्वरूप

4.1.2 निर्गुण भक्ति धारा की शाखाएँ

4.1.3 निर्गुण भक्ति धारा की विशेषताएँ

4.1.4 सूफी काव्य का परिचय

4.2 सारांश (Summary)

4.3 शब्दकोश (Keywords)

4.4 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

4.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी:

- निर्गुण भक्ति धारा का स्वरूप जानेंगे।
- निर्गुण भक्ति धारा की मुख्य शाखाओं की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- निर्गुण भक्ति धारा की विशेषताएँ जानेंगे।

प्रस्तावना (Introduction)

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल का समय संवत् 1375 से लेकर संवत् 1700 तक माना जाता है। भक्ति का बीज तो भारत में वैदिक काल से था अनुकूल परिस्थितियाँ पाकर वह इस युग में एक धारा के रूप में प्रकट हुआ।

4.1 निर्गुण भक्ति धारा

भक्तिकाल में दो प्रमुख भक्ति धाराएँ प्रवाहित हुईं।

1. निर्गुण भक्ति धारा
2. सगुण भक्ति धारा

निर्गुण भक्ति धारा के अन्तर्गत ईश्वर के निराकार रूप की उपासना तथा ज्ञान और प्रेम द्वारा ईश्वर प्राप्ति की बात कही गयी। तो सगुण भक्ति-धारा में ईश्वर के साकार सगुण रूप की उपासना राम और कृष्ण रूप में भगवान विष्णु के अवतारों की कल्पना करके सख्य और सेवक भाव से भक्ति कर ईश्वर की प्राप्ति का मार्ग बताया गया।



Did u know? इन दोनों भक्ति-धाराओं की दो-दो शाखाएँ हो गईं।

निर्गुण भक्ति-धारा- 1. ज्ञान-मार्गी शाखा तथा 2. प्रेम-मार्गी भक्ति शाखा।

सगुण भक्ति-धारा- 1. कृष्ण भक्ति शाखा तथा 2. राम भक्ति शाखा।

4.1.1 निर्गुण भक्ति का स्वरूप

ज्ञान-मार्ग और भक्ति मार्ग के दो रूप हैं जो विरोधी न होकर परस्पर सम्बद्ध हैं। ज्ञान की अनुभूति ही भक्ति है। ज्ञान-मार्ग पर चलनेवाले आचार्यों ने भी ज्ञान के अनुभूति पक्ष पर बल दिया है। बिना अनुभूति का ज्ञान मात्र वाक्य-ज्ञान है जिससे कुछ भी सिद्ध नहीं होता। भक्ति को विद्या-माया माननेवाले तथा ज्ञान-मार्ग को ही एकमात्र सच्ची साधना के रूप में स्वीकार करने वाले आचार्य शंकर ने भी ज्ञान के अनुभूति-पक्ष पर बल दिया है। 'अहम ब्रह्मास्मि' का ज्ञानमात्र तो निष्फल ही रहता है। सिद्धि तो तब होती है जब यह ज्ञान अनुभव में पर्यवसित हो जाता है। अनुभवावसानत्वात् ब्रह्मज्ञानस्य। आचार्य शंकर का यह स्पष्ट मत है कि जब तक ज्ञान का अनुभव में अवसान नहीं होता, तब तक वह निस्सार है ज्ञान-मार्ग में अनुभूति की इस स्वीकृति के आलोक में निर्गुण भक्ति के स्वरूप पर विचार किया जाये तो उसका सन्तुलित विवेचन और मूल्यांकन आसानी से किया जा सकता है।

अवतारवाद को स्वीकार कर लेने के फलस्वरूप सगुण भक्ति को एक साकार आलम्बन मिल जाता है जिसके कारण उसे सामान्य अशिक्षित व्यक्ति भी सहज ही स्वीकार कर सकता है। निर्गुण भक्ति का आलम्बन निराकार है, फलस्वरूप वह जनसाधारण के लिए ग्राह्य नहीं हो सकती। सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से सगुण भक्ति निर्गुण भक्ति की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है, किन्तु इसी आधार पर निर्गुण भक्ति की सत्ता या महत्त्व के विषय में सन्देह नहीं किया जाना चाहिए। यह सत्य है कि सगुण भक्ति पर आस्था रखने वाले साधकों ने निर्गुण भक्ति को लेकर तरह-तरह की शंकाएँ उठायी हैं। उनका मूल तर्क यह है कि निर्गुण ब्रह्मज्ञान का विषय तो हो सकता है, किन्तु भक्ति का नहीं, क्योंकि भक्ति तो किसी साकार, मूर्त और विशिष्ट के प्रति ही उन्मुख हो सकती है। सामान्य जनता का विश्वास और आचरण भी इसी तर्क की पुष्टि करता दिखायी देता है। इस समस्या पर विचार करते हुए पहले यह स्पष्ट कर लेना चाहिए कि भक्ति का तात्त्विक स्वरूप क्या है? इस सम्बन्ध में यह माना जाता है कि 'स्नेहपूर्वक ध्यान ही भक्ति है'। प्रश्न यह है कि यदि स्नेहपूर्वक ध्यान ही भक्ति है, तो फिर निर्गुण की भक्ति या स्नेहपूर्वक ध्यान क्यों नहीं किया जा सकता? सामान्य रूप से यह माना जाता है कि निर्गुण ब्रह्म का सम्बन्ध ज्ञान-मार्ग के साथ है और सगुण ब्रह्म का भक्ति के साथ। इसलिए जब कभी कोई निर्गुण ब्रह्म की बात करता है तो श्रोता का ध्यान नैसर्गिक रूप से ज्ञान-मार्ग की ओर ही जाता है, भक्ति-मार्ग की ओर नहीं। और इसी प्रकार सगुण ब्रह्म का उल्लेख करते ही भक्ति-मार्ग अपनी समग्र पूजा-विधि के साथ उपस्थित हो जाता है। इसका एक परिणाम यह भी हुआ कि भक्ति और पूजा या अर्चना में अभेद माना जाने लगा। मंदिरों में जाना, भगवान पर दीप, अर्घ्य आदि चढ़ाना, मूर्ति की सेवा

Notes

करना और उसकी आरती आदि उतारना भक्ति के अभिन्न अंग माने जाने लगे। परन्तु क्रमशः कबीर और तुलसी (विनयपत्रिका) के निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि भक्तों की दृष्टि में सगुण भक्ति और निर्गुण भक्ति में कितनी समानता है:

ऐसी आरती त्रिभुवन तारै, तेज पुंज तहां प्रान उतारै।

पानी पंच पुहुप करि पूजा, देव निरंजन और न दूजा।

तनमन सीस समरपन कीन्हा, प्रकट ज्योति तहां आतम लीना।

दीपक ग्यान सबद धुति घंटा, परम पुरिख तहां देव अनंता।

परम परकास सकल उजियारा, कहै कबीर मैं दास तुम्हारा।

कबीरदास ने 'दीपक ज्ञान' का उल्लेख किया है, तो तुलसीदास ने भगति-वैराग्य-विज्ञान-दीपाली का उल्लेख किया है। उक्त उदाहरणों में 'निर्गुण राम जपहु रे भाई' कहनेवाले कबीरदास में और दशरथनन्दन भगवान रामचन्द्र के उपासक तुलसीदास में अद्भुत समानता पायी जाती है। चाहे 'दशरथ-सुत' आराध्य हो और चाहे 'राम-नाम का मरम हो आना' दोनों ही स्थितियों में भक्ति की अनुभूति में बुनियादी समानता पायी जाती है। यदि ब्रह्म के साकार और निराकार रूपों में गुणों की समानता है और भक्त-पद्धति में इन समान गुणों की स्वीकृति भी हो जाती है, तो निर्गुण की भक्ति को स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती।



Notes

भक्तिकाल में दो प्रमुख भक्ति धाराओं में साधना के विधि मार्ग या रूप निवृत्ति मार्ग और प्रवृत्तिमार्ग, ज्ञान मार्ग और भक्ति मार्ग, निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति, भक्ति और रहस्यवाद हैं।

सगुणोपासक तुलसीदास के लिए भी निर्गुण की सत्ता अमान्य नहीं है। इतना ही नहीं, वे तो भक्ति के लिए दोनों रूपों के ध्यान को अनिवार्य मानते हैं। आराध्य देव के निर्गुण रूप को समझे बिना सगुण भक्ति भी संभव नहीं है।

इसका कारण स्पष्ट है यहाँ आराध्य गोचर राम ही नहीं है। भक्त के लिए आवश्यक है कि वह अवतार रूप राम के उन गुणों का भी ध्यान करे जो उनके सहज और नैसर्गिक गुण हैं। इसलिए तुलसीदास ने 'विनयपत्रिका' में राम के उन गुणों का उल्लेख किया है जो वस्तुतः निर्गुण ब्रह्म के गुण हैं:

“निरगुन राम जपहु रे भाई, अबिगत की गति लखी न जाई

चारि बेद जाकै सुमृत पुराना, नौ व्याकरनां मरम न जाना।

सेस नाग जाकै गरुड़ समाना, चरन कंवल कमला नहीं जाना।

कहै कबीर जाकै भेदै नांही, निज जन बैठे हरि की छांही।”

यह 'शेषनाग', 'गरुड़', 'कमला', आदि के उल्लेख में कबीरदास सगुण रूप के प्रसंगों की ओर संकेत करते प्रतीत होते हैं। सगुण भक्ति में निर्गुण भक्ति में 'शेषनाग', 'गरुड़', 'कमला' प्रभृति सगुण के प्रसंगों का उल्लेख आकस्मिक नहीं है वरन् इससे निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति की तथा ज्ञान-मार्ग और भक्ति-मार्ग के बीच की मूलभूत समानता प्रकाशित होती है। जिस प्रकार भक्ति या राग के मार्ग पर चलने वाले के लिए सत्य-ज्ञान का महत्त्व है, उसी प्रकार ज्ञान के मार्ग पर चलने वाले को राग

या आराध्य से तादात्म्य की अनुभूति महत्वपूर्ण है। दोनों मार्ग में वैराग्य, ज्ञान प्रभृति सम्प्रदाय भगवद्विषयक राग से सदैव यथा समय उत्पन्न होती रहती है। इस अंश में भक्ति के राग तथा वैराग्य मार्ग में कोई तात्त्विक अन्तर नहीं है। वैष्णवों के भीतर सब भक्त रसिक या रागमार्गी नहीं हैं। शैव भक्तों में भी इस प्रकार का भेद लक्षित होता है। शैव साधना में ज्ञान का प्राधान्य रहने पर भी भक्ति को ऊँचा स्थान दिया गया है।

निर्गुण भक्ति की मान्यता के बारे में जो सन्देह व्यक्त किया जाता है, उसका प्रधान कारण है—मध्यकालीन साधना की एकांगी या एकपक्षीय विवेचना। प्रायः साधना के विविध मार्गों या रूपों—निवृत्तिमार्ग, ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग, निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति, भक्ति और रहस्यवाद, आदि का विवेचन करते हुए यह सहज ही स्वीकार कर लिया जाता है कि ये मार्ग या रूप परस्पर भिन्न और विरोधी हैं। इस तरह की मान्यता के ऐतिहासिक कारण हैं। शंकराचार्य ने ज्ञान और भक्ति तथा निर्गुण और सगुण के विरोध की स्थापना करते हुए निर्गुण से ज्ञान को सम्बद्ध किया है और निर्गुण ब्रह्म और ज्ञान-साधना को ही परम सत्य के रूप में स्वीकार किया है। उनके मतानुसार सगुण अर्थात् ईश्वर और भक्ति दोनों ही माया के अन्तर्गत आते हैं। उन्होंने भक्ति को विद्या-माया मानकर उसके आंशिक महत्त्व को तो स्वीकार किया है, किन्तु सगुण भक्ति की यह स्वीकृति परम सत्य नहीं है और स्पष्ट ही जो साधक परम सत्य-निर्गुण अद्वैत ब्रह्म की अनुभूति करना चाहता है, उसे भक्ति को अस्वीकार करना होगा। शंकराचार्य के विरोध में आचार्य रामानुज, आचार्य बल्लभ आदि ने प्रस्थानत्रयी की गम्भीर व्याख्याएँ करते हुए भक्ति को ही परम सत्य के रूप में प्रतिष्ठित किया है। इन वैष्णव आचार्यों ने भक्ति को प्रतिष्ठित करने के लिए सगुण रूपों की— राम, कृष्ण आदि की भी प्रतिष्ठा की। शंकराचार्य और इन वैष्णव आचार्यों की इस परस्पर-विरोधी दृष्टि और सत्य-सम्बन्धी मान्यता का प्रभाव यह हुआ कि ब्रह्म के निर्गुण रूप और सगुण रूप में विरोध माना जाने लगा, जो न केवल ज्ञान (वैराग्य, निवृत्ति) और (राग, प्रवृत्ति) के विरोध के रूप में समझा जाने लगा, अपितु निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति के विरोध के रूप में भी माना गया।



Task

निर्गुण भक्ति धारा के स्वरूप को स्पष्ट करें।

यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि ज्ञानमार्ग को तो आचार्य शंकर जैसे मेधावी आचार्यों ने प्रतिष्ठित किया था और इसका आरम्भिक रूप उपनिषदों में भी मिल जाता है, इसलिए ज्ञानमार्ग की सत्ता के बारे में किसी को सन्देह नहीं हुआ किन्तु निर्गुण भक्ति की स्थापना में किसी ऐसे मेधावी आचार्य का योगदान नहीं रहा और निर्गुण को ज्ञान-मार्ग से सम्बद्ध रूप में समझने के कारण निर्गुण भक्ति की सत्ता को ही सन्देह की दृष्टि से देखा जाने लगा।

सूफी साधना-पद्धति में भी गुरु का वही महत्त्व है जो साधना की अन्य पद्धतियों में है। साधना का मूल रूप भी वैसा ही है— सांसारिक प्रपंच से ऊपर उठकर अलौकिक सत्ता की प्राप्ति के लिए साधना करना। इस साधना के विघ्न भी सन्तों एवं भक्तों के चिरपरिचित शत्रु— काम, क्रोध आदि हैं जिन पर विजय पाये बिना साधक सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता। 'पदमावत' में जायसी ने हीरामन तोते के रूप में गुरु का संकेत किया है। रत्नसेन द्वारा राज्य, पत्नी आदि का त्याग संसार से विरक्ति का सूचक है और पदमावती के रूप-वर्णन में व्यापक और विराट् परम शक्ति का संकेत मिलता है। जिस प्रकार निर्गुण भक्ति में भगवान की भक्तवत्सलता की स्वीकृति है, उसी प्रकार रहस्यवाद में साध्य भी साधक की साधना से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। जब रत्नसेन पदमावती से मिलने के लिए सिंहलद्वीप जाता

Notes

है तब जायसी ने पदमावती की विचित्र मनोदशा का जो चित्रण किया है, वह साधक की साधना के प्रभाव का ही सूचक है।

ज्ञानमार्गी निर्गुण भक्ति की अपेक्षा रहस्यवाद की अभिव्यक्ति अधिक स्थूल है क्योंकि वह स्थूल-गोचर विशिष्ट प्रतीकों के माध्यम से हुई। इस दृष्टि से तसव्वुफ की स्थिति निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति की मध्यवर्ती है। किन्तु भारतीय परम्परा में पले व्यक्ति के लिए रहस्यवादी पद्धति के प्रेम-इश्के-हकीकी की अपेक्षा निर्गुण भक्ति अधिक ग्राह्य है। इसका कारण स्पष्ट है— निर्गुण भक्ति श्रुतिकालीन साधना की परम्परा से जुड़ी हुई है और उपासना एवं ध्यान की परम्परा में देखी जा सकती है। इसके विपरीत तसव्वुफ को व्यक्त करनेवाली प्रेमकथाओं के काव्य अपने विशिष्ट गोचर पात्रों के प्रेम-चित्रण के कारण सामान्य सहृदय की दृष्टि में प्रधान रूप से प्रेमकाव्य ही बने रहते हैं। उनके लोकोत्तर संकेतों को वह मुख्य रूप से ज्ञान के धरातल पर ही ग्रहण कर पाता है। एक प्रकार से इन काव्यों की अनुभूति के आस्वाद की समस्या माधुर्य भाव के पदों की अनुभूति के आस्वाद की समस्या से समानता रखती है।

कबीर आदि सन्त कवियों और जायसी आदि सूफी कवियों को निर्गुण भक्तिधारा में स्वीकार करने के दो कारण माने जाते हैं। पहला कारण— इष्टदेव की अगोचर, अक्षर और सर्वशक्तिमान के रूप से स्वीकृति और दूसरा— इष्टदेव के किसी गोचर विशिष्ट और अक्षर रूप की स्वीकृति का अभाव।

निर्गुण भक्ति और रहस्यवादी प्रेम-पद्धति की सीमा भी वही है जो ज्ञान-मार्ग की है। निर्गुण को ही आराध्य रूप में स्वीकार करने का परिणाम यह हुआ कि साधना की इन दोनों पद्धतियों की स्वीकृति सीमित क्षेत्र के भीतर ही रही। जब सगुण भक्ति या प्रेम को आलम्बन के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। तो फिर निर्गुण की ओर आकर्षित होने की सम्भावना अत्यन्त सीमित हो जाती है। जिस प्रकार अधिकांश व्यक्ति ज्ञान-मार्ग पर नहीं चल सकते, उसी प्रकार वे निर्गुण भक्ति और रहस्यवादी प्रेम-साधना को भी स्वीकार नहीं कर सकते। लेकिन यह निर्विवाद है कि जिस प्रकार ज्ञान-मार्ग साधना का एक विशिष्ट रूप है उसी प्रकार निर्गुण भक्ति और रहस्यवादी प्रेम पद्धति भी साधना के विशिष्ट रूप हैं।

4.1.2 निर्गुण भक्ति धारा की शाखाएँ

निर्गुण भक्ति धारा की ज्ञानमार्गी शाखा और प्रेममार्गी शाखा का विवरण इस प्रकार है—

1. **ज्ञानमार्गी शाखा:** यह भक्ति-धारा हिन्दुओं की ओर से हिन्दू मुस्लिम एकता स्थापित करने की इच्छा का फल थी। इस धारा के प्रवर्तक कबीर थे जो उच्छकोटि के समाज सुधारक एवं कवि थे। कबीर आदि संत कवियों ने निर्गुणवाद में हिन्दुओं और मुसलमानों को एक-दूसरे के निकट लाने की सम्भावना देखी। मुसलमान एकेश्वरवाद में विश्वास रखते थे। उनका मंत्र था 'ला इलाह लिलू इल्लाह' 'मुहम्मद रसूल अल्लाह' अर्थात् 'अल्लाह' के सिवाय दूसरा अल्लाह नहीं है और मुहम्मद खुदा का रसूल या दूत है। वे मूलतः बहुईश्वरवाद के विरुद्ध थे। इस कारण वे देवी-देवताओं की पूजा में हिन्दुओं का साथ नहीं दे सकते थे। हिन्दू भी वास्तव में बहु-ईश्वरवादी नहीं थे, बल्कि वे सभी देवी-देवताओं को एक परमात्मा का ही रूप मानते थे— 'एकम् सत् विप्ता: बहुधा वदन्ति' हिन्दुओं का निर्गुणवाद मुसलमानों के खुदावाद के बहुत निकट आ जाता था। निर्गुणवाद में खुदा की एकता और निराकारता सम्मिलित है।

संत कवियों ने ज्ञानपूर्ण निर्गुण भक्ति का उपदेश दिया। ज्ञानमार्गी संत कवियों ने आत्मा को परमात्मा की पत्नी रूप में स्वीकार किया। उनका मानना था कि जिस प्रकार पत्नी पति को प्राप्त करने के लिए साधना करती है, भक्त भी ईश्वर को प्राप्त करने के लिए साधना करता है उन्होंने आत्मा को परमात्मा का ही अंश माना। संत कवियों का मानना था कि भक्ति और ज्ञान की साधना से मनुष्य की आत्मा शुद्ध हो जाती है। यही अवस्था 'परमानंद' की अर्थात् मिलन की है।

2. **प्रेममार्गी शाखा:** निर्गुण काव्यधारा की दूसरी शाखा प्रेममार्गी भक्ति शाखा है। यह भक्ति शाखा मुसलमान सूफियों और संतों की सद्भावना का फल थी। सूफी सम्प्रदाय हिन्दू धर्म के निकट पहुँच जाते हैं। सूफी लोग ईश्वर को अपने प्रेम पात्र के रूप में देखना चाहते हैं, जबकि साधारण शरीयत को मानने वाला मुसलमान ईश्वर के साथ मालिक और बन्दे का सम्बन्ध मानता है। सूफी संतों ने आत्मा को पति और परमात्मा को पत्नी माना। सूफी संत आत्मा और परमात्मा के मिलन में शैतान को बाधक मानते हैं। यह बाधा सच्चे गुरु की कृपा से ही दूर की जा सकती है।

प्रेम मार्गी शाखा के सूफी संत ईश्वर को एक मानते हैं जिसका नाम वे 'हक' मानते हैं। वे आत्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं मानते हैं। उनके अनुसार आत्मा परमात्मा के सामने अपने आप को बन्दे के रूप में पेश करती है और बन्दा प्रेम के द्वारा परमात्मा तक पहुँचने का यत्न करता है। परमात्मा तक पहुँचने के लिए बन्दे को चार दशाओं – शरीयत, तरीकत, हकीकत और मारफत – को पार करना पड़ता है। मारफत में रूह जीवन प्राप्त करने के लिए फना हो जाती है और परमात्मा में विलीन हो जाती है। तब सूफी लोग 'अन्-अल्-हक' कह उठते हैं। इस्लाम ने इस नारे को सहन नहीं किया। मंसूर जैसे सूफी संत 'अनलहक' कहने पर सूली पर चढ़ा दिये गये। तब सूफी लोग भारत में आकर बस गये। यहाँ आकर उन्हें अपने अनुकूल वातावरण मिला तथा यहाँ सूफी संतों ने हिन्दुओं के समान अनेक सम्प्रदाय भी खड़े कर लिये थे। 'आइने अकबरी' में सूफियों के 14 सम्प्रदायों का उल्लेख है, जिनमें प्रसिद्ध सम्प्रदाय हैं:

- (क) **चिश्ती सम्प्रदाय:** जिसके प्रवर्तक ख्वाजा मुईन-उद्दीन चिश्ती थे। इनका प्रचार केन्द्र अजमेर रहा। वहीं इनकी मजार है। लोग आज भी इन्हें अजमेर वाले ख्वाजा के नाम से जानते हैं।
- (ख) **सुहरावर्दी सम्प्रदाय:** जिस की स्थापना सैयद जलालुद्दीन सुखपोश ने की। इस सम्प्रदाय का प्रचार प्रभाव सिंध, गुजरात, बिहार और बंगाल में अधिक रहा।
- (ग) **कादरी सम्प्रदाय:** इस सम्प्रदाय की स्थापना सन् 1482 में सैयद बंदगी मुहम्मद गौस ने उच्च शरीफ में की। अपने चमत्कारों के कारण इस सम्प्रदाय ने विशेष प्रसिद्धि पाई। कश्मीर उनका प्रचार क्षेत्र रहा।
- (घ) **नक्शबंदी सम्प्रदाय:** भारत में इसे मुहम्मद बाकी गिल्लाह लाये। इसके सिद्धांत अधिक बुद्धिलब्ध होने के कारण जनता को स्वीकार्य न हुआ। दूसरे यह सम्प्रदाय बहुत बाद में आया। अतः भारतीय जनता ने यथोचित स्थान न दिया। सूफी प्रेममार्गी शाखा के प्रमुख कवि मलिक मुहम्मद जायसी हुए। इनके अतिरिक्त अन्य सूफी संत कवियों में कुतबुन, मंज़न, उस्मान तथा शेख नवी प्रसिद्ध हैं।

जायसी ने हिन्दी साहित्य का प्रथम प्रामाणिक महाकाव्य, 'पद्मावत' लिखा तथा दोहा-चौपाई शैली में काव्य रचकर तुलसी जैसे कवियों को प्रेरणा दी।

4.1.3 निर्गुण भक्ति धारा की विशेषताएँ

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में दो प्रकार की काव्यधाराएँ प्रवाहित हुई— निर्गुण भक्ति धारा और सगुण भक्ति धारा। निर्गुण भक्ति धारा में ईश्वर के निर्गुण रूप की भक्ति और सगुण भक्ति धारा को ईश्वर के सगुण रूप, विशेषकर भगवान् विष्णु के दो मुख्य अवतारों श्री राम और श्री कृष्ण की भक्ति को लेकर काव्य की रचना हुई।

निर्गुण भक्ति धारा के अन्तर्गत ज्ञानमार्गी और प्रेममार्गी नामक दो उपधाराएँ या शाखाएँ अस्तित्व में आईं। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी इस शाखा को 'निर्गुण भक्ति-साहित्य' कहते हैं। बाल विवाह और पर्दा प्रथा इसी दिशा के दो महत्वपूर्ण कदम थे। ऐसी स्थिति में ज्ञानमार्गी संत कवियों ने परिस्थितियों की नज़ाकत समझते हुए सांप्रदायिक एकता स्थापित करने का प्रयास किया। इसी आधार पर हम निर्गुण काव्य की ज्ञानमार्गी शाखा के काव्य में निम्नलिखित विशेषताएँ देखते हैं:

1. **निर्गुण ब्रह्म में विश्वास:** ज्ञानमार्गी संत कवि निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर बल देते हैं। निर्गुण ब्रह्म को इन संतों ने वर्णनातीत माना तथा इसे अनुभवजन्य कहा। क्योंकि निराकार ईश्वर प्रत्येक कंठ में विद्यमान है अतः उसे बाहर ढूँढना मूर्खता है। केवल ज्ञानमार्ग द्वारा ही हम अपने हृदय के भीतर उसका साक्षात्कार कर सकते हैं।



Task

निर्गुण भक्तिधारा में किन-किन बातों का विरोध किया गया?

निर्गुण नाम जपहु रे भाई

अविगत की गति लखी न जाई॥

निर्गुण ईश्वर का वर्णन नहीं किया जा सकता: इस विषय में कबीर जी कहते हैं—

पार ब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान

कहिबे हूँ सोभा नहीं देख्या ही परवान

निर्गुण संत कवियों के राम दर्शन दशरथ के पुत्र श्रीराम न होकर निराकार ईश्वर ही हैं जो संसार के कण-कण में विद्यमान हैं। उसे मंदिरों, मस्जिदों में या जंगलों में धूनी रमा कर नहीं खोजा जा सकता। वह मनुष्य के अपने ही हृदय में बसा है।

कबीर जी कहते हैं—

कस्तूरी कुंडली बसै, मृग ढूँढे बन माहि

ऐसे घट-घट राम हैं दुनिया देखे नाहि।

2. **एकेश्वरवाद का समर्थन एवं बहुदेववाद का विरोध:** निर्गुणवादी संत कवियों ने हिन्दुओं और मुसलमानों में एकता स्थापित करने के उद्देश्य से एकेश्वरवाद का समर्थन किया तथा बहुदेववाद का विरोध।

कबीर ने कहा है—

जन्म मरन से रहित है मेरा साहिब सोय

बलिहारी वहि पीव की, जिन सिरजा सब कोय।

3. **रूढ़िवाद एवं मिथ्याडम्बर का विरोध:** निर्गुणवादी संत कवियों ने हिंदुओं और मुसलमानों दोनों में प्रचलित मिथ्याडम्बरों और रूढ़ियों का डटकर विरोध किया। उन्होंने पण्डितों और मुसलमानों द्वारा धर्म की आड़ में किये जाने वाले जनसाधारण के शोषण का पर्दाफाश किया। दिन भर माला फेरने वाले हिंदुओं और मुसलमानों पर व्यंग्य करते हुए कबीर कहते हैं—

माला फेर क्या भया जो भगति न आई हाथि।

दाढ़ी मूँछ मुड़ाइकै चला दुनि कै साथि।

मुसलमानों को उन्होंने कहा—

दिन भर रोजा रहत है राति हनत है गाय

यह तो खून वह बन्दगी, कैसे खुखी खुदाय।

हिंदुओं को उन्होंने कहा—

पाहन पूजे हरि मिलै, तो मैं पूजूँ पहार।

ताते यह चाकी भली, पीस खाय संसार॥

गुरूनानक वाणी में भी पाखण्ड का खण्डन करते हुए लोगों को मन की शुद्धि को अपनाने का उपदेश दिया गया है। कबीर जी कहते हैं—

माला फेरत जग भया, मिटा न मन का फेर

कर का मनका डोरिकै, मनका मनका फेर

4. **जाति-पाति तथा भेदभाव का विरोध:** ज्ञानमार्गी शाखा के कवि जाति-पाति में विश्वास नहीं रखते थे। उनका विश्वास था कि जाति-पाति, ऊँच-नीच की ये दीवारें मनुष्य ने अपने स्वार्थ के लिए खड़ी की हैं। जबकि ईश्वर तो सबका एक है।

कबीर जी ने लिखा है—

जाति पाति पूछे नहीं कोय।

हरि को भजे सो हरि का होय॥

5. **सतगुरू का महत्त्व:** ज्ञानमार्गी संत कवियों ने गुरू की महत्ता पर अधिक बल दिया है। उन्होंने गुरू को ईश्वर से भी बड़ा माना है।

कबीर जी लिखते हैं—

गुरू गोबिंद दोऊ खड़े काके लागूँ पाँय।

बलिहारी गुरू आपने, हरि को दिया बताय॥

संत कवियों का विश्वास है भगवद्कृपा पाने के लिए गुरू कृपा अनिवार्य है। गुरू ही मनुष्य के मानसिक एवं शारीरिक विकारों को दूर कर सकता है।

गुरू कुम्हार शिष कुंभ है गढ़ि गढ़ि काढ़ै खोट

अन्तर हाथ सहार दै बाहर वाहै चोट

Notes

उनका मानना था कि गुरु ही मनुष्य के हृदय में ज्ञान चक्षु खोलकर मन के अंधकार को मिटा सकता है।

सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपगाए।

लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावन हार॥

6. **भाषा शैली:** संत कवियों की भाषा संवतन्त और आडम्बर रहित थी। इन्होंने सरल और आम बोल-चाल की भाषा का प्रयोग किया। संत कवि, कवि होने के साथ-साथ समाज सुधारक थे। जिस कारण वह चारों ओर विचरण करते थे। गुरु नानक देवजी तो मक्का और चीन तक जा पहुँचे थे। इसी कारण उनकी भाषा में विभिन्न प्रांतों एवं बोलियों का समावेश देखने को मिलता है। संत कवियों ने काव्य शास्त्र या छन्द शास्त्र के नियमों की चिंता नहीं की।

स्व:मूल्यांकन

निम्न कथनों में सत्य/असत्य बताएं:

1. निर्गुण भक्ति धारा में ईश्वर के निराकार रूप की उपासना की बात कही गई है।
2. ज्ञानमार्गी काव्य शाखा के करीब 50 संत कवि हुए हैं।
3. चिश्ती और सुहरावर्दी प्रेममार्गी शाखा से सम्बन्धित हैं।
4. सूफी शब्द का सम्बन्ध यूनानी के शब्द सोफोस से नहीं होता।

4.1.4 सूफी काव्य का परिचय

हिन्दी साहित्य के इतिहास में निर्गुण काव्य धारा के ज्ञान मार्गी संत कवियों ने भक्ति के जिस सामान्य मार्ग द्वारा हिन्दु मुसलमानों में एकता स्थापित करने का प्रयास आरम्भ किया था, उसे विकसित करने में मुसलमान सूफी संतो ने अपना सतत् सहयोग प्रदान किया। इसका मुख्य कारण यह था कि संतो का ज्ञान हृदय से सम्बद्ध न होकर मस्तिष्क से सम्बद्ध था और वे अधिकतर निम्न जातियों से आए थे तथा अशिक्षित थे परन्तु सूफी संतो ने भारतीय समाज और उसके लोगों की समस्याओं का अध्ययन किया और ज्ञान के स्थान पर प्रेम द्वारा निर्गुण भक्ति का प्रचार किया।

विद्वान सूफी शब्द का अर्थ सूफ (ऊन) बताते हैं और ऊनी वस्त्र पहनने वालों को सूफी कहते हैं। कुछ विद्वान “सूफी” शब्द ‘सफा’ शब्द से जोड़ते हैं जिसका अर्थ पवित्रता और शुद्धता है इसी के अनुसार पवित्र और शुद्ध आचरण वाले व्यक्ति को सूफी कहा गया है। कुछ विद्वान ‘सूफी’ शब्द का सम्बन्ध यूनानी के शब्द ‘सोफोस’ से मानते हैं जिसका अर्थ है ‘बुद्धिमान’ या ‘ज्ञानी’। इस तरह सूफी काव्य ज्ञान का काव्य है।

सूफी काव्य की विशेषताएँ

1. **लोक पक्ष एवं हिन्दू संस्कृति:** प्रेम मार्गी सूफी कवियों का प्रेम संत कवियों से भिन्न है। उनका प्रेम व्यक्तिगत होने के साथ-साथ समष्टिगत भी है। यही कारण है कि इनके प्रेम काव्यों में लोक जीवन का चित्रण बड़ी सफलता के साथ किया गया है। सूफी कवियों ने अधिकांश प्रेम कथाएँ

हिन्दू घरानों से ली हैं। इनमें हिन्दू आचार-विचार, रहन-सहन लोकोत्सव, लोकव्यवहार तीर्थ व्रत आदि का अंकन किया गया है। जिस से यह सिद्ध होता है कि सूफी कवियों को हिन्दू धर्म और संस्कृति का अच्छा ज्ञान था।

इतिहास की रक्षा इन्होंने वहीं तक की है जहां तक कि वह उनके साध्य-अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना-की अभिव्यक्ति आवश्यक थी। इस प्रकार सूफी कवियों ने हिन्दू प्रेम कथाओं को आधार बनाकर अपने उदार धार्मिक सिद्धान्तों का प्रचार किया।

2. **खण्डनात्मक प्रवृत्ति से परहेज:** सूफी काव्य में किसी भी धर्म, जाति या सम्प्रदाय का खण्डन-मण्डन नहीं किया। इसके विपरीत सूफी काव्य में हिन्दू जीवन का पूर्ण चित्रण किया गया है जिसमें जन साधारण के अन्ध विश्वास, मनोतियाँ, जन्त्र-तन्त्र प्रयोग, जादूटोना, डायनों की करतूतों आदि का वर्णन किया गया। 'पद्मावत' में जायसी ने हिन्दू जीवन का पूर्ण चित्र अंकित कर दिया है। यथा-राजा रत्न सेन के गृह त्याग पर उसके माता-पिता का रोना, यात्रा, युद्ध, सपत्नी, कलह, स्वामी भक्ति, सतीत्व, बहु विवाह वर्णन, योग की नौ परियों का वर्णन, नागमति का विरह वर्णन, पद्मावती का रस रंग समागम सभी कुछ हिन्दू जीवन का परिचय देते हैं

सूफी कवि कट्टर मुसलमान नहीं थे अपितु सीधे सादे तथा मुलायम स्वभाव के थे। इसी कारण इनका काव्य आडम्बर रहित है।

3. **मसनवी शैली और भारतीय कथा रूढ़ियों का समन्वय:** सूफी कवियों की रचनाओं में फारसी की मसनवी शैली अपनाई गई है किन्तु साथ साथ ही उन्होंने भारतीय कथा-रूढ़ियों का भी प्रयोग किया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इस सम्बन्ध में लिखते हैं—“कथानक को गति देने के लिए सूफी कवियों ने प्रायः उन सभी कथानक रूढ़ियों का व्यवहार किया है जो परम्परा से भारतीय कथाओं में व्यवहृत होती आई हैं; जैसे चित्र-दर्शन, स्वप्न द्वारा अथवा शुक-सारिका द्वारा नायिका का रूप देख या सुन कर उस पर आसक्त होना, पशु-पक्षियों की बातचीत से भावी घटना का संकेत पाना, मन्दिर या चित्रशाला में प्रिय युगल का मिलन होना, इत्यादि।”

फारसी की मसनवी शैली के अनुसार उन्होंने अपने काव्यों में नायक के रूप में आत्मा को प्रेमिका (परमात्मा) की प्राप्ति के लिए अत्यन्त प्रयत्नशील दिखाया है तो भारतीय पद्धति के अनुसार प्रेमिका (स्त्री) प्रेमी (पुरुष) की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है। जायसी ने 'पद्मावत' में पद्मावती के सतीत्व एवं पति प्रेम के दृश्य अंकित करके भारतीय पद्धति का भी निर्वाह किया है। इस प्रकार सूफी कवियों ने हिन्दू मुसलमान संस्कृतियों के समन्वय ने संत कवियों के अधूरे काम का हृदय स्पंदनात्मक साहित्य से पूरा किया।

4. **प्रबन्ध काव्य शैली:** सूफी काव्य ग्रन्थ अधिकतर प्रबन्ध शैली में लिखे गये। सूफी कवियों ने अपने उद्देश्य की अनुकूलता के लिए कहानी की घटनाओं में अपेक्षित परिवर्तन एवं परिवर्द्धन भी किया। किन्तु काव्योचित वस्तु एवं घटना वर्णन में जो प्रवाह और गति अपेक्षित है, प्रायः इन काव्यों में उसका अभाव है। इस का मुख्य कारण यह है कि सूफी कवियों का ध्यान मुख्यतः अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना पर ही केन्द्रित रहा। उन्होंने इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु जितने वस्तु वर्णन की आवश्यकता पड़ी उन्होंने उनका प्रयोग किया। प्रबन्ध काव्योचित जीवन के विविध दृश्य इन काव्यों में नहीं हैं। सूफी कवि जायसी ने हिन्दी साहित्य को प्रथम प्रामाणिक महाकाव्य 'पद्मावत' प्रदान किया।

Notes

5. **रहस्यवाद:** सूफी काव्य में रहस्यवाद के भी दर्शन होते हैं। किन्तु इनका रहस्यवाद कबीर तथा सिद्धों के रहस्यवाद से भिन्न था। संत कवियों का रहस्यवाद ज्ञान पर आधारित होने के कारण नीरस था किन्तु सूफी कवियों का रहस्यवाद सरल है। इसमें हृदय की अनुभूतियों को स्थान मिला है। सूफियों ने ईश्वर और जगत् दोनों को सत्य माना है। जब ईश्वर को हम सत्य मानते हैं तो उस का बनाया जगत् असत्य कैसे हो सकता है—ऐसा सूफियों का मानना था। इसी आधार पर सूफी कवियों ने रहस्यवाद की सुन्दर अभिव्यक्ति की है।
6. **नायक के चरित्र-चित्रण पर बल:** सूफी काव्य में नायक के चरित्र-चित्रण की ओर विशेष ध्यान दिया। क्योंकि वहीं उनकी सम्पूर्ण सिद्धि का साधक है। इसी कारण सूफी काव्यों में नायक अनेक कठिनाइयों को पार करता हुआ लक्ष्य की सिद्धि करता है। नायक के माध्यम से ही सूफियों ने अपने विचारों का प्रचार किया।
7. **नारी चित्रण:** सूफी कवियों ने संत कवियों की तरह नारी को साधना में बाधक नहीं माना और न ही उससे बच कर रहने का उपदेश दिया। उन्होंने तो नारी को परमात्मा रूप में चित्रित किया तथा उसे सिद्धि प्राप्त करने में सहायक माना।
8. **श्रृंगार रस की प्रधानता:** सूफी काव्य अधिकांशतः प्रेम काव्य ही हैं अतः इस में श्रृंगार रस की प्रधानता होना स्वाभाविक ही है। सूफी काव्य में श्रृंगार की दोनों अवस्थाओं, संयोग और वियोग का सुन्दर चित्रण हुआ है किन्तु वियोग वर्णन सूफी काव्य की एक बड़ी विशेषता है। इसी कारण सूफी कवि अमर हो गए।

4.2 सारांश (Summary)

- भक्ति का बीज तो भारत में वैदिक काल से था और अनुकूल परिस्थितियाँ पाकर एक धारा के रूप में प्रवाहित हुआ। भक्तिकाल की प्रमुख धाराओं में दो प्रमुख धाराएँ— सगुण भक्ति और निर्गुण भक्ति धारा थी।
- निर्गुण भक्ति धारा के अंतर्गत ईश्वर के निराकार रूप की उपासना तथा ज्ञान, प्रेम द्वारा ईश्वर प्राप्ति की बात कही गई।
- निर्गुण भक्ति धारा में ज्ञान मार्ग और भक्ति मार्ग दो ऐसे रूप हैं जो परस्पर सम्बद्ध हैं। ज्ञान मार्ग को सच्ची साधना के रूप में स्वीकार करके उसके अनुभूति पक्ष पर अधिक बल दिया जाता है।
- इस भक्ति धारा के अनुसार इन्द्रियाँ, मन और विषय वासनाएं मनुष्य को भक्ति की ओर बढ़ने नहीं देतीं। यह एक ऐसी जंजीर के समान है जिसमें मानव इन जंजीरों को तोड़ कर मुक्त नहीं हो पाता।
- निर्गुण भक्ति की ज्ञानमार्गी शाखा के प्रवर्तक कबीर थे। हिन्दुओं और मुसलमानों को एक दूसरे के निकट लाने के लिए खुदा की एकता और निराकारता सम्मिलित की।
- इस काव्यधारा की दूसरी शाखा प्रेम मार्गी भक्ति शाखा है जो सूफी, संतों की सद्भावना का फल थी। इन्होंने आत्मा को पति और परमात्मा को पत्नी माना। इनके मिलन में शैतान को बाधक माना गया। यह बाधा सच्चे गुरु की कृपा से ही दूर की जा सकती है।

4.3 शब्दकोश (Keywords)

काव्य परम्परा: इतिहास से चली आ रही काव्य की परम्परा, नियम।

निष्कर्ष: परिणाम।

रूढ़ियाँ: पुरानी परम्पराएँ जो मानव विकास में बाधा पैदा करती हैं।

4.4 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. निर्गुण भक्ति धारा के स्वरूप और उसकी शाखाओं का संक्षिप्त वर्णन करें?
2. निर्गुण भक्ति धारा के अंतर्गत ज्ञानमार्गी भक्ति शाखा की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
3. निर्गुण भक्ति धारा में प्रेममार्गी शाखा (सूफी काव्य) के काव्य की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करें?
4. निम्न विषयों पर नोट लिखें:
(क) निर्गुण भक्ति धारा।
(ख) निर्गुण भक्ति धारा की शाखाएँ।
(ग) निर्गुण भक्ति धारा की विशेषताएँ।

उत्तर: स्व:मूल्यांकन

- | | |
|---------|----------|
| 1. सत्य | 2. असत्य |
| 3. सत्य | 4. असत्य |

4.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



हिन्दी साहित्य का इतिहास – शुक्ल आचार्य रामचन्द्र, लोकभारती प्रकाशन।

हिन्दी साहित्य का इतिहास – टंडन डॉ० कुवरचंद, जगताराम एंड संस प्रकाशन, इलाहाबाद।

हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ० मधु, वाणी प्रकाशन।

Notes

इकाई 5: संत काव्य के प्रमुख कवि: कबीर और उनका काव्य

अनुक्रमणिका (CONTENTS)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

5.1 संत काव्य के प्रमुख कवि कबीर

5.1.1 संत काव्य की विशेषताएँ

5.1.2 कबीर जी का जीवनवृत्त

5.1.3 कबीर के काव्य और सिद्धांत

5.1.4 कबीर जी की काव्यगत विशेषताएँ

5.1.5 कबीर जी की काव्यभाषा

5.1.6 काव्य समीक्षा

5.2 सारांश (Summary)

5.3 शब्दकोश (Keywords)

5.4 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

5.5 संदर्भ पुस्तक (Further Reading)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी:

- कबीर जी के जीवनवृत्त के बारे में जानेंगे।
- कबीर जी के व्यक्तित्व और उनकी काव्यगत विशेषताओं के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- कबीर जी के काव्य की समीक्षा और भाषा का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

प्रस्तावना (Introduction)

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की निर्गुण भक्ति की काव्यधारा में संत काव्य के प्रमुख कवि कबीर जी को इस धारा का प्रवर्तक माना जाता है। भारतीय धर्म-साधना के इतिहास में कबीरदास ऐसे महान विचारक एवं प्रतिभाशाली महाकवि हैं जिन्होंने दीर्घकाल तक भारतीय जनता का पथ आलोकित किया और सच्चे अर्थों में जन-जीवन का नायकत्व किया।

5.1 संत काव्य के प्रमुख कवि कबीर

संत साहित्य भावात्मक एवं अनुभूतिप्रवण है, उसमें किसी शास्त्र तथा सिद्धांत के प्रति आग्रह व्यक्त नहीं हुआ। संत काव्यधारा के दार्शनिक-सांस्कृतिक आधार अनेक हैं। संतों के जीवन चिन्तन, जीवन दर्शन और काव्यधारा पर उपनिषदों का व्यापक प्रभाव है। संतकाव्य पर संत दर्शन पर नाथ पंथ, गुरु की प्रतिष्ठा और सृष्टिक्रम, आत्मा, जीव, आदि के विषय में उनकी मान्यताओं से संत कवि अनेकशः प्रभावित रहे हैं। इस तरह हिन्दी साहित्य में संत काव्य का प्रवर्तक कबीर को माना गया है।

5.1.1 संत काव्य की विशेषताएँ

1. **राम का स्वरूप:** राम भक्त कवियों के उपास्यदेव राम, विष्णु के अवतार हैं और परम स्वरूप हैं। वे पाप विनाश और धर्मोद्धार के लिए युग-युग में अवतार लेते हैं। कृष्ण कवियों के कृष्ण, ब्रह्म के प्रतीक हैं। गोपियां जीवात्मा हैं और स्वयं कृष्ण भक्त अपने आप पर गोपी का आरोप करके अपने-आपको कृष्ण की सेवा में अर्पित करते हैं। राम विष्णु का अवतार हैं और भक्त कवि मानव रूप में उनका साधक है।
2. **समन्वयात्मकता:** राम काव्य का दृष्टिकोण अत्यंत व्यापक है। उसमें एक विराट समन्वय की भावना है। इसमें न केवल राम की उपासना है बल्कि कृष्ण, शिव, गणेश आदि देवताओं की भी स्तुति की गई है। तुलसी ने सेतुबन्ध के अवसर पर राम द्वारा शिव की पूजा करवाई है। यद्यपि रामभक्ति काव्य में रामभक्ति को श्रेष्ठ माना है तो भी उसकी भक्ति भावना अत्यंत उदार है।

5.1.2 कबीर जी का जीवनवृत्त

जीवनवृत्त: मध्ययुगीन अन्य संत और भक्त कवियों के समान कबीर का जीवनवृत्त भी प्रायः अंधकारमय है। उनमें जन्म, मृत्यु, वास-स्थान, वंश और यहाँ तक कि यथार्थ नाम के संबंध में असंदिग्ध रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है। हां, इतना अवश्य है कि वे सिकन्दर लोधी के समकालीन थे। नाभादास के भक्तमाल और बील, हंटर, त्रिगस, मेकलिफ, स्मिथ तथा भंडारकर आदि के इतिहास-ग्रंथों से भी उक्त तथ्य की पुष्टि हो जाती है। कबीरदास ने अपने साहित्य में जयदेव और नामदेव का उल्लेख किया है, इसमें सिद्ध है कि इनके पश्चात्तवर्ती थे। नामदेव का समय तेहरवीं शताब्दी का अंतिम चरण माना गया है। संत पीपा ने बड़ी श्रद्धा से कबीर का नाम स्मरण किया है। इससे स्पष्ट है कि कबीर पीपा से पहले थे। पीपा का जन्म सं. 1482 में हुआ। 'कबीर चरित्र बोध' में 1455 वि. ज्येष्ठ सुदी पूर्णिमा सोमवार को कबीर की जन्म-तिथि स्वीकार की गई है, जिसका आधार अग्निकित दोहा है—

चौदह सौ पचपन साल गए चन्द्रवार एक ठाठ ठए।

जेठ सुदी बरसायत की पूरनमासी प्रकट भए।

डॉ० श्यामसुन्दर दास ने उक्त दोहे में 'गए' शब्द का अर्थ व्यतीत लगाकर 1456 को कबीर का जन्म संवत् माना है। डॉ० हजारी प्रसाद ने भी इसी सम्वत् को स्वीकार किया है, किन्तु डॉ० माताप्रसाद गुप्त प्रभृति विद्वानों ने सं. 1455 ज्येष्ठ पूर्णिमा सोमवार को कबीर की जन्मतिथि माना है क्योंकि इंडियन एस्ट्रालॉजी के आधार पर गणना करने से यही तिथि ठीक बैठती है, अतः सं. 1455 में इनका जन्म मानना अधिक उपयुक्त और तर्कसंगत है।

Notes

स्वामी रामानन्द कबीर के दीक्षागुरु थे। इस कथन की पुष्टि अन्तःसाक्ष्य के आधार पर भी हो जाती है। कबीर का कहना है, 'काशी में हम-प्रगट भये, रामानन्द चेताये'। नाभादास के भक्तमाल और अनन्तदास के 'प्रसंग पारिजात' से भी उक्त तथ्य की पुष्टि हो जाती है। कुछ विद्वानों ने शेख तकी को कबीर का गुरु माना है, किन्तु यह बात अन्तःसाक्ष्य और बहिःसाक्ष्य के आधार पर सर्वथा अमान्य है। कबीर ने शेख तकी के प्रति कहीं भी श्रद्धा प्रकट नहीं की है। शेख तकी को सम्बोधन करते हुए कबीर द्वारा कहे गये 'सुनहु शेख तकी तुम' इन शब्दों में जो कठोरता और कर्कशता है वह कबीर जैसे गुरुभक्त से अपने गुरु के प्रति प्रत्याशित नहीं थी।

कबीर के जन्म के संबंध में भी अनेक किंवदन्तियां प्रचलित हैं। कुछ एक का कहना है कि एक विधवा ब्राह्मणी ने लोक-लाजवश अपने नवजात शिशु कबीर को काशी के लहरतारा नामक तालाब के निकट फेंक दिया था, जिसका पालन-पोषण निःसन्तान जुलाहा दम्पति नीरू और नीमा ने किया। इस बात का समर्थन कबीर का अपने-आपको जुलाहा कहने से भी हो जाता है। वस्तुतः यह सारी कहानी अलौकिक महत्व प्रदान करने के लिए गढ़ी हुई प्रतीत होती है। किसी सौभाग्यवती माता ने कबीर को निश्चित रूप से जन्म दिया था और उसका लालन-पालन जुलाहा परिवार में हुआ। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कबीर का संबंध जुगी जाति से जोड़ा है। यह जाति हिन्दुओं में बड़ी अस्पृश्य और हेय समझी जाती थी। इसका संबंध नाथपंथी योगियों से था। मुसलमानों के आगमन पर इसने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। कबीर इसी जाति के रत्न थे। अस्तु! कबीर का जन्म सं. 1455 में काशी में हुआ और निधन 1575 में मगहर में हुआ।

कबीर के जन्मविषयक एक अन्य किंवदन्ती प्रचलित है कि महाकुंभ के अवसर पर हरिद्वार में पूर्णिमा के दिन अमृत-कुंभ का आविर्भाव हुआ तो वाराणसी में लहरतारा नामक तालाब में, अमृत-ज्योति के रूप में, कबीर कमल के रूप में प्रकट हुए।

कबीर की वाणी-बीजक और साखी रूप में लोकमंगलार्थ अमृत वर्षिणी थी। बीजक के अन्तर्गत गुप्त-गुह्य-ब्रह्म विद्या का निरूपण है, जिस पर उपनिषदों का अपरिमित प्रभाव है। बनारस में पंचघाट, (जहाँ कबीर ने अजीब ढंग से रामानन्द का शिष्यत्व ग्रहण किया था) के निकट कबीर पंथियों का कबीर चौरामठ में एक बीजक मंदिर है और उनके साथ-साथ नीरू और नीमा की समाधियाँ स्थित हैं। इसी स्थान पर कबीर संप्रदाय का 22वां गुरु शिक्षा-दीक्षा देता है। कबीर पंथ का आचार्य (गुरु) व अन्य अनुयायी श्वेत वस्त्रधारी होते हैं। बीजक मंदिर में प्रतीकात्मक रूप में गुरु रामानन्द के खड़ाव-युग्म व त्रिशूल रखे हैं। त्रिशूल को, कबीर द्वारा शास्त्रीय चर्चा में गुरु गोरखनाथ की पराजय का प्रतीक समझा जाता है। बीजक और कीलक शब्दों में कुछ साम्य दिखता है जिसे कबीर साहित्य की हठयोग से प्रभावित होना लक्षित होता है। मगहर गोरखपुर से 25 मील की दूरी पर स्थित है, जहाँ कबीर को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास हो चुका था। उनकी चमत्कारात्मक देह फूलों के रूप में विभक्त हो गई थी, जिनसे हिन्दुओं ने समाधि और मुस्लिमों ने कब्र का निर्माण कर लिया था। उनकी इस निर्वाणपरक अन्तिम यात्रा को भी प्रतीकात्मक रूप में ग्रहण करना होगा – दोनों संप्रदायों में समता व एकता के प्रतीक के रूप में, जहां आज भी— “माँ को कहाँ ढूँढे रे बन्दे, मैं तो तेरे पास में” की आवाज़ बुलन्द हो रही है। कबीर साहित्य की लोकप्रियता, धर्म व अध्यात्मपरायणता तथा साहित्यिकता के कारण, सिखों के आदिग्रंथ-गुरु ग्रंथ में इनके 471 पद (शब्द) संकलित हैं— 'अव्वल अल्लाह नूर उपाया, कुदरत के सब बन्दे' का नाद आज भी अनुगूँजित हो रहा है।

कबीर गृहस्थी थे। इनकी पत्नी का नाम लोई था। डॉ० रामकुमार वर्मा ने इनकी एक अन्य पत्नी भी मानी है जिसका नाम धनिया या रमजनिया था। कमाल और कमाली इनके पुत्र और पुत्री थे।

व्यक्तित्व: महात्मा कबीर परम सन्तोषी, उदार, स्वतंत्रचेता, निर्भीक, सत्यवादी, अहिंसा, सत्य और प्रेम के समर्थक, सात्विक प्रकृति, बाह्याडम्बर-विरोधी तथा क्रांतिकारीसुधारक थे। वे मस्तमौला, लापरवाह फक्कड़ फकीर थे। वे जन्मजात विद्रोही थे और उनमें एक अदम्य साहस एवं अखंड आत्मविश्वास था। वे प्रखर प्रतिभा तथा विलक्षण अथक सशक्त व्यक्तित्व से सम्पन्न थे। वे सिकन्दर लोदी के सामने झुके नहीं, हिन्दू और मुसलमानों के प्रबल रोष ने उन्हें तनिक भी विचलित नहीं किया, वे योगियों के प्रभाव से आहत नहीं हुए और न ही सूफी उन्हें अपने संप्रदाय में मिला सके। उन्होंने कदाचार का डटकर विरोध किया। वे जीवनपर्यन्त अपनी अटपटी वाणी से उत्तरी भारत का नेतृत्व करते रहे। डॉ० हजारीप्रसाद इस संबंध में लिखते हैं— “वे सिर से पैर तक मस्तमौला स्वभाव के फक्कड़, आदत से अक्खड़, भक्त के सामने निरीह, धूर्त भेषधारी के आगे प्रचंड, दिल के साफ, दिमाग के दुरुस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वन्दनीय थे। युगावतार की शक्ति और विश्वास लेकर वे पैदा हुए थे और युग-प्रवर्तक की दृढ़ता उनमें विद्यमान थी इसलिए वे युग-प्रवर्तन कर सके।”

5.1.3 कबीर के काव्य और सिद्धांत

ग्रंथ: ‘बीजक’ कबीर की प्रामाणिक रचना मानी गई है। इसमें कबीर के उपदेशों का उनके शिष्यों द्वारा संकलन है। ‘बीजक’ के तीन भाग हैं— ‘साखी, सबद और रमैनी’। कई विद्वानों ने कबीर के ग्रंथों की संख्या 57 से 61 तक मानी है। अनुराग सार, उग्रगीता, निर्भय ज्ञान, शब्दावली और रेखती आदि पुस्तकों को कबीर रचित कहा गया है, किन्तु इस संबंध में प्रामाणिक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है। कबीर की कविता के मुक्तक होने के कारण परवर्ती सन्त कवियों ने मनमाने ढंग से उसे घटाया और बढ़ाया। कबीर की रचनाओं का बहुत-सा भाग ऐसा है जो कबीर के भक्तों ने रचा और महत्त्व के लिए कबीर के नाम पर प्रचारित कर दिया। इस प्रकार कबीर के नाम से प्रसिद्ध रचनाओं में से कबीर की वास्तविक रचनाओं को खोज पाना बहुत कठिन है।

कबीर के सिद्धांत: कबीर निराकारवादी थे। निराकार की प्राप्ति ज्ञान से संभव है। वह घट में बसता है, उसे बाहर खोजने की आवश्यकता नहीं है। उनका कहना है— “हिरदै सरोवर है अविनासी।” कबीर ने बार-बार ‘राम’ शब्द का प्रयोग किया है, किन्तु उनका राम सगुण अर्थात् दाशरथि राम न होकर परम ब्रह्म का प्रतीक है। कबीर राम को पुकारने की आवश्यकता निश्चित रूप से महसूस करते हैं, इसलिए उन्हें कोई न कोई नाम भी देना ही पड़ता है। उनके ही शब्दों में—

दशरथ सुत तिहु लोक बखाना

राम नाम का मरम है जाना॥

तू हरखि गुण गाई।

कबीर एकेश्वरवादी हैं, किन्तु उनका एकेश्वरवाद मुस्लिम एकेश्वरवाद से भिन्न पड़ता है। मुसलमान धर्म के अनुसार ईश्वर समस्त प्राणियों और स्थानों से भिन्न और परम समर्थ है। परंतु कबीर द्वारा प्रतिपादित ईश्वर व्यापक है, वह समस्त संसार में रम रहा है। वह अलख, अगोचर और वर्णनातीत है। वह प्रेमपूर्ण भक्ति से प्राप्य है। निर्गुण राम और भक्ति-तत्त्व कबीर को सिद्धों और नाथों से अलग कर देते हैं और इसी कारण कबीर में अधिक सरसता आ गई है। कबीर की भक्ति अनन्य भाव से संपन्न है। उनमें कर्मकांड के विधि-विधानों और बाह्याचारों के लिए अवकाश ही नहीं है वह सर्वथा निष्काम है। भक्ति के मार्ग में माया कनक और कामिनी के रूप में व्यवधान डालती है, अतः कबीर ने इसकी कटु भर्त्सना

Notes

की है। कबीर की भक्ति एक ऐसा राजमार्ग है जिस पर सभी सुगमता से चल सकते हैं, उसमें ऊँच-नीच, ब्राह्मण, शूद्र और स्पृश्यास्पृश्य का कोई प्रश्न नहीं है—

जाति पाँति पूछे नहिं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।

हां, भक्ति में प्रेम अपेक्षित है। कबीर की इस प्रेम भावना ने भक्ति को मधुर एवं सहज बना दिया है। कबीर ने भक्ति और प्रेम के सहारे ब्रह्म से तादात्म्य करना चाहा है और वहीं शुद्ध भावनात्मक रहस्यवाद की सृष्टि हो जाती है। वैसे तो कबीर ने परमात्मा के माता-पिता आदि अनेक रूपों की कल्पना करके अपना संबंध जोड़ना चाहा है किन्तु परमात्मा को पति और आत्मा को पत्नी रूप में कल्पना करके प्रेम का एक महान भारतीय आदर्श रूप उपस्थित किया, जो कि अत्यंत भव्य बन पड़ा है। हां, कबीर में प्रेम की मादकता आंशिक रूप से सूफियों की देन अवश्य कही जा सकती है। सूफियों का रहस्यवाद और कबीर का रहस्यवाद समता की अपेक्षा विषमता अधिक रखते हैं।

नाथपंथियों के समान कबीर ने इन्द्रिय-साधना, प्राण-साधना और मन-साधना पर भी बल दिया है। अजपा, सुरति, निरंजन, नाड़ी साधन और कुंडलिनी साधन आदि बातें कबीर में मिलती हैं, किन्तु स्मरण रखना होगा कि कृच्छसाध्य होने के कारण हठयोग उन्हें पसन्द नहीं था, उन्हें अभिप्रेत तो सहज योग ही था। कबीर का सहज रूप की ओर झुकना कदाचित् रामानन्द के प्रभाव का फल है। यही कारण है कि कबीर हिन्दू और मुसलमानों की साधना की जटिल क्रियाओं, आडम्बरों, अंधविश्वासों और रूढ़ियों का कड़ा विरोध करते हैं। कबीर में वैष्णवों का प्रतिवाद है, जैनों की अहिंसा और बौद्धों की बुद्धिवादिता है। आचार्य शुक्ल ने कबीर के एकेश्वरवाद को इस्लामिक माना है। कबीर को कोई भी व्यवस्थित शास्त्रीय ज्ञान नहीं था। वे बहुश्रुत और सारग्राही थे। उन्हें जो भी बात जिस संप्रदाय की ग्राह्य प्रतीत हुई ले ली। उन्हें एक सामान्य भक्ति मार्ग की प्रतिष्ठा करनी थी और उसके लिए यही माध्यम उपयुक्त था। विविध संप्रदायों के प्रभावों को ग्रहण करते हुए भी उन पर वैष्णवों का विशिष्ट प्रभाव है। सच तो यह है कि विभिन्न मत-मतान्तरों के प्रभावों के होते हुए भी उनका निजी व्यक्तित्व कहीं भी तिरोहित नहीं हुआ। वे साधना-क्षेत्र में युग-गुरु और साहित्य-क्षेत्र में युग-स्रष्टा हैं। संप्रदाय चाहे जो भी हो और जैसा हो उसकी अनुगति की उन्हें कोई आवश्यकता नहीं थी, बल्कि उसे वे एक ढकोसला मानते थे। परम व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा ही उनके विचार-दर्शन का मूल आधार थी।

5.1.4 कबीर जी की काव्यगत विशेषताएँ

कबीर वाणी का अध्ययन करने पर हम उसमें निम्नलिखित विशेषताएँ पाते हैं—

1. **निर्गुण उपासना:** कबीर जी ने ईश्वर के निर्गुण रूप की उपासना पर बल दिया। उनका मानना था कि ईश्वर एक है और वह निर्गुण निराकार है। वह पंच भौतिक तत्त्वों से परे अनाम और अजन्मा है।

कबीर जी कहते हैं—

जाके मुँह माया नहीं, नाही रूप कुरूप।

पहुँच वास ते पातर, ऐसा तत अनूप॥

निराकार निर्गुण ब्रह्म ही इस सारी सृष्टि का कर्ता है परन्तु वह अजन्मा है, अनित्य है—

Notes

जन्म मरन से रहित है मेरा साहिब सोय।

बलिहारी वह पीव की जिन सिरजा सब कोय॥

2. **एकेश्वरवाद:** कबीर जी ऐसे पहले भारतीय थे जिन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने का प्रयास किया। उनके बाद सभी संत कवियों ने उनका अनुसरण किया। मुसलमान भी एकेश्वर तथा उसके निराकार रूप में विश्वास रखते हैं— वे कहते हैं 'खालिक खलक खलक में खालिक सब घट रहयै'।
3. **भक्ति-भावना:** कबीर जी ने ईश्वर प्राप्ति के लिए प्रेम-भक्ति को मूलाधार माना है। कबीर के अनुसार, ढाई अक्षर प्रेम के पढ़ने वाला पंडित हो जाता है किन्तु यह प्रेम का मार्ग बड़ा कठिन है। इसमें जो आत्म त्याग करता है वही प्रभु को पाता है। कबीर जी कहते हैं—

यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहीं।

सीस उतारे भुई धरै, तब पहुँची घर माहिं॥

4. **लोक संग्रह की भावना:** लोक-कल्याण भावना की दृष्टि से भी यह साहित्य अत्यंत उपादेय है। इस साहित्य में जीवन की अनेक उच्चारण भूमियां प्रस्तुत की गई हैं। इन्होंने गृहस्थ जीवन की अपेक्षा नहीं की बल्कि लोक सेवा और आदर्श गृहस्थ राम-सीता को उपस्थित करके जीवन स्तर को ऊँचा उठाने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। राम काव्य का अत्यंत उच्च आदर्श पक्ष है। आदर्श की प्रतिष्ठा उनके जीवन का अर्थ और इति है।
5. **भक्ति का स्वरूप:** राम का चरित्र त्रिलोकातिशयी है। राम भक्त कवि राम के शील, शक्ति और सौंदर्य पर मुग्ध हैं।

कबीर की यह भक्ति ईश्वर के प्रति अनन्य भाव से, बिना किसी शर्त आत्म-समर्पण की भावना है। वे कहते हैं—

फाड़ि फुटोला धज करौ, कामलड़ी पहिराउं।

जिहिं जिहिं भेषां हरि मिलै, सोई सोई भेष कराऊं॥

6. **गुरु महिमा:** सभी भक्तिकालीन कवियों ने गुरु की महिमा का गान किया है। कबीर जी की मान्यता है कि गुरु कृपा बिना ईश्वर की भी प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए वे गुरु को ईश्वर से भी बड़ा मानते हुए कहते हैं—

गुरु गोबिन्द दोऊ खड़े काके लागू पाय।

बलिहारी गुरु आपने, जिन गोबिन्द दिया बताय॥

7. **पाखण्ड और आडम्बर का विरोध:** कबीर प्रगतिशील समाज सुधारक थे। उनके युग में हिन्दुओं और मुसलमानों में धार्मिक पाखण्ड एवं आडम्बर अपनी चरम सीमा पर थे। उन्होंने हिन्दुओं को कहा—

पत्थर पूजे हरि मिले तो मैं पूजू पहार।

घर की चकिया कोई न पूजे पीस खाय संसार॥

Notes

इस प्रकार कबीर ने कपटी साधुओं, ढोंगी पंडितों की निन्दा की और साथ भी तीर्थ, व्रत नियम आदि आडम्बरों की भी निन्दा की है।

5.1.5 कबीर जी की काव्यभाषा

काव्यभाषा का परिचय देकर उन्होंने गूढ़ वाणियों को समझने की कुंजी भी दे दी। अपनी काव्यभाषा का परिचय उन्होंने इस प्रकार दिया है—

बोली हमारी पूर्व की हमें लखे नहिं कोय।

हमें लरते से जाना जो धुर पूर्वीआ होय॥

इसके आधार पर कबीरदास की सामान्य भाषा के निर्धारण का प्रयास किया जाता है। यह अत्यंत स्थूल दृष्टि का परिचायक है। कबीरदास यहाँ अपनी सामान्य भाषा का नहीं, काव्यभाषा का परिचय दे रहे हैं।



Task

कबीर जी की काव्यभाषा पर अपने विचार प्रकट करें।

सचमुच कबीरदास की काव्यभाषा तर्क-वितर्क की भाषा नहीं है। कारण, वह अभिव्यक्ति की भाषा नहीं है, वरन् वह आत्म-साक्षात्कार की भाषा है। कबीर की काव्यभाषा उपचारवृत्ता के कारण बलवती नहीं है, वह अवतरण होने के कारण सप्राण है। सामान्य कवि जब लिखता है तब उसकी मन की आँखों के सामने सहृदय बैठा रहता है, वह मानो उसी को सुनता है। कबीर दास की भाषा के यही दो प्रकार्य हैं— मग्न करना और झकझोरना। मग्न तो सभी सच्ची कविताएँ करती हैं, मग्न करना कविता का धर्म है। झाड़-फटकार कविता का धर्म नहीं है। वस्तुतः कबीरदास जी की प्रत्येक-योजना का चरम रूप उलटबौंसियों में देखा जाता है।

कबीर की काव्यभाषा के बाह्य उपकरण भी वाणी की सजावट की बौद्धिक योजना नहीं है, वरन् वे भी कवि की अनुभूति के अंग ही हैं, अतः अवतरण ही हैं। ऐसा होने पर भी कबीरदास में काव्यभाषा की प्रायः वे सभी विशेषताएँ पायी जाती हैं जो अन्यान्य कवियों में देखी जाती हैं।

अनुप्रास: काव्यभाषा का स्थूल तत्त्व कबीरदास में प्रचुरता से इसलिए है कि उनकी बानियाँ सुनाने के लिए निकली थीं और अनुप्रास व्यतव्य को ओजस्वी एवं ग्राह्य बनाता है। अनुप्रास से नाद-सौंदर्य की सृष्टि का कार्य तो सभी कवि लेते हैं।

भाषा की ऐसी शक्ति जिस कवि में होती है, वही कवि सूक्तियों की सृष्टि करने में समर्थ होता है। भाषा पर अधिकार हुए बिना सूक्ति की रचना नहीं हो सकती। कबीरदास ने मार्मिक और चुस्त सूक्ति रचकर इस प्रकार के भाषाधिकार का परिचय दिया है। कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक कह देना और ऐसा कह देना कि वह पाठक को चमत्कृत कर दे, उसके मानस को छू दे और उसकी स्मृति में चिपक जाए, यही सूक्ति का उद्देश्य होता है। कबीर का काव्य इस प्रकार की सूक्तियों से भरा है जिसको उदाहरणों के द्वारा प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं है।

5.1.6 काव्य समीक्षा

कबीर संत पहले हैं, कवि बाद में। उनकी वाणी में धार्मिक दृष्टिकोण की प्रधानता है, काव्यगत दृष्टिकोण गौण है। कविता उनका उद्देश्य नहीं था बल्कि वह समर्थक का परवाना एवं संदेश पहुंचाने की साधना थी। साध्य नहीं थी। उन्होंने कागदी-मसी को छुआ तक नहीं था और न ही कवि कर्म का उन्होंने विधिवत् अध्ययन किया था। कबीर ने अपनी कविता में महान् संदेश दिया है। उस संदेश को प्रकट करने का ढंग अलंकार से युक्त न होते हुए भी काव्यमय है। हिन्दी के कुछ आलोचकों ने कबीर को कवि स्वीकार करने में संकोच दिखाया है। उनका कहना है कि कबीर को छंद और अलंकार शास्त्र का ज्ञान नहीं था। वे दोहा छंद को ठीक-ठीक नहीं लिखते और न ही अनुप्रासादि अलंकारों की चकाचौंध पैदा करते हैं। उनकी भाषा अटपटी और बेठिकाने की है, उसमें ग्राम्य दोष है।



Did u know? कबीर साहित्य और धर्म के क्षेत्र में एक नवीन क्रांति के जनक थे।

सच्चे काव्य और सच्ची कला की कसौटी अनुभूति की सच्चाई है। कबीर इस कसौटी पर खरे उतरते हैं। उन्हें कागद लेखी पर विश्वास नहीं, आखिन देखी पर विश्वास है। रूपक अलंकार के प्रयोग में वे इतने विख्यात हैं जितना कि कालिदास अपनी उपमाओं के लिए, उदाहरण—

नैनो की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाई।

पलकों की चिक डारि के पिय को लिया रिझाई॥

कबीर साहित्य में जहाँ भाषाओं के अनेक रंग हैं, वहीं संवेदनाओं के भी विविध रंग हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कबीर साहित्य और धर्म के क्षेत्र में एक नवीन क्रांति के जनक थे, आलोचना की एक नवीन शैली के जन्मदाता तथा एक सफल कवि थे। कबीर के काव्यसौष्ठव को जानने के लिए उनके समस्त काव्य की थाह लेनी होगी। केवल उसकी सतह को छूने से शायद कुछ भी उपलब्ध न हो।

स्व:मूल्यांकन

रिक्त स्थान भरें:

1. कबीर का जन्म सं० में काशी में हुआ और निधन में मगहर में हुआ।
2. “बीजक” कबीर की प्रमाणिक रचना है इसके तीन भाग, ... और हैं।
3. कुछ विद्वानों ने कबीर के प्रेम को से प्रभावित माना है।

5.2 सारांश (Summary)

- कबीर जी का जीवनवृत्त प्रायः अंधकारमय है। विद्वानों ने सम्वत् 1455 ज्येष्ठ पूर्णिमा सोमवार को कबीर जी की जन्मतिथि माना है। इनके जन्म के बारे किवदन्तियाँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि इनका पालन पोषण, निःसंतान जुलाहा दम्पति नीरू और नीमा ने किया।

Notes

- महात्मा कबीर परम संतोषी, उदार, स्वतन्त्रवेता, निर्भीक, अहिंसा, बाह्याडम्बर विरोधी तथा क्रांतिकारी सुधारक थे।
- कबीर के ग्रंथों की संख्या 57 से 61 मानी गई है। अनुराग सार, अग्रगीता, निर्भव ज्ञान, शब्दावली और लेखनी पुस्तकों को कबीर द्वारा रचित माना गया है। “बीजक” कबीर की प्रामाणिक रचना है।
- कबीर निराकारवादी, एकेश्वरवादी, रहस्यवादी कवि माने गये हैं। कबीर जी ने अपनी प्रेम भावना से भक्ति को मधुर एवं सहज बना दिया है। वह साधना क्षेत्र में युग गुरु और साहित्य क्षेत्र में युग स्रष्टा हैं।
- कबीर जी के काव्य में निर्गुण उपासना, भक्ति भावना, गुरु महिमा, पाखण्ड और आडम्बर का विरोध समन्वयात्मक आदि विशेषताएँ पाई जाती हैं।

5.3 शब्दकोश (Keywords)

स्वभाव: आदत।

आकर्षण: मोह, किसी वस्तु का आकर्षण।

प्रचलित: प्रसिद्ध।

5.4 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. कबीर जी का संक्षिप्त जीवन परिचय देते हुए उनके काव्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. कबीर दास का साहित्यिक परिचय दें।
3. कबीर वाणी में “गुरु का महत्त्व” और “नाम सिमरण का महत्त्व” विषय पर विशेष बल दिया गया है। इस उक्ति की विवेचना करें।
4. कबीर के काव्य में काव्यगत विशेषताओं का वर्णन करें।
5. कबीर के व्यक्तित्व और सिद्धांतों का संक्षिप्त वर्णन करें।

उत्तर: स्व:मूल्यांकन

1. 1455, 1575
2. वाणी, सबद, रमैनी
3. सूफियों

5.5 संदर्भ पुस्तक (Further Reading)



कबीर वाणी— पारसनाथ तिवारी, अनीता प्रकाशन, नई सड़क, नई दिल्ली।

इकाई 6: सूफी काव्य के प्रमुख कवि: जायसी और उनका काव्य

Notes

अनुक्रमणिका (CONTENTS)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

6.1 सूफी काव्य के प्रमुख कवि: जायसी

6.1.1 सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी का जीवनवृत्त

6.1.2 मलिक मुहम्मद जायसी की काव्यगत विशेषताएँ

6.2 मलिक मुहम्मद जायसी का महाकाव्य 'पद्मावत'

6.3 पद्मावत मानसरोवर खण्ड का सार

6.4 सारांश (Summary)

6.5 शब्दकोश (Keywords)

6.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

6.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी:

- सूफी काव्य के प्रमुख कवि जायसी का जीवनवृत्त जानेंगे।
- मलिक मुहम्मद जायसी के काव्य की विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- मलिक मुहम्मद जायसी के काव्य 'पद्मावत' का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

प्रस्तावना (Introduction)

हिन्दी साहित्य के इतिहास में निर्गुण काव्यधारा के ज्ञानमार्गी संत कवियों ने भक्ति के जिस सामान्य मार्ग द्वारा एकता स्थापित करने का प्रयास किया उसे विकसित करने का पूर्ण सहयोग सूफी संतों ने किया। इसका मुख्य कारण था कि सूफी संतों ने भारतीय समाज और उसके लोगों की समस्याओं का पूर्ण अध्ययन किया। खण्डनात्मकता के स्थान पर हिन्दू मुस्लिम संस्कृतियों का सुन्दर सामंजस्य प्रस्तुत किया।

6.1 सूफी काव्य के प्रमुख कवि: जायसी

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की प्रेममार्गी शाखा अथवा सूफी संत परम्परा में मलिक मुहम्मद जायसी अपना विशेष स्थान रखते हैं। अपने सिद्धांतों के प्रचार के लिए ज्ञान के स्थान पर प्रेम को चुना। भारतीय प्रेमग्रन्थों को अपने काव्य का विषय बनाया। इनमें लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना की गई। उनका प्रेम व्यक्तिगत होने के साथ-साथ समष्टिगत भी है। जायसी जैसे सूफी कवियों ने हिन्दू प्रेम कथाओं को आधार बनाकर अपने उदार धार्मिक सिद्धांतों का प्रचार किया।

6.1.1 सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी का जीवनवृत्त

जायसी जी के जन्म के बारे में आज तक विद्वानों में मतभेद बना हुआ है। सभी विद्वानों के मतों को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं कि इनका जन्म वि०सं० 1550 के लगभग और मृत्यु वि०सं० 1600 के करीब हुई थी।

जायसी का वास्तविक नाम मुहम्मद था। मलिक शब्द एक उपाधि का परिचायक है जो संभवतः इन्हें वंश परम्परा से प्राप्त हुई थी। परम्परा के अनुसार आप अरब से आए मुसलमान थे, भारतीय नहीं किन्तु जायस-जिला रायबरेली में आकर बस गए थे। अतः इनको जायसी कहा जाने लगा। जायसी ने स्वयं लिखा है—

जायस नगर मोर अस्थान। नगर के नाम आदि उदयान्॥



Notes मलिक मोहम्मद जायसी का जन्म वि०सं० 1550 के लगभग और मृत्यु वि०सं० 1600 के करीब हुई थी।

जायसी अपने बाल्यकाल में ही अपने माता-पिता से विमुक्त हो गए। इनका विवाह भी हुआ था। इनके पुत्र की एक दुर्घटना में मकान की दीवार के नीचे दबकर मर जाने की दन्तकथा प्रसिद्ध है। तब विरक्त होकर जायसी अपना अधिकांश समय साधु-संतों की संगति में बिताने लगे। कहा जाता है कि उस समय के प्रसिद्ध सूफी संत मुबारक शाह बोदले ने इन्हें अपना शिष्य बना लिया। आगे चलकर एक दूसरे संत शेख मुहीउद्दीन भी जायसी के गुरु के नाम से जाने जाते हैं।

अन्तः साक्ष्य सामग्री के अनुसार जायसी एक आँख से काने थे, मुँह पर चेचक के दाग थे। कहते हैं कि एक बार शेरशाह सूरी इनकी कुरूपता को देखकर हंस पड़े थे। तब जायसी ने तुरंत कहा **“मोहि को हँसाति कि को हरहि।”** अर्थात् मुझ पर नहीं उस कुम्हार पर हंसो जिसने मुझे बनाया है। यह सुन शेरशाह सूरी शर्मिन्दा भी हुए और जायसी से क्षमा याचना भी की।

जायसी अपने जीवन के अधिकांश भाग में अमेठी के राजा के आश्रय में रहे। वहीं उनकी मृत्यु सन् 1542 ई० सम्वत् 1600 के आस-पास हुई। आज भी इनकी कब्र वहीं विद्यमान है।

रचनाएँ: कुछ विद्वान जायसी की रचनाओं की संख्या 20-21 के करीब मानते हैं। परन्तु केवल 6 रचनाओं को ही प्रमाणित माना जाता है जो निम्नलिखित हैं: ‘अखरावट’, ‘आखिरी कलाम’, ‘मसलनामा’, ‘कहरनामा’, ‘चित्रलेखा’ तथा ‘पद्मावत’। इनमें ‘पद्मावत’ निश्चय ही हिन्दी साहित्य की

अमूल्य निधि है। यह ग्रंथ इतना लोकप्रिय है कि इसका अनुवाद बंगला, उर्दू, फारसी, फ्रेंच और अंग्रेजी भाषाओं में भी हो चुका है।



Did u know? 'पद्मावत' हिन्दी साहित्य का प्रथम प्रमाणिक महाकाव्य माना जाता है। यह ग्रंथ दोहा चौदथ शैली में लिखा गया जिसे आगे चलकर गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में अपनाया।

6.1.2 मलिक मुहम्मद जायसी की काव्यगत विशेषताएँ

जायसी के काव्य में हम निम्नलिखित विशेषताएँ देखते हैं—

1. **हिन्दू-मुस्लिम एकता:** मुसलमानों का शासन स्थायी हो जाने के फलस्वरूप हिन्दू और मुसलमानों में आपसी वैमनस्य को भंग करने का प्रयास सन्त कवियों ने आरम्भ किया। उसे सूफी मुसलमान फकीरों ने पूरा किया। इन मुसलमान फकीरों ने अहिंसा और प्रेम का मार्ग अपनाया। जायसी जैसे अनेक सूफी संत प्रेम की पीर की कहानियाँ लेकर साहित्य क्षेत्र में उतरे। ये कहानियाँ हिन्दुओं के घरों की थीं जिसे उन्होंने मुस्लिम शैली के अनुसार आम लोगों के सामने रखा। 'पद्मावत' में जायसी ने हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों जातियों के तत्त्वों का सहारा लिया है। जायसी स्वयं कहते हैं—

बिरछि एक लगी हुई डारा, एकहिं ते नामा परकारा॥

मातु कै रक्त पिता के बिन्दु, उपजै दुवै तुरक और हिन्दु॥

संत कवियों की शुष्क साधना से जो बात संभव न हो सकी, जायसी के प्रेम मार्ग ने उसे सरलता से पूरा कर दिया।

2. **लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना:** जायसी ने 'पद्मावत' में राजा रत्नसेन और रानी पद्मावती की प्रेम कहानी को आधार बनाकर सूफी मत की पारमार्थिक साधना का प्रचार किया। सूफी मत के अनुसार ईश्वर एक है। आत्मा पति है तो ईश्वर पत्नी। जिस प्रकार लौकिक संसार में पति अपनी पत्नी को प्राप्त करने के लिए संघर्ष करता है उसी प्रकार आत्मा रूपी पति परमात्मा रूपी पत्नी को प्राप्त करने के लिए साधना करता है। मिलन के मार्ग में शैतान अनेक बाधाएँ खड़ी करता है। गुरु की सहायता से आत्मारूपी पति इन बाधाओं को पार करने में सफल होता है। सूफी सिद्धान्तों के अनुसार भी 'इश्क हकीकी' को प्राप्त करने के लिए 'इश्क मजाजी' की सीढ़ी को पार करना पड़ता है। भाव यह है कि जो व्यक्ति ईश्वर के बनाये बन्दों से प्यार नहीं करता, वह ईश्वर से प्यार करने का अधिकारी नहीं है।
3. **श्रृंगार वर्णन:** रति भाव से परिपुष्ट श्रृंगार रस ही 'पद्मावती' का अंगी रस है, जिसके दोनों पक्षों संयोग और वियोग का मनोहारी और रमणीय वर्णन कवि ने किया है।

(क) **संयोग वर्णन:** जायसी के संयोग में हमें श्रृंगार के अनुभवों और संचारी भावों की योजना तो देखने को न मिलेगी परन्तु श्रृंगार के आधारभूत आलम्बन का चित्रण, प्रेमाश्रय का वर्णन और संयोग की नाना अनुभूतियों की नितान्त भाव प्रवण सजीव और रसात्मक व्यंजना अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त हुई है।

Notes

(ख) **वियोग वर्णन:** जायसी ने वियोग पक्ष की अत्यंत मार्मिक अनुभूति 'पद्मावत' में प्रस्तुत की है। यूँ तो कवि ने नागमती और पद्मावती दोनों का वियोग वर्णन प्रस्तुत किया है। जायसी ने नागमती की जिस परिस्थिति का चित्रण किया है उसकी एक दारुण पृष्ठभूमि भी उन्होंने दी है। नागमती की इस दारुण स्थिति का चित्र कवि निम्न पंक्तियों में प्रस्तुत करता है—

सुआ काल होई लेइग पीऊ। पिऊ नहिं जात, जात वर जीऊ॥

भयए नरायन बावन करा। राज करत राजा बलि छरा॥

जायसी ने नागमती के विरह में सामान्य हृदय तत्त्व की सृष्टिव्याप भावना की व्याख्या की है। इस भावना में कवि ने मनुष्य और पशु-पक्षी को एक सूत्र में पिरो कर देखा है। इस तरह जायसी ने मनुष्य के हृदय में पशु-पक्षियों से सहानुभूति प्राप्त करने की संभावना के साथ-साथ पक्षियों के हृदय में भी सहानुभूति का संचार किया है। जैसे—

फिरि फिरि रवि, कोई नहीं डोला। आधि राति विहंगम बोला।

तू फिरि फिरि दोहै राख पांखी। केहि दुख नैन न लावसि आँखि॥



Task

मलिक मुहम्मद जायसी के काव्य में भाषा, छंद और अलंकार पर टिप्पणी लिखें।

जायसी ने विरह वर्णन के अन्तर्गत विरहजन्य कृशता का भी स्वाभाविक चित्रण किया है। पंक्तियाँ देखी जा सकती है—

दहि कोयला भई कंत सनेहा। तोला मांसु रही नहिं देहा॥

रक्त न रहा विरह तन जरा। रती रती होई नैन्ह ढरा॥

जायसी ने एक स्थान पर पद्मावती की कृशता का भी करुण चित्र प्रस्तुत किया है—

कंवल सूख पंखुरी बेहरानी। गलि गलि कै मिलि छार हिरानी॥

नागमती के विरह वर्णन का सर्वाधिक मर्मस्पर्शी प्रसंग वह बारहमासा है जिसमें जायसी ने क्रम से बारह महीनों में नागमती की वियोग व्यथा का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है।

4. **रहस्यवाद:** जायसी सूफी सम्प्रदाय से थे जिसमें ईश्वर की कल्पना प्रेम के रूप में की जाती है। प्रेम के द्वारा साधक परम सत्ता तक पहुँचने का प्रयास करता है और अंत में उसी में लीन होकर परमानन्द को प्राप्त करता है। जायसी काव्य में वर्णित इसी भावना को रहस्यवाद कहा जाता है। किन्तु भारतीय परिवेश लेने के कारण उनके रहस्यवाद पर भारतीय अद्वैतवाद का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है।

'पद्मावत' में इस परमानन्द की अनुभूति के अनेक चित्र देखने को मिलते हैं यथा— हीरामन तोते के मुँह से पद्मावती का नख शिख वर्णन सुन कर राजारत्न सेन मूर्छित हो जाता है, इस मूर्छित अवस्था में उसे मिलने की आनन्दमयी अनुभूति होती है। मूर्छा भंग होने पर राजा रोने लगता है जैसे आत्मा पुनः मृत्युलोक में आने पर रोने लगती है।

जब भा चेत उठा वैरागा। बउर जनों सोई उठि जागा॥

Notes

आवत जग बालक जस रोऊ। उठा रोइ हा ज्ञान सो खोऊ॥

हैं तौं अहा अमरपुर जहाँ। इहाँ मरनपुर आएहुँ कहाँ॥

5. **इतिहास और कल्पना का मिश्रण:** जायसी ने 'पद्मावत' में इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय किया है। इतिहास में हमें अलाउद्दीन खिलजी की चितौड़गढ़ पर चढ़ाई और रानी पद्मिनी की आकृति दर्पण में देखने आदि की घटनाएं भी मिलती हैं इसके अतिरिक्त जायसी ने राजस्थान और पंजाब की लोककथाओं को आधार बनाकर तथा अनेक काल्पनिक घटनाओं का समावेश कर 'पद्मावत' की रचना की इसके लिए जायसी ने अनेक कथानक रूढ़ियों का भी प्रयोग किया है।
6. **भाषा, छन्द और अलंकार:** जायसी की भाषा ठेठ अवधि है। यद्यपि उनकी भाषा तुलसीदास की भाषा के समान साहित्यिक एवं पाण्डित्यपूर्ण नहीं है, फिर भी अपनी स्वाभाविकता सरलता तथा प्रसाद एवं माधुर्य गुणों से ओत-प्रोत है। जायसी ने दोहा, चौपाई और छन्द का प्रयोग किया और लगभग सभी सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग अपने काव्य में किया। आगे चलकर गोस्वामी तुलसीदास ने इसी शैली को अपनाया। जायसी को हम लोकभाषा और लोकजीवन का अंग कह सकते हैं।

'पद्मावत' में कवि ने मसनवी शैली को अपनाया। जायसी को हम लोक भाषा और लोक जीवन के कवि कह सकते हैं। इस शैली में सारी कथा एक ही छन्द में कही जाती है। जायसी से पूर्व भारतीय साहित्य में यह परम्परा नहीं मिलती।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि जायसी भक्तिकालीन प्रेममार्गी शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि थे। उनके काव्य में प्रेम अभिव्यंजना, प्रबन्ध कुशलता, रहस्य भावना, विरह वर्णन तथा अभिव्यंजना कौशल आदि गुण होने के कारण इन्हें हिन्दी साहित्य के उच्च कोटि के कवि माना जाता है।

6.2 मलिक मुहम्मद जायसी का महाकाव्य 'पद्मावत'

समस्त 'पद्मावत' में रूपक तत्व ढूंढना व्यर्थ होगा। वस्तु-वर्णन में कवि ने कई प्रसंगों में ऐसे विशेषणों का प्रयोग किया है जिससे प्रस्तुत अर्थ के साथ अप्रस्तुत अर्थ का भी बोध अनायास हो जाता है। उदाहरणार्थ— सिंहलगढ़ के वर्णन के प्रसंगों में नौ पौरी तथा दसवें दरवाजे वाले नगर का संकेत पाठक को अपने नौ छिद्रों और दसवें ब्रह्मरन्ध्र वाले शरीर का बोध करा देते हैं। राजा रत्नसेन को बन्दी बनाकर दिल्ली भेज दिया गया। वहाँ कवि के इस प्रसंग को रखते हुए भी दिल्ली को परलोक के रूप में प्रस्तुत किया है। अर्थ-द्योतन की इस पद्धति को समासोक्ति पद्धति कहा गया है। समासोक्ति एक अलंकार है, जिसमें समान विशेषणों के बल पर अप्रस्तुत एवं प्रस्तुत की व्याख्या की जाती है। इसमें अभिधेयार्थ तथा व्यंग्यार्थ दोनों को मुख्यता दी जाती है। इसे विशेषण-विशेष्य-विच्छिन्ति मूलक अलंकार कहा गया है। यह अन्योक्ति और श्लेष दोनों से भिन्न है। अन्योक्ति में व्यंग्यार्थ को मुख्यता दी जाती है। जैसे— "बाज पराये पानि परि तू पच्छीनु न मारि" में बाज और पक्षियों की प्रधानता नहीं है। इसमें मिर्जा राजा जयसिंह द्वारा मुगलों के आश्रय में हिन्दू राजाओं के सताये जाने की बात मुख्य है। समासोक्ति में दोनों

Notes

पक्ष प्रधान रहते हैं जैसे रत्नसेन को बन्दी बनाकर दिल्ली भेजने के प्रसंग में, जहाँ दिल्ली का अप्रस्तुत अर्थ परलोक लिया जायेगा वहाँ इसके प्रसंगत घटनात्मक अर्थ को छोड़ा नहीं जा सकता है। पद्मावत की कथा को प्रस्तुत मानकर व्यंग्य द्वारा हम आध्यात्मिक अर्थ लगाते हैं। श्लेष और समासोक्ति में भी अंतर है। श्लेष में कवि दो अर्थ बताने के लिए वचनबद्ध होता है। किन्तु समासोक्ति में यह आवश्यक नहीं कि कवि आदि से अन्त तक दोनों अर्थों का निर्वाह करता जाए। हाँ, जहाँ उसे मौका मिल जाता है, वहाँ विशेषणों के प्रयोग से अप्रस्तुत अर्थ की भी अभिव्यंजना कर देता है। जायसी ने अपने प्रबन्ध काव्य में इसी समासोक्ति पद्धति को अपनाया है। ग्रंथ के अन्त में दिये गए—

तन चतउर मन रउन कीन्हा।

के संबंध में आचार्य द्विवेदी का कहना है—“काव्य के अंत में ‘तन चितउर मन राउर कीन्हा’ का जो संकेत है वह मूल ग्रंथ का नहीं है। ‘पद्मावत’ की प्राचीन प्रतियों से यह बात सिद्ध हो चुकी है। इसलिए जो लोग पद-पद पर ‘पद्मावत’ के रूपक-निर्वाह की बात सोचते हैं वे गलती करते हैं। ‘पद्मावत’ का कवि रूपक निर्वाह के लिए प्रतिज्ञाबद्ध नहीं है।” वैसे पद्मावत के अन्त में आजकल मिलने वाले संकेत-कोश में रूपक का निर्वाह कहां तक बन पड़ा है, प्रासंगिक रूप से इसकी समीक्षा कर लेना अनुपयुक्त नहीं होगा। यहाँ सच्चा साधक राजा रत्नसेन मन का प्रतीक है, पद्मिनी ईश्वर से मिलने वाला ज्ञान या बुद्धि है अथवा चैतन्य स्वरूप परमात्मा है। उसकी प्राप्ति का मार्ग बताने वाला सुआ सद्गुरु है, नागमती दुनिया धन्धा है, राघव चेतन शैतान है और अलाउद्दीन माया है। वास्तव में नागमती को दुनिया धन्धा कहना उसके साथ अन्याय है। वह एक आदर्श भारतीय पत्नी है जो कि विलास की अपेक्षा पति दर्शन को ही अधिक महत्त्व देती है। तोता यदि गुरु है तो उसे मार्जारी का भय क्यों? अलाउद्दीन को माया कहा गया है और नागमती को दुनिया। माया और दुनिया धन्धा प्रायः एक ही चीज है। पद्मिनी को सिंहल द्वीप माना गया है जो कि गोरखपंथ का सिद्ध पीठ है, नहीं तो शुक्ल जी के मतानुसार वहाँ का सौंदर्य कोई आकर्षक नहीं और वहाँ के लोग काले होते हैं। इस संकेत-कोश को देखते हुए कतिपय और प्रश्न भी सहज ही में उठ पड़ते हैं— रत्नसेन और सिंहल दोनों मन के प्रतीक क्यों बनाये गए? मनःरूपी रत्नसेन का ज्ञान रूपी पद्मिनी से मेल हो जाने पर माया रूपी अलाउद्दीन और शैतान रूपी राघवचेतन द्वारा उनका विच्छेद क्यों? शैतान और माया का काम साधक के मार्ग में व्याघात उपस्थित करना होता है, तब राघवचेतन और अलाउद्दीन की कथा के पूर्वार्द्ध में भी आना चाहिए था। इस विवेचन के पश्चात् ऐसा लगता है कि यह अंश प्रक्षिप्त है और ग्रंथ का मूल अंश नहीं। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इतनी व्यापक कथा में सर्वत्र आध्यात्मिकता का प्रतिपादन जायसी का उद्देश्य नहीं है। हाँ, प्रसंगवश समासोक्ति द्वारा जहाँ वे परोक्ष सत्ता का संकेत कर सकें वहाँ आध्यात्मिकता अवश्य है। आचार्य द्विवेदी का इस संबंध में कहना है कि “परोक्ष सत्ता की ओर संकेत करने का उत्साह जायसी में इतना अधिक है कि वे ऐसे प्रसंगों को मानो खोजते फिरते हैं जिससे परोक्ष सत्ता की ओर इशारे करने का मौका मिल सके। ऐसा मौका बाह्य चित्रण में अधिक मिलता है जैसे सिंहल गढ़, उसके बगीचे, मानसरोवर, पद्मावती का बाह्य रूप आदि।” जायसी में भी महाकवि बाण की—सी वर्णन-विस्तार प्रियता है। कहीं-कहीं इन्होंने छोटी-सी बात को भी इतना विस्तार दे दिया है कि विषय के विश्लेषण में सारी आध्यात्मिकता खो सी जाती है। पद्मावती और रत्नसेन के प्रथम मिलन के प्रसंग में किये गए प्रेम वर्णन में रूपक तत्व या आध्यात्मिकता खोजना व्यर्थ होगा। अन्त में हम डॉ० कुलश्रेष्ठ के शब्दों में कह सकते हैं— “जिस प्रकार सागर की कुछ लहरें सागर का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकतीं उसी प्रकार जायसी का ‘पद्मावत’ रहस्यवादी काव्य नहीं कहा जा सकता। हम इसे सरलता से लौकिक प्रेम गाथा का रूप दे सकते हैं।”

‘पद्मावत’ का महाकाव्यत्व: निःसंदेह ‘पद्मावत’ हिन्दी का महाकाव्य है। पृथ्वीराज रासो को विशालकाय भले ही कहा जा सकता है, किन्तु महाकाव्य नहीं क्योंकि उसमें व्यापक जातीय चेतना का अभाव है। महाकाव्य के सभी लक्षणों का इस ग्रंथ में सम्यक् निर्वाह हुआ है। कथा का पूर्वाद्ध लोकप्रचलित और काल्पनिक है तथा उत्तराद्ध ऐतिहासिक। इसका नायक राजकुल से सम्बद्ध है। पूरी कथा 52 सर्गों, जिन्हें खंड कहा गया है, में विभक्त है। इसमें नाटक की सभी संधियाँ मिलती हैं। कथावस्तु में वस्तु वर्णन भी यथास्थान हुआ है। इसमें प्रधान रस-शृंगार है किन्तु अन्य रसों का भी समावेश है। इसमें ऐकान्तिक प्रेम कहानी ही नहीं बल्कि लोकपक्ष का भी सुन्दर समन्वय हुआ है। कथा में स्वाभाविक प्रवाह है। इसमें एक महाकाव्योचित कल्पना, आन्तरिकता तथा बाह्य अनुभूतियों और विचारों का अत्यंत कलात्मक प्रकाशन हुआ है। मंगलाचरण, सज्जनप्रशंसा तथा दुर्जन-निंदा आदि सभी बातें मिलती हैं।

काव्य समीक्षा: जायसी के काव्य में प्रधानता रसरस शृंगार की है। ‘पद्मावत’ में शृंगार के संयोग और वियोग दोनों का अच्छा परिपाक हुआ, किन्तु उसमें प्रधानता वियोग पक्ष की है। नागमती के माध्यम से वर्णित विप्रलम्भ शृंगार इनके अक्षय यश का एक आलोक स्तंभ है। इस क्षेत्र में कदाचित् ही कोई अन्य हिन्दी कवि इनकी समता कर सके। एक तो विरह जनित प्रेम में एक विलक्षण तीव्रता, अनिर्वचनीय क्रियाशीलता तथा निराली तड़प होती है, दूसरे जायसी ने अपने प्रेम विधुर हृदय की कोमल वेदना के अवरल आंसुओं से भिगोकर उसमें मणिकांचन योग कर दिया है। जायसी के विरह वर्णन में इतनी व्यापकता, तीव्रता, मार्मिकता और तन्मयता है कि समस्त जगत, जड़ एवं चेतन उससे द्रवीभूत हो जाता है। उनके विरह की व्यापकता का एक चित्र देखिये—

नैनन चली रक्त के धारा। कथा भीजि भएउ रतनारा॥

सूरज बूडिं उठा हुई राता। औ मजीठ टेसू बन राता॥

औ बसन्त राती बनसपती। औ राते सब जोगी जती॥

यहाँ प्रकृति के द्वारा सहानुभूति प्रदर्शित की गई है। अंग्रेजी कवि रस्किन ने संवेदना को हेत्वाभास (Pathetic Falacy) कहा है। जायसी के ऐसे कथन कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण हैं, किन्तु इनका लाक्षणिक अर्थ लेने पर प्रभावाधिक्य का ही बोध होता है। सूर ने भी कृष्ण विरह में प्रकृति को व्यथित दिखाया है। किन्तु इस विषय में उन्होंने कुछ अधिक मर्यादा से काम लिया है। सूर ने प्रकृति के वे ही अंग लिए हैं जो कृष्ण से सम्बद्ध थे। यमुना के विरह ज्वर से काले पड़ने पर गोपियाँ मधुवन से पूछ उठती हैं— “मधुवन तुम कत रहत हरे?” साहित्य में विरह वर्णन के प्रकरण में पशु, पक्षी, पुष्प और पादपों से प्रियतम का पता पूछने के उदाहरण तो मिल जाते हैं जैसे कालिदास के मेघदूत में विरही यक्ष ध्रुव और जल के संघात बादल को अपनी प्रेमिका के लिए सन्देश देता है, राम सीता के वियोग में वन के खग, मृग और मधुकर-श्रेणी से अपनी मृगनयनी के संबंध में पूछते हैं, किन्तु किसी पक्षी ने व्यथित होकर विरही के साथ सहानुभूति प्रदर्शित की हो, ऐसी नवीनता केवल जायसी में ही मिलेगी। नागमती रत्नसेन के विरह में वन-वन में दिन-रात विलख और कलप रही है—

फिरि-फिरि रोय कोई नवहिं डोला। आधी रात विहंगम बोला॥

तू फिरि-फिरि दाहे सब पांखी। केहि दुख रैन न लावसि आँखी॥

‘पद्मावत’ के प्रेम में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं है फिर भी नागमती के विरह में एक विशेष तीव्रता और मार्मिकता है। नागमती को पति वियोग तो था ही साथ-साथ सपत्नी के प्रति ईर्ष्याभाव ने उसे और

Notes

भी तीव्र बना दिया था। वह विरह में जलकर कोयला हो गई, उसके शरीर में तोला-भर मांस न रहा, उसमें रक्त तो नाममात्र का भी न था। जायसी के शब्दों में—

हाड़ भये सब किंगरी, नसै भई सब ताँति।

रोम रोम से धुनि उठें, कहौ विथा केहि भाँति।

नागमती एक आदर्श हिन्दू महिला है। उसमें पतिभक्ति पूर्ण रूप में विद्यमान है। उसके प्रेम में ऐन्द्रियता की अपेक्षा मानसिक पक्ष की प्रधानता है। उसमें एक महान त्याग है जो उसे बहुत ऊँचा उठा देता है—

मोहिं भोग सो काम न बारी। सौह दिस्टि की चाहनि हारी।

नागमती के विरह-वर्णन में बारहमासा का एक विशेष स्थान है। प्रत्येक मास की प्राकृतिक दशा के साथ नागमती के हृदय के शोक और हर्ष की जो अभिव्यंजना की गई है वस्तुतः अनुपम है। नागमती के निम्नांकित शब्दों में कितनी स्वाभाविकता, कितना दैन्य, कितनी उत्कंठा और कितनी प्रेम-निष्ठा है, इसका एक विरही हृदय ही अनुमान लगा सकता है—

यह तन जारौ छार कै, कहौ कि पवन उड़ाया।

मकु तिहि मारग उड़ि परै, कन्त धरै जहं पाया॥

नागमती का व्यथापूर्ण सन्देश अत्यंत हृदयहारी बन पड़ा है—

पिउ सो कहेउ संदेसड़ा, हे भौरा हे काग।

सो धनि बिरहै जारि मुई, तेहिक धुआं हम लागा।

आचार्य शुक्ल नागमती के विरह के संबंध में लिखते हैं— “नागमती के इस विरह वर्णन में जायसी ने यद्यपि कहीं-कहीं ऊहात्मक पद्धति का सहारा लिया है, फिर भी उसमें गाम्भीर्य बना हुआ है। बिहारी के विरह-व्यंजना की भाँति उसमें उछल-कूद और मजाक नहीं है। जायसी की अत्युक्तियां बात की करामात नहीं जान पड़तीं। हृदय की अत्यंत तीव्र वेदना के शब्द-संकेत प्रतीत होते हैं। फारसी की काव्य शैली से प्रभावित होने के कारण जायसी का विरह-वर्णन कहीं-कहीं वीभत्स हो उठा है, परन्तु जहाँ कवि ने भारतीय पद्धति का अनुसरण किया है वहाँ कोई अरुचिकारी वीभत्स दृश्य नहीं आने पाया।”

संयोग पक्ष: जायसी को अपने ‘पद्मावत’ में जितनी सफलता वियोग-पक्ष में मिली है उतनी संयोग पक्ष में नहीं। यद्यपि उनका यह पक्ष भी सजीव है और इस दिशा में उन्होंने काफी मर्मस्पर्शी चित्र अंकित किये हैं, पर उनमें इतनी व्यापकता, तीव्रता और गंभीरता नहीं जितनी कि विप्रलम्भ शृंगार में है। इन्होंने संयोग-शृंगार के वर्णन में षट्-ऋतु का वर्णन किया है, जो कि आकर्षक है। रत्नसेन तथा पद्मावती के प्रथम समागम का बड़ा विशद वर्णन किया है और उसमें कुछ हास्य विनोद का भी विधान किया है। समागम के समय के हाव-भावों के वर्णन में कहीं-कहीं कोरी छेड़-छाड़ है जो फटकार और अश्लीलता की कोटि में पहुँच जाती है। प्रेमिका के वार्तालाप में श्लेष और अन्योक्ति द्वारा वाक्चातुर्य दिखाया गया है जो रसचर्वणा में सहायक की अपेक्षा बाधक सिद्ध हुआ है। समागम की रसधारा के बीच रसायनशास्त्र के लम्बे ब्यौरे देकर अपनी बहुज्ञता दर्शाने लगते हैं जिससे रसास्वादन में आघात पहुँचा है। उनके संयोग में एक-एक अंग का अलग-अलग बिखरा हुआ सौंदर्य भले ही हो पर वह किसी समन्वित प्रभाव की सृष्टि नहीं कर सकता। इनके संयोग के चित्रों में हतनी मार्मिकता नहीं कि वे पाठक को संयोग के मधुर वातावरण में डुबो सकें। डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त के शब्दों में, “संयोग पक्ष के अन्य

अंगों व क्रिया-कलापों के वर्णन में भी जायसी ने असंयम से काम लिया है। उसके फलस्वरूप उनके संयोग-वर्णन अत्यंत स्थूल, शिथिल एवं अश्लील हो गए हैं।”

अन्य रस: ‘पद्मावत’ एक प्रबन्ध काव्य है, अतः इसमें शृंगार रस के अतिरिक्त अन्य रसों का समावेश भी हुआ है। रत्नसेन के सिंहल गमन, रानियों का विलाप तथा रत्नसेन की मृत्यु के प्रकरणों में करुण रस का अच्छा परिपाक हुआ है। युद्ध वर्णन में वीभत्स का अच्छा उद्रेक है। क्षात्र तेज सम्पन्न गोरा-बादल आदि पात्रों में वीर रस की भी सुन्दर व्यंजना हुई है। जायसी का वात्सल्य वर्णन कुछ शिथिल सा है। अलाउद्दीन की रत्नसेन को भेजी चिट्ठी के प्रसंग में रौद्र रस है पर उसका यथेष्ट परिपाक नहीं हुआ है। रत्नसेन के वैराग्य वृत्ति धारण करने पर शान्त रस का निर्वाह हुआ है।

‘पद्मावत’ एक घटनाप्रधान काव्य है। जायसी ने इसे रसात्मक बनाने के लिए वर्णनात्मकता पर अत्यधिक बल दिया है।

6.3 पद्मावत मानसरोवर खण्ड का सार

एक दिन पूर्णिमा के आने पर पद्मावती मानसरोवर में स्नान करने चली। उसने अपनी सब सखियों को बुला भेजा। वे सब आई तो लगा कोई फुलवारी आ गई हो अर्थात् उन्होंने रंग-बिरंगे वस्त्र पहन रखे थे। खेलती-कूदती सब सखियाँ पद्मावती को साथ लेकर मानसरोवर के किनारे बने बाँध पर जा खड़ी हुईं। सखियाँ पद्मावती को कहने लगीं कि अब तो पिता का घर है जो-जो खेल खेलना है खेल लो कल को तो हम सब ससुराल चली जाएँगी। ससुराल में तो सास ननद की बोलियाँ सहनी पड़ेंगी और सबसे प्यारा पति भी न जाने कैसा व्यवहार करेगा सुखी रखेगा या दुःखी। स्नान को तैयार हुई पद्मावती ने अपने बालों के जूड़े को खोल कर बाल बिखरा दिये। उसके खुले केश मानों बादलों के समान थे जिन्होंने सूर्य को भी ढक लिया था और दिन में भी चाँद निकल आया हो। सभी सखियाँ कपड़े उतार कर पानी में उतर गयीं ओर जलक्रीड़ा करने लगीं। उन सुन्दर कन्याओं को अपने जल में स्नान करते देख सरोवर भी खुशी में समा नहीं रहा था। सब सखियों ने जलक्रीड़ा करते हुए शर्त लगा कर एक खेल खेलना शुरू किया जिसमें हारने वाले को अपने गले का हार देना होगा। इतने में एक अनाड़ी सखी अपना हार जल में खो बैठी। हार गुम हो जाने के कारण वह रोने लगी। तब सब सखियाँ डुबकी लगा लगाकर उस सखी के हार को खोजने लगीं। ज्योंही हार खोजने के लिए पद्मावती ने जल में प्रवेश किया मानसरोवर ने उसके चरणों का स्पर्श पाकर तथा उसके रूप सौंदर्य को निकट से देखने के कारण उस हार को अपने जल पर तैरा दिया। वह सखी और अन्य सब सखियाँ प्रसन्न हो गयीं।

प्रस्तुत खण्ड में कवि ने आध्यात्मिकता की ओर भी संकेत किया है यहाँ नैहर का अर्थ यह संसार है जहाँ जीव को चार दिन रहना होता है और मृत्यु के पश्चात् परलोक (ससुराल) चले जाना है। सास ननद की बोलियों से तात्पर्य परलोक में गुणों-अवगुणों की गणना और उनके अनुसार उनके सम्बन्ध में होने वाली आलोचना से है।

खेल मानव जीवन का प्रतीक है। यह मानव जीवन बार-बार नहीं मिलता अतः इसे हँसी खेल में गँवाना अच्छा नहीं। प्रेम के साथ खूब सोच-समझ कर जीवन खेल खेलना चाहिए।

पद्मावती को कवि ने परब्रह्म का स्वरूप माना है संसार का जितना सौंदर्य है वह परब्रह्म की ही प्रतिच्छवि है।

Notes

स्व:मूल्यांकन

निम्न कथनों में सत्य/असत्य बताएं:

1. मलिक मुहम्मद जायसी का जन्म वि.सं. 1550 के लगभग हुआ और उनका वास्तविक नाम मुहम्मद था।
2. जायसी की प्रामाणिक रचनाएँ “कवितावली” और “विनय पत्रिका” हैं।
3. जायसी सूफी सम्प्रदाय से थे जिनमें ईश्वर की कल्पना प्रेम के रूप में की जाती है।
4. जायसी ने अपने काव्य में इतिहास और कल्पना का समन्वय नहीं किया है।
5. जायसी के काव्य में संयोग और वियोग वर्णन पर विशेष बल दिया गया है।

6.4 सारांश (Summary)

- हिंदी साहित्य की भक्तिकाल की प्रेममार्गी शाखा सूफी संत परम्परा में मलिक मुहम्मद जायसी अपना विशेष स्थान रखते हैं।
- मलिक मुहम्मद जायसी का जन्म वि०सं० 1550 के लगभग और मृत्यु वि०सं० 1600 के करीब हुई थी। आप अरब से आए मुसलमान थे, भारतीय नहीं किन्तु जायस-जिला रायबरेली (उत्तर प्रदेश) में आकर बस गए थे तभी इन्हें जायसी कहा जाने लगा।
- जायसी की रचनाओं की संख्या 20-21 के करीब है परंतु 6 रचनाएँ ही प्रामाणिक मानी जाती हैं जिनमें प्रमुख ‘अखरावट’, ‘आखिरी कलाम’, ‘मसलनामा’, ‘कहरनामा’, ‘चित्रलेखा’ तथा ‘पद्मावत’ है।
- जायसी के काव्य में लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना की गई है पद्मावत में राजा रत्नसेन और रानी पद्मावती के माध्यम से सूफी मत की पारमार्थिक साधना का प्रचार किया गया।
- रति भाव से परिपुष्ट ‘पद्मावत’ में संयोग और वियोग का मनोहारी और रमणीक वर्णन कवि ने किया है। संयोग वर्णन में जायसी ने किशोरी पद्मावती के अंग प्रत्यंग का ललित, रमणीय, सजीव और मनमोहक वर्णन प्रस्तुत किया है। वियोग वर्णन में नागमती के विरह में सामान्य हृदय तत्व की सृष्टिवादिनी भावना की व्यंजना की है। इस भावना में कवि ने मनुष्य और पशु-पक्षी को एक सूत्र में पिरोकर देखा है।
- जायसी के काव्य में हिन्दू-मुस्लिम एकता और इतिहास और कल्पना का मिश्रण किया गया है। राजस्थान और पंजाब की लोककथाओं को आधार बनाकर अनेक काल्पनिक घटनाओं का समावेश कर ‘पद्मावत’ की रचना की गई है।
- जायसी की भाषा ठेठ अवधि है। यद्यपि उनकी भाषा साहित्यिक एवं पांडित्यपूर्ण नहीं है फिर भी स्वाभाविक सरलता तथा प्रसाद एवं माधुर्य से ओत-प्रोत है। ‘पद्मावत’ में मनसवी शैली का प्रयोग किया गया है।

6.5 शब्दकोश (Keywords)

वियोग: विरह।

दुर्बल: कमजोर।

6.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. मलिक मुहम्मद जायसी का संक्षिप्त जीवन परिचय देते हुए उसके काव्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. “मलिक मुहम्मद जायसी भक्तिकालीन प्रेममार्गी शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि थे”। इस कथन की सार्थकता पर प्रकाश डालिए।
3. मलिक मुहम्मद जायसी का हिन्दी साहित्य में स्थान निर्धारित कीजिए।
4. मलिक मुहम्मद जायसी के काव्य में शृंगार वर्णन और रहस्यवाद पर विचार स्पष्ट करें।

उत्तर: स्व:मूल्यांकन

- | | |
|---------|----------|
| 1. सत्य | 2. असत्य |
| 3. सत्य | 4. असत्य |
| 5. सत्य | |

6.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



Books

हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा।

हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ० ईश्वरदत्त शील, आभारानी।

हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास – विश्वनाथ त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन।

Notes

इकाई 7: राम काव्य के प्रमुख कवि: तुलसीदास और उनका काव्य

अनुक्रमणिका (CONTENTS)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

7.1 राम काव्य के प्रमुख कवि: तुलसीदास

7.1.1 कवि तुलसीदास का जीवनवृत्त

7.1.2 तुलसीदास की काव्यगत विशेषताएँ

7.2 'चित्रकूट मिलन' का काव्य सौंदर्य

7.3 सारांश (Summary)

7.4 शब्दकोश (Keywords)

7.5 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

7.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी:

- राम काव्य के प्रमुख कवि तुलसीदास का जीवनवृत्त जानेंगे।
- तुलसीदास की काव्यगत विशेषताओं और उनकी रचनाओं की जानकारी प्राप्त करेंगे।

प्रस्तावना (Introduction)

भारत के सबसे बड़े लोकनायक होने का श्रेय गोस्वामी तुलसीदास को है। तुलसीदास ने श्रीराम के पावन चरित्र में शील-शक्ति और सौंदर्य का समन्वय करके अपनी जीवन साधना से एक ऐसी प्राणवान लोक क्रांति का सृजन और पोषण किया जिसने निराश और निस्पंद हिन्दू जाति में उत्साह और आशा का संचार कर दिया गया।

7.1 राम काव्य के प्रमुख कवि: तुलसीदास

सर जार्ज ग्रियर्सन का यह कथन पूर्ण रूप से सत्य है कि महात्मा बुद्ध के बाद भारत के सबसे बड़े लोकनायक गोस्वामी तुलसीदास ही हैं। प्रख्यात रामकथा वाचक मुरारी बापू के अनुसार गोस्वामी तुलसीदास ने अपने कार्य द्वारा समाज ही नहीं व्यक्ति को सुधारने का भी प्रयास किया। आपके पिता

का नाम आत्माराम दूबे तथा माता का नाम हुलसी था। तुलसीदास का बचपन बड़ा कष्टमय रहा। तुलसी भीख माँग-माँग कर पेट भरते रहे। संयोग से उनकी भेंट बाबा नरसिंह जी से हो गई। वह राम भक्त थे। बाबाजी ने इन्हें वेद-वेदान्त तथा शास्त्रों का ज्ञान दिया और संस्कृत भाषा की शिक्षा दी।

7.1.1 कवि तुलसीदास का जीवनवृत्त

गोस्वामी तुलसीदास के जीवनवृत्त के बारे में अन्तः साक्ष्य एवं बहिःसाक्ष्य के आधार पर विद्वानों ने विविध मत प्रस्तुत किये हैं। बेनीमाधव दास-प्रणीत 'मूल गोसाईं चरित' तथा महात्मा रघुबरदास रचित 'तुलसी चरित' में गोस्वामी जी का जन्म संवत् 1558 दिया हुआ है। बेनीमाधवदास जी की रचना में गोस्वामी जी की जन्मतिथि श्रावण शुक्ल सप्तमी का भी उल्लेख है। इस संवत् के अनुसार इनकी आयु 126-127 वर्ष की ठहरती है। 'शिवसिंह सरोज' में इनका जन्म-संवत् 1583 स्वीकार किया गया है। इसी प्रकार इनकी जन्मतिथि संवत् 1586 अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होती है। इस प्रकार इनके जन्मस्थान के बारे में भी विद्वानों में भारी मतभेद है। 'मूल गोसाईं चरित' और 'तुलसी चरित' में इनका जन्मस्थान राजापुर बताया गया है। शिवसिंह सेंगर और रामगुलाम द्विवेदी भी राजापुर को गोस्वामी जी का जन्मस्थान मानते हैं। लाला सीताराम, गौरीशंकर द्विवेदी, रामनेश त्रिपाठी तथा डॉ० रामदत्त भारद्वाज सोरों को तुलसीदास जी का जन्मस्थान मानते हैं। "मैं पुनि निज गुरु सन सुनि, कथ से सूकर खेत"— गोस्वामी जी की इस उक्ति को ये विद्वान प्रामाणिक मानते हुए कर खेत का अभिप्राय 'सोरों' मानते हैं। आचार्य शुक्ल का अभिमत है कि 'सूकर खेत' को भ्रम से सोरों समझ लिया गया। 'सूकर क्षेत्र' गोंडा जिले में सरयू के किनारे एक पवित्र तीर्थ है, जहाँ आसपास के कई जिलों से लोग स्नान करने आते हैं और मेला लगता है।

जनश्रुति के अनुसार गोस्वामी जी के पिता का नाम आत्माराम दूबे और माता का नाम हुलसी था और वे पत्थौजा के दूबे थे। "तुलसी परासर गोत दूबे पति औजा के" मिश्रबन्धुओं ने इन्हें कान्य-कुब्ज माना है। 'मूल गोसाईं चरित' और 'तुलसी चरित' के आधार पर आचार्य शुक्ल आदि ने इन्हें सरयूपारीय ब्राह्मण माना है। "मातु पिता जग जाई तज्यों जनमि, कमर बिनु विधिहु, सृज्यो अवडेरें" आदि अन्तःसाक्ष्यों के आधार पर यह प्रमाणित होता है कि गोस्वामी जी का बाल्यकाल अत्यन्त विषम परिस्थितियों में व्यतीत हुआ था। अत्यधिक आसक्ति के कारण जब एक बार इन्हें अपनी पत्नी से मधुर भर्त्सना— "लाज न आई आपको दौरे आएहु साथ" मिली तब इनकी अवधारा सहसा लौकिक विषयों से विमुख होकर प्रभु-प्रेम की ओर उन्मुख हो गयी।

रचनाएँ: इनके द्वारा विरचित अनेक ग्रंथ विविध सूत्रों में उपलब्ध हुए हैं। आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास में इनके छोटे-बड़े बारह ग्रन्थों का उल्लेख किया। रामचरित मानस, दोहावली, तावली, बरवे, रामायण, गीतावली, पार्वती मंगल, कृष्ण गीतावली, विनय पत्रिका, वैराग्य संदीपनी, जानकी मंगल, रामाज्ञाप्रश्न और रामलला नहछू।



Notes

जनश्रुति के अनुसार गोस्वामी तुलसीदास जी के पिता का नाम आत्माराम दूबे और माता का नाम हुलसी था।

Notes

शिवसिंह सरोज में दस और ग्रंथों के नाम भी गिनाये गये हैं— ‘राम सतसई’, ‘संकटमोचन’, ‘हनुमान बाहुक’, ‘रामशलाका’, ‘छन्दावली’, ‘छप्पय रामायण’, ‘कहरवा रामायण’, ‘रोला रामायण’, ‘झूलना रामायण’ और ‘कुण्डलिया रामायण’।

इन सभी रचनाओं में भाव-वैविध्य गोस्वामी जी की सबसे बड़ी विशेषता है। एक ओर तो उन्होंने नाथपन्थियों के प्रभाव से नष्ट होती हुई जन-मानस की विश्वासमयी रागात्मिका कृतियों को राम भक्ति के माध्यम से पुनः पल्लवित किया और दूसरी ओर रामकथा के विविध प्रसंगों के माध्यम से राजनीतिक सामाजिक जैव पारिवारिक जीवन के आदर्शों को जनता के सामने प्रस्तुत कर विश्रृंखलित हिन्दू समाज को केन्द्रित किया। उनकी भक्ति-भावना कबीर आदि निर्गुण भक्तों की ज्ञानयोगमयी भावना की भाँति रहस्यमयी नहीं है।



Did u know? तुलसी की प्रामाणिक कृतियाँ ‘जानकी मंगल’, ‘रामचरितमानस’, ‘कृष्ण गीतावली’, ‘विनय दोहावली’ और ‘कवितावली’ हैं।

वह सीधी सरल एवं सहजसाध्य हैं। उनके राम सृष्टि के कण-कण में व्याप्त हैं, वे सभी के लिए सुलभ हैं।

7.1.2 तुलसीदास की काव्यगत् विशेषताएँ

तुलसी जैसा व्यक्ति युगों में एक पैदा होता है। तुलसीदास जी मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के अनन्य भक्त थे और सारे संसार को ‘सियाराममय’ देखते थे। भक्त होने के साथ-साथ तुलसी दार्शनिक, पण्डित, कवि, नीतिज्ञ, समाज सुधारक और विचारक के रूप में बहुमुखी प्रतिभा रखने वाले थे। तुलसीदास जी भक्तिकाल के पहले ऐसे कवि थे जिन्होंने भारतीय समाज, भारतीय जनता की समस्याओं को भली प्रकार समझा और सही ढंग से उनका समाधान प्रस्तुत किया।

1. **भक्ति भावना:** तुलसीदास जी श्रीराम के अनन्य भक्त थे। उन्होंने बाल्मीकि के मर्यादा पुरुषोत्तम राम को भगवान् विष्णु के अवतार के रूप में स्वीकार किया। तुलसी के श्रीराम विश्व की समस्त चेतना के मूल सूत्र हैं, विश्व के सभी प्राणी मात्र में जीव होकर व्याप्त हैं। श्रीराम परम ब्रह्म और परमात्मा हैं। भक्त के प्रेम के कारण ही निर्गुण ब्रह्म सगुण का रूप धारण करता है।



Task

तुलसीदास की काव्य विशेषताओं का वर्णन करें।

सगुनहि अगुनहि नहीं कुछ भेदा, गावहि मुनि पुरान बुध वेदा॥

अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुण सो होई॥

तुलसीदास ने भक्ति और प्रेम-पिपासा में चातक को आदर्श माना है। मर्यादा के अनुकूल अन्य देवी-देवताओं से प्रार्थना करते हुए उन्होंने उनसे राम भक्ति की याचना कर अपनी अनन्यता की रक्षा की है। उनकी भक्ति सेव्य-भाव की थी। इसके बिना वे मुक्ति को असम्भव मानते हैं—

सेवक सेव्य-भाव विनु, भव न तरिये उरमीर।

तुलसी श्रीराम की भक्ति के मार्ग को अत्यन्त सीधा, सरल और सहज मानते हैं, जो भी इस पर निष्कपट भाव से चलता है वह ही मुक्ति को प्राप्त करता है।

सूधे मन सूधे वचन सूधी सब करतूति।

तुलसी सूधी सकल विधि, रघुवर प्रेम-प्रसूति॥

2. **जन-भाषा का प्रयोग:** तुलसी के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है कि उन्होंने अपना काव्य जन भाषा में रचा, संस्कृत में नहीं। क्योंकि तुलसी जानते थे कि जनता की बात जनता तक उसी की भाषा में कही जा सकती है। उन्होंने उस समय की दोनों जन-भाषाओं— अवधि और ब्रज में अपने काव्य की रचना की। 'वरवै रामायण', 'रामलला नहछू' आदि में पूर्वी अवधि, 'रामचरितमानस' में पश्चिमी अवधि तथा 'गीतावली', 'कवितावली', 'विनय पत्रिका' आदि की रचना ब्रज भाषा में की। संस्कृति दुरुह भाषा होने के कारण हालांकि पंडित समाज में इसका विरोध भी हुआ किन्तु उनका मानना था—

का भाषा का संस्कृत, भाव चाहिए साँच॥

काम जो आवे कामरी, का लै करै कमांच॥

3. **हिन्दू धर्म और जाति के रक्षक:** तुलसी के काव्य ने हिन्दू धर्म और जाति की रक्षा करने का जो महत्वपूर्ण कार्य किया उसे कोई भी हिन्दू भूल नहीं सकता। उन्होंने 'रामचरितमानस' के द्वारा भक्ति के साथ शील, आचार मर्यादा और लोक संग्रह का सन्देश सुना कर हिन्दू जाति में एक अपूर्व दृढ़ता उत्पन्न कर दी। सर्वप्रथम तुलसीदास ने हिन्दुओं में प्रचलित वैष्णव, शैव और शाक्त गुटों को एक करने का प्रयास किया। तुलसी से पूर्व इन तीनों गुटों या सम्प्रदायों में लड़ाई-झगड़े ही नहीं, मारकाट तक की नौबत आ जाया करती थी। तुलसीदास जी ने 'मानस' की कथा शंकर भगवान् द्वारा पार्वती जी को सुनाई है। शंकर भगवान् प्रभु श्रीराम को अपना इष्ट कहते हैं। इससे कहीं वैष्णवों को अभिमान न हो जाए इसलिए तुलसी श्रीराम विधिवत् शंकर भगवान् की पूजा अर्चना करते हैं। साथ ही तुलसीदास जी ने श्रीराम के मुख से कहलाया—

शिवद्रोही मम दास कहावा।

सो नर मोहि सपनेहु नहिं भावा॥

औरउ एक गुपुत मत सबहि कहहूँ कर जोरि।

संकर भजन बिना नर, भगति न पावै मोरि॥

4. **समन्वयवादिता:** तुलसी के काव्य में समन्वयवादिता का गुण सर्वत्र विद्यमान है। उनके काव्य में लोक और शास्त्र ही नहीं, वैराग्य और गृहस्थ का ज्ञान, भक्ति और कर्म का, भाषा और संस्कृति का, निर्गुण और सगुण का, पंडित और अपंडित का, आदर्श और व्यवहार का समन्वय देखने को मिलता है।
5. **मुक्तक काव्य:** तुलसीदास की दोहावली, गीतावली, विनय पत्रिका आदि कृतियाँ मुक्त काव्य की कोटि में आती हैं। हिन्दी साहित्य के मुक्तक साहित्य की ये उत्कृष्ट रचनाएँ हैं। इन रचनाओं में कवि की आत्मानुभूतियों का चित्रण हुआ है। किंतु तुलसीदास ने राम कथा को जिस रूप में ग्रहण किया है उसमें भावुकता के लिए स्थान बहुत कम है, जहाँ वह है भी मर्यादित है। उनके कृष्ण

Notes

काव्य में सूर जैसी भावुकता उत्पन्न नहीं हो सकी। हाँ उनकी “विनय-पत्रिका” आत्म निवेदन साहित्य में विशिष्ट स्थान रखती है।

6. **प्रबन्ध कौशल:** तुलसी प्रमुखतः प्रबन्ध काव्यकार हैं। ‘रामचरितमानस’ प्रबन्ध कौशल की दृष्टि से हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। ‘मानस’ की कथा का आधार ‘अध्यात्म रामायण’ और ‘वाल्मीकि रामायण’ है, किन्तु उस कथा के निर्वाह में अनेक मौलिक एवं नवीन प्रसंगों की उद्भावना से तुलसी ने अपनी मौलिकता एवं कलात्मकता का परिचय दिया है। यथा श्रीराम सीता जी के प्रथम मिलन का फुलवारी दृश्य, धनुष भंग के समय परशुराम जी का तुरन्त जनक सभा में प्रकट होना आदि के दृश्य। मानस की कथा चार-चार वक्ताओं और श्रोताओं के माध्यम से कही गई है किन्तु कहीं भी रोचकता में बाधा नहीं पड़ती है। ‘मानस’ में महाकाव्य के सभी लक्ष्य विद्यमान हैं। श्रीराम धीरोदात्त नायक हैं, श्रृंगार, वीर आदि सभी रसों से ‘मानस’ अनुप्राणित है और सबसे बड़ी बात ‘मानस’ का चरित्र-चित्रण इतना स्वाभाविक एवं सशक्त बन पड़ा है कि लगता है तुलसी मनोविज्ञान के भी कुशल ज्ञाता थे। मानस के सभी पात्र अलौकिक होते हुए भी लौकिक प्रतीत होते हैं। मानवीय संवेदना से युक्त सुख-दुःख को अनुभव करने वाले।

7.2 ‘चित्रकूट मिलन’ का काव्य सौंदर्य

‘रामचरितमानस’ में चित्रकूट मिलन प्रसंग का विशेष महत्व है क्योंकि इसी प्रसंग से कथा का विकास आरम्भ होता है तथा पाठकों के मन को अनेक जिज्ञासाओं का उत्तर भी मिलता है। उनमें से कुछ प्रश्न निम्नलिखित हैं— जब कैकेयी श्रीराम से अपने पुत्र भरत से भी अधिक स्नेह करती थी तो फिर क्यों उसने श्रीराम को चौदह वर्ष के लिए वन भेजने का वर मांगा? वनवास का समय चौदह वर्ष ही क्यों रखा गया? दूसरा प्रश्न था कि क्या इसमें भरतजी का तो कोई हाथ नहीं? लक्ष्मण जी के समान अन्य कई लोग ऐसा विचार करते थे।

गोस्वामी तुलसीदास के इष्ट मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु का अवतार श्रीराम हैं। उनके इष्ट ने जीवन भर मर्यादा का पालन किया यह बात गोस्वामी जी के मन में थी। इसी कारण उन्होंने ‘मानस’ में कहीं भी मर्यादा के विपरीत बात नहीं कही। ऊपर उठाये गये प्रश्नों के उत्तर भी उन्होंने मर्यादा का पालन करते हुए प्रस्तुत प्रसंग में स्पष्ट कर दिए। हालांकि जब भरत जी चित्रकूट में श्रीराम से मिलने आए थे तो उनको समाज छोड़ कर आते हुए देखकर लक्ष्मण जी धनुष बाण उठा कर लड़ने के लिए तैयार हो गये थे। क्योंकि उनके मन में भी वही शंका थी कि श्रीराम के वनवास के लिए भरत ही दोषी हैं किन्तु श्रीराम ने न केवल लक्ष्मण जी की शंका का समाधान किया अपितु अन्य ऐसे लोगों की शंका का भी समाधान कर दिया। प्रस्तुत प्रसंग में कवि ने श्रीराम के मुख से भरत जी की प्रशंसा नहीं करवाई अपितु सरस्वती देवी के मुँह से भी कहलवाया—

विधि हरि हर माया बड़ि भारी। सोउ न भरत मतिसकड़ि निहारी॥

देवी ने आगे कहा—

भरतहि हृदयै सियाराम निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू॥

देवराज इन्द्र और देवगुरु बृहस्पति जी ने भी भरत जी की राम भक्ति की प्रशंसा की। फिर मन, वचन और कर्म से जो व्यक्ति श्रीराम का भक्त हो, उनका सेवक हो, उनको स्वामी मानता हो वह कैसे उन्हें

वन भेजने का षड्यन्त्र रच सकता है। अतः इस शंका का समाधान गोस्वामी जी ने प्रस्तुत प्रसंग में कर दिया है।

अब रहा दूसरा प्रश्न— कैकेयी द्वारा श्रीराम को वनवास का वर मांगना और वह भी एक दो वर्ष नहीं पूरे चौदह वर्षों के लिए। गोस्वामी जी ने इस प्रश्न का उत्तर भी दे दिया है— श्रीराम का जन्म ही रावण को समाप्त करने के लिए हुआ था क्योंकि उसने देवताओं को प्राप्त शक्तियों के आधार पर तंग करना शुरू कर दिया था। जब देवताओं ने देखा कि श्रीराम तो राज्य सिंहासन पर बैठने वाले हैं तो उन्होंने षड्यन्त्र रचकर मंथरा और कैकेयी को देवी सरस्वती की सहायता से अपने वश में कर लिया और कैकेयी जी ने देवताओं की इच्छानुसार या षड्यन्त्र अनुसार श्रीराम को चौदह वर्ष वन भेजने का वर मांग लिया क्योंकि रावण के पापों का घड़ा चौदह वर्ष बाद ही भरना था। किन्तु चित्रकूट मिलन प्रसंग में कमजोर दिल के मालिक देवता लोग फिर से शंकालु हो उठे कि कहीं श्रीराम भ्रातृस्नेह के वश हो भरत की बात न मान लें अतः उन्होंने पुनः षड्यन्त्र रचा।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने ज्ञान और विद्वता के आधार पर इस प्रसंग को इस तरह प्रस्तुत किया है कि मर्यादा, धर्म और वचन की पूरी-पूरी रक्षा हुई। संकलित काव्यांश का आरम्भ ही इस ढंग से हुआ है।

गुरु अनुराग, भरत देखी। राम हृदयँ आनंदु विसेषी।

श्रीराम को प्रसन्नता हुई एक भरत जी की गुरु भक्ति देखकर तथा दूसरे गुरु वशिष्ठ द्वारा मर्यादा का पालन करने पर क्योंकि गुरु जी ने श्रीराम से इतना ही कहा कि भरत की बात सुन लो। उन्हें सीधे आज्ञा नहीं दी कि घर लौट चलो क्योंकि यदि श्रीराम घर लौटने से इनकार कर देते तो गुरु आज्ञा का उल्लंघन करने के दोषी ठहरते। उधर गुरु वशिष्ठ ने भी सोचा कि ऐसी आज्ञा देना नीति और धर्म के विरुद्ध होगा अतः उन्होंने इतना ही कहा— हे सर्वज्ञ, हे सुजान, हे धर्म, नीति, गुण और ज्ञान के भण्डार राम, आप सबके हृदय के भीतर बसते हैं और सबके भले-बुरे भाव को जानते हैं जिसमें पुरवासियों का, माताओं का और भरत का हित हो वही उपाय बताइये।

प्रस्तुत प्रसंग में कवि ने मुनि वशिष्ठ, भरत जी और श्रीराम द्वारा शिव को साक्षी मान कर बातें कहलवाई हैं। इससे कवि ने तत्कालीन हिन्दू समाज में शैव और वैष्णव मतावलंबियों के संघर्ष को समाप्त करने की भी चेष्टा की है।

प्रस्तुत प्रसंग में कवि ने भरत जी, श्रीराम और मुनि वशिष्ठ का चरित्र-चित्रण भी बड़ी कुशलता से किया है। कवि ने भरत जी का श्रीराम के प्रति भक्ति और स्नेह दर्शाया है तथा श्रीराम को धर्मज्ञ नीतिवान और सबसे स्नेह करने वाले दिखाया है।

भाषा और शैली की दृष्टि से भी यह प्रसंग महत्वपूर्ण है। प्रसंगानुकूल अनेक मुहावरों और अलंकारों का प्रयोग हुआ है विशेषकर रूपक दृष्टान्त और उत्प्रेक्षा का प्रयोग तो बहुत ही मनोहारी बन पड़ा है। भाषा भी सरल, सुबोध और माधुर्य गुण युक्त है। चित्रकूट मिलन प्रसंग में हमें भरत जी के चरित्र के विषय में देव गुरु बृहस्पति जी, श्रीराम, देवराज इन्द्र तथा देवी सरस्वती तथा स्वयं भरत जी के कथनों से उनके चरित्र के विषय में जानकारी मिलती है।

श्रीराम ने भरत जी के विषय में कहा कि भरत के समान संसार में कोई भाई हुआ ही नहीं है। यह गुरुचरणों का अनुरागी है अतः लौकिक दृष्टि से तथा परमार्थिक दृष्टि से बड़भागी है। श्रीराम ने कहा— मेरे मत में तीनों कालों (भूत, वर्तमान, भविष्य) तीनों लोकों (पृथ्वी, आकाश, पाताल) के सब पुण्यात्मा

Notes

पुरुष तुम से नीचे हैं। हृदय में भी तुम पर आरोप लगाने वाले का यह लोक (यहाँ के सुख, यश आदि) बिगड़ जाता है तथा परलोक भी नष्ट हो जाता है अर्थात् उसको मरने के बाद भी गति नहीं मिलती। हे भरत! तुम्हारा नाम स्मरण करते ही सब पाप, प्रपंच (अज्ञान) और समस्त अमंगलों के समूह मिट जाते हैं तथा इस लोक में सुन्दर यश और परलोक में सुख मिलता है। हे भरत! यह पृथ्वी तुम्हारी ही रखी है।

देव गुरु बृहस्पति जी ने कहा— भरत जी के चरणों का प्रेम जगत् में समस्त शुभ मंगलों का मूल है। भरत जी की सेवा सैकड़ों कामधेनुओं के समान सुन्दर है। भरत जी का प्रभाव तो देखो। श्रीराम सहज स्वभाव से ही पूर्णरूप से उनके वश में हैं। भरत जी तो श्रीराम की परछाई हैं अर्थात् परछाई की भाँति उनका अनुसरण करने वाले हैं।

देवताओं ने जब निज स्वार्थ के कारण भरत जी का मन उलटने की प्रार्थना देवी सरस्वती से की तो देवी ने देवराज इन्द्र को फटकारते हुए कहा कि हजार आँखें होने पर भी तुम्हें सुमेरु पर्वत (सोने का पहाड़) नहीं दिखाई देता। ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश की माया बड़ी प्रबल है वह भी भरत जी की ओर ताक नहीं सकती, उन भरत जी की बुद्धि को भ्रम में डालने की तुम बात कहते हो? क्या चाँदनी प्रचण्ड किरणों वाले सूर्य को चुरा सकती है। भरत जी के हृदय में श्री सीताराम का निवास है। जहाँ सूर्य का प्रकाश है, वहाँ अंधेरा कैसे रह सकता है — यह कह कर देवी ब्रह्मलोक को चली गयीं।

भरत जी के कथन से भी हमें उनके विनम्र एवं शील स्वभाव का पता चलता है। भरत जी हृदय से साधु थे। श्रीराम के अनन्य भक्त थे। इसी कारण उनकी तुलना संसार में किसी से नहीं की जा सकती।

स्व:मूल्यांकन

रिक्त स्थान भरें:

1. तुलसीदास जी का जन्म की श्रावण शुक्ल सप्तमी को हुआ।
2. तुलसीदास के प्रमुख ग्रंथ, ... और हैं।
3. तुलसीदास के अनन्य भक्त थे।
4. तुलसीदास की भक्ति की विशेषता उनका भाव है।

7.3 सारांश (Summary)

- भारत के सबसे बड़े लोकनायक गोस्वामी तुलसीदास जी हैं। आपका जन्म सं० 1554 की श्रावण शुक्ल सप्तमी को हुआ। आपके पिता का नाम आत्माराम दूबे तथा माता का नाम हुलसी था। आपका बचपन बहुत कष्टमय रहा।
- गोस्वामी तुलसीदास कृत 30-35 रचनाओं का उल्लेख किया जाता है जिसमें 12 रचनाएँ प्रमाणिक हैं। इनमें प्रमुख 'रामचरित मानस', 'गीतावली', 'कृष्ण गीतावली', 'विनय पत्रिका', 'दोहावली' हैं।
- तुलसीदास जी मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के अनन्य भक्त थे और सारे संसार को "सियाराममय" देखते थे। भक्त होने के साथ-साथ तुलसी दार्शनिक, पंडित, कवि और नीतिज्ञ भी थे।

- तुलसीदास के अनुसार निर्गुण और सगुण ब्रह्म में कोई भेद नहीं है। तुलसी के राम समस्त चेतना के मूल स्रोत हैं।
- उनकी भक्ति की विशेषता उनका दैन्य भाव है। 'विनय पत्रिका' और 'कवितावली' में अपनी दीनता का उन्होंने कई स्थानों पर वर्णन किया है।
- तुलसीदास जी ने "रामचरितमानस" द्वारा भक्ति के साथ शील, आचार, मर्यादा और लोक संग्रह का संदेश सुनाया है।
- तुलसीदास जी के काव्य में वैराग्य और गृहस्थ का, भक्ति और कर्म का, भाषा और संस्कृति का, निर्गुण और सगुण का, आदर्श और व्यवहार का समन्वय देखने को मिलता है।
- तुलसीदास के "चित्रकूट मिलन" प्रसंग में श्रीराम, भरत जी, मुनि वशिष्ठ का चरित्र चित्रण बड़ी कुशलता से किया गया है। भाषा सरल, सुबोध और माधुर्य गुणयुक्त है।

7.4 शब्दकोश (Keywords)

किंवदन्ती: अफवाह, लोकापवाद।

अक्षय कीर्ति: कभी न नष्ट होने वाली ख्याति।

7.5 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. लोकनायक गोस्वामी तुलसीदास जी के जीवन का परिचय देते हुए उनके काव्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. महाकवि तुलसीदास का साहित्यिक परिचय दीजिए।
3. महाकवि तुलसीदास का हिन्दी साहित्य में स्थान निर्धारित कीजिए।
4. तुलसीदास जी के "चित्रकूट मिलन" प्रसंग के काव्य सौंदर्य पर प्रकाश डालिए।
5. तुलसीदास की भक्ति भावना और समन्वयवादिता पर टिप्पणी करें।

उत्तर: स्व:मूल्यांकन

- | | |
|------------|---|
| 1. 1589 | 2. रामचरित मानस, कवितावली, विनय पत्रिका |
| 3. श्रीराम | 4. दैन्य |

7.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



कवितावली – गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस गोरखपुर।

गोस्वामी तुलसीदास – रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी बुक सेंटर, दिल्ली।

इकाई 8: कृष्ण काव्य के प्रमुख कवि: सूरदास और उनका काव्य

अनुक्रमणिका (CONTENTS)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

8.1 कृष्ण काव्य के प्रमुख कवि सूरदास

8.1.1 कवि सूरदास का जीवनवृत्त और रचनाएँ

8.1.2 कवि सूरदास की काव्यगत विशेषताएँ

8.1.3 कवि सूरदास की काव्यभाषा

8.2 सारांश (Summary)

8.3 शब्दकोश (Keywords)

8.4 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

8.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी:

- कृष्ण काव्यधारा के प्रमुख कवि सूरदास के जीवनवृत्त से परिचित होंगे।
- कवि सूरदास की काव्यगत विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- कवि सूरदास की काव्यभाषा और प्रमुख रचनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय धर्म-साधना, संस्कृति, साहित्य तथा कला कृष्ण के विलक्षण व्यक्तित्व से जिस रूप में प्रभावित हैं उतनी वे किसी अन्य चरित से नहीं। ईसा की पंद्रहवीं शताब्दी में 'जितना गहरा और लोकव्यापी प्रभाव कृष्ण आख्यान का पड़ा उतना पहले कभी नहीं था। हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की सगुण भक्तिधारा की कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख कवि सूरदास का स्थान मूर्द्धन्य है।

8.1 कृष्ण काव्य के प्रमुख कवि सूरदास

हिन्दी साहित्याकाश के सूर्य कवि सूरदास में भक्ति, काव्य और संगीत का एक अभूतपूर्व समन्वय था। हिन्दी में कृष्ण काव्य का बहुत कुछ श्रेय श्री वल्लभाचार्य को है क्योंकि इन्हीं के चलाए हुए पुष्टिमार्ग

में दीक्षित होकर सूरदास आदि कवियों ने अत्यंत मूल्यवान कृष्ण साहित्य की रचना की। वल्लभ संप्रदाय के अतर्गत अष्टछाप के सूरदास सहित आठ कवियों की मंडली अष्टसखा के नाम से अभिहित की जाती है। अष्टछाप के सभी कवि भगवान कृष्ण की नैमित्तिक लीलाओं से सम्बद्ध पदों की रचना करते थे। कवित्व की सबसे ऊँची वस्तु है तन्मयता और तल्लीनता। कवित्व का यह गुण कवि सूरदास के काव्य में अपनी चरम सीमा पर पहुँचा हुआ दिखाई दिया है।



Did u know? अष्टछाप में महाप्रभु बल्लभ के पाँच प्रसिद्ध शिष्य थे— कुम्भनदास, परमानन्द दास, सूरदास, कृष्णदास अधिकारी और गुसाई विट्ठलनाथ।

8.1.1 कवि सूरदास का जीवनवृत्त और रचनाएँ

हिंदी साहित्य में कृष्णभक्ति की अजस्र धारा को प्रवाहित करने वाले भक्त कवियों में सूरदास का स्थान मूर्द्धन्य है। उनका जीवनवृत्त उनकी अपनी कृतियों से आंशिक रूप में और बाह्य साक्ष्य के आधार पर अधिक उपलब्ध होता है। इसके लिए भक्तमाल चौरासी वैष्णव की वार्ता वल्लभदिग्विजय तथा निजवार्ता का आधार लिया जाता है। अधिकांश विद्वानों ने सीही गांव को ही सूरदास का जन्म-स्थान माना है। वे चन्द्रसरोवर के समीप पारसोली गांव में रहने लगे थे।

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की सगुण भक्ति-धारा की कृष्ण भक्ति-शाखा के प्रमुख कवि सूरदास जी के जीवनवृत्त के संबंध में बहुत कम ज्ञात हो सका है। इनकी रचनाओं में मिलने वाले पद तथा जनश्रुतियों के आधार पर इनके जीवन के विषय में अनुमान ही लगाया जा सकता है। महाप्रभु वल्लभाचार्य के पौत्र गोकुलनाथकृत चौरासी वैष्णव की वार्ता तथा सूरदास की रचना 'सूर सारावली' और 'साहित्य लहरी' के आधार पर आचार्य शुक्ल ने सूरदास जी का जन्म सम्वत् 1540 और मृत्यु 1620 के आसपास माना है। पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने सूरदास की रचनाओं वाले आधार को अपने प्रखर तर्कों और तथ्यों से ध्वस्त कर दिया है। किन्तु 'चौरासी', 'वैष्णव की वार्ता' की सूचनाओं पर विश्वास किया जा सकता है। कुछ विद्वानों ने 'आइने-अकबरी' और 'भक्तकाल' के आधार पर सूरदास जी का जन्म 1535-40 के बीच माना है। श्री हरिरायकृत भाव के अनुसार सूरदास जी का जन्म दिल्ली में सूही नामक गांव में हुआ था।

सूरदास जी के माता-पिता के संबंध में भी कुछ निश्चय से नहीं कहा जा सकता। इनके विवाहित होने अथवा अंधे होने में भी विद्वानों में मतभेद हैं।

सूरदास आगरा-मथुरा के बीच गऊ घाट पर रहते थे। यही इनकी भेंट महाप्रभु वल्लभाचार्य जी से हुई। महाप्रभु को इन्होंने एक विनय का पदगार सुनाया जिससे प्रसन्न हो आपने इन्हें अपना शिष्य बना लिया तथा श्रीनाथ जी मंदिर में कीर्तन सेवा का भार सौंपा। शायद इसी कारण श्री अमृत लाल सागर जी ने सूरदास जी की जीवनी पर आधारित उपन्यास का नाम 'खंजन नयन' रखा है।

सूरदास की शिक्षा आदि के विषय में किसी ग्रंथ में कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता। केवल इतना ही हरिराय जी ने लिखा है कि वे गांव से चार कोस दूर रहकर पद-रचना में लीन रहते थे और गान-विद्या में प्रवीण थे। भक्त-मण्डली उनके पद सुनने एकत्र हो जाती थी। उनके पद विनय और दैन्य भाव के होते थे, किन्तु श्री वल्लभाचार्य के सम्पर्क में आने पर उन्हीं की प्रेरणा से सूरदास ने दास्य भाव और विनय के पद लिखना बन्द कर दिया तथा सख्य, वात्सल्य और माधुर्य-भाव की पद-रचना करने लगे। डॉ० दीनदयाल गुप्त ने उनके द्वारा रचित पच्चीस पुस्तकों की सूचना दी है जिनमें 'सूरसागर',

Notes

‘सूरसारावली’, ‘साहित्यलहरी’, ‘सूरपचीसी’, ‘सूररामायण’, ‘सूरसाठी’ और ‘राधारसकेलि’ प्रकाशित हो चुकी हैं। वस्तुतः ‘सूरसागर’ और ‘साहित्यलहरी’ ही उनकी श्रेष्ठ कृतियाँ हैं। ‘सूरसारावली’ को अनेक विद्वान अप्रामाणिक मानते हैं, किन्तु ऐसे विद्वान भी हैं जो इसे ‘सूरसागर’ का सार अथवा उसकी विषय-सूची मानकर इसकी प्रामाणिकता के पक्ष में हैं। ‘सूरसागर’ की रचना ‘भागवत’ की पद्धति पर द्वादश स्कन्धों में हुई है। ‘साहित्यलहरी’ सूरदास के सुप्रसिद्ध दृष्टकूट-पदों का संग्रह है। इसमें अर्थगोपन-शैली में राधा-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है, साथ ही अलंकार-निरूपण की दृष्टि से भी इस ग्रन्थ का महत्त्व है।



Notes

सूरदास की प्रमुख रचनाएँ ‘सूरसागर’, ‘सूरसारावली’, ‘साहित्य लहरी’ और ‘सूरसाठी’ हैं।

सूर-काव्य का मुख्य विषय कृष्णभक्ति है। ‘भागवत’ पुराण को उपजीव्य मानकर उन्होंने राधा-कृष्ण की अनेक लीलाओं का वर्णन ‘सूरसागर’ में किया है। ‘भागवत’ के द्वादश स्कन्धों से अनुरूपता के कारण कुछ विद्वान् इसे ‘भागवत’ का अनुवाद समझने की भूल कर बैठते हैं, किन्तु वस्तुतः सूर के पदों का क्रम स्वतंत्र है। वैसे, उनके मन में ‘भागवत’ पुराण की पूर्ण प्रतिष्ठा है। उन्होंने कृष्ण-चरित्र के उन भावात्मक स्थलों को चुना है जिनमें उनकी अन्तरात्मा की गहरी अनुभूति पैठ सकी है। उन्होंने श्रीकृष्ण के शैशव और किशोरवय की विविध लीलाओं का चयन किया है। सूर की दृष्टि कृष्ण के लोकरंजक रूप पर ही अधिक रही है, उनके द्वारा दुष्ट-दलन आदि का वर्णन सामान्य रूप से ही किया गया है। लीला-वर्णन में कवि का ध्यान मुख्यतः भाव-चित्रण पर रहा है। विनय और दैन्य-प्रदर्शन के प्रसंग में जो पद सूर ने लिखे हैं, उनमें भी उच्च कोटि के भावों का समावेश है।

सूर के भाव-चित्रण में वात्सल्य-भाव को श्रेष्ठतम कहा जाता है। बाल-भाव और वात्सल्य से सने मातृहृदय के प्रेम-भाव के चित्रण में सूर अपना सानी नहीं रखते। बालक की विविध चेष्टाओं और विनोदों के क्रीड़ास्थल मातृहृदय की अभिलाषाओं, उत्कण्ठाओं और भावनाओं के वर्णन में सूरदास हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि ठहरते हैं। वात्सल्य-भाव के पदों की विशेषता यह है कि उनको पढ़कर पाठक जीवन की नीरस और जटिल समस्याओं को भूलकर उनमें मग्न हो जाता है। दूसरी ओर भक्ति के साथ श्रृंगार को जोड़कर उसके संयोग एवं वियोग पक्षों का जैसा मार्मिक वर्णन सूर ने किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। प्रवास-जनित वियोग के संदर्भ में भ्रमरगीत-प्रसंग तो सूर की काव्य-कला का उत्कृष्ट निदर्शन है। इस अन्योक्ति एवं उपालम्भ-काव्य में गोपी-उद्धव-संवाद को पढ़कर सूर की प्रतिभा और मेधा का परिचय प्राप्त होता है। सूरदास के भ्रमरगीत में केवल दार्शनिकता और आध्यात्मिक मार्ग का ही उल्लेख नहीं है, वरन् उसमें काव्य के सभी श्रेष्ठ उपकरण उपलब्ध होते हैं। सगुण भक्ति का ऐसा सबल प्रतिपादन अन्यत्र देखने में नहीं आता। इस प्रकार सूर-काव्य में प्रकृति-सौन्दर्य, जीवन के विविध पक्षों, बालचरित्र के विविध प्रसंगों, क्रीड़ाओं, गोचारण, रास आदि का वर्णन प्रचुर मात्रा में मिलता है। रूप-चित्रण के लिए नखशिख-वर्णन को सूर ने अनेक बार स्वीकार किया है।

8.1.2 कवि सूरदास की काव्यगत विशेषताएँ

सूरदास जी भक्तिकालीन सगुण भक्ति धारा की कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख कवि हैं। इनके उच्चकोटि के भक्त होने का यह प्रमाण है कि गोसाईं विट्ठलनाथ ने इन्हें ‘अष्टछाप’ भक्तों के मूर्धन्य स्थान पर रखा था।

उनके काव्य का अध्ययन करने पर हमें निम्नलिखित विशेषताएँ देखने को मिलती हैं—

1. **भक्ति-भावना:** सूरदास सगुण के उपासक थे। विशेषकर भगवान् विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण को अपना इष्ट मानते थे। ऐसा बल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होने का प्रभाव था। महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित शुद्धाद्वैत दर्शन में भक्ति का मेरूदंड 'पुष्टि' बताई गई है। इसी से सामीप्य मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है।

सूरदास सगुण भक्त थे तथा निर्गुण के प्रति उदासीन। वे कहते हैं—

रूप रेख मुनजाति जुगति बिनु निरालम्ब कित धावै।

सब विधि अगम विचारहिं ताते 'सूर' सगुण पद गावै॥

सूरदास अपनी दीनता प्रभु के आगे विनीत भाव से प्रकट करते हुए कहते हैं—

प्रभु हौं सब पतितनि कौ टीकौ।

मोहि छाड़ि तुम और उधारे, मिटे सूल क्यों जी कौ।

कोऊ न समरथ अध करिवैं को, खेचि कहत हो लीकौ।

आत्मनिवेदन करते हुए सूर प्रभु कहते हैं कि हे प्रभु आप जैसे रखेंगे हम वैसे ही रहेंगे।

आप तो सबके हृदय की बात जानते हैं। अतः मुख से क्या कहूँ—

जैसेहि राखु तैसेहि रहिहौं

जानत हो दुख-सुख सब जन को मुख करि कहा कहौं॥

2. **सख्यभाव:** सूरदास जी ने प्रमुख रूप से सख्य, वात्सल्य और मधुरा भक्ति को प्रकट करने वाले पद लिखे हैं। सूरदास आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध पति-पत्नी का सम्बन्ध नहीं बल्कि सखी-सखा का सम्बन्ध मानते हैं। दो मित्रों में जैसा खुलापन होता है। ऐसा सूरदास अपने प्रभु से खुलापन रखते हैं। इसलिए भगवान को गोपियों के मुख से खरी-खोटी कहलाने में नहीं चूके। प्रेमाधिक्य में खरा-खोटा कहना स्वाभाविक ही है। सूरदास का 'भ्रमरगीत' तो है ही उपालम्भ साहित्य का एक रूप। गोपियाँ उपालम्भ देती हुई कहती हैं—

हरि काहे के अन्तर्जामी?

जो हरि मिलत नहीं यही औसर, अवधी बतावत लायी।



Task

सूरदास की रचनाओं में भक्ति भावना और सख्य भाव पर अपने विचार प्रकट करें।

डॉ० हरिवंश लाल शर्मा कहते हैं— सूरदास के सखा भाव में विशेषताएँ हैं कि उसमें एक ओर तो मनोविज्ञान रूप से मानवीय सम्बन्धों का निर्वाह किया गया है और दूसरी ओर उसमें भक्ति-भाव की पूर्ण तल्लीनता और भावात्मकता की अनुभूति है।

3. **वात्सल्य वर्णन:** सूर के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता वात्सल्य वर्णन जो बेजोड़ होने के साथ अत्यंत स्वाभाविक भी है। इस रस का कोई भी रूप, भाव इनकी लेखनी से अछूता नहीं रह पाया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ठीक ही कहते हैं कि 'सूरदास' वात्सल्य रस का कोना-कोना झांक आये हैं।

Notes

सूरदास ने वात्सल्य भाव की भक्ति का, जो निष्काम और इन्द्रिय सुख की कामना से रहित होती है, माता यशोदा के माध्यम से ऐसा सरल, स्वाभाविक और हृदयग्राही चित्र खींचा है कि आश्चर्य होता है। श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं और गोचारण लीलाओं के कुछ उदाहरण यहाँ हैं—

कर पग गहि अंगूठा मुख मेलत

प्रभु पौढ़े पालने अकेले हरषि-हरषि अपने रंग।

जसोदा दुलराई मल्हावैं; जोई-सोई कुछ गावैं

मेरे लाल को आउ निदरिया काह न आनि सुवावै।

हमारा विश्वास है कि संसार के किसी भी भाषा के साहित्य में ऐसी बाल लीलाओं का वर्णन नहीं मिलेगा। श्रीकृष्ण की बाल चेष्टाओं के चित्रण में सूरदास ने कमाल की होशियारी और सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय दिया है।

4. **श्रृंगार वर्णन:** सूर के काव्य में श्रृंगार रस का चित्रण भी खूब बेजोड़ है। श्रृंगार भावना को भक्ति-भावना से अनुरजित कर वास्तव में सूर ने उसे भक्ति का उज्ज्वल रस ही बना दिया है। सूरदास ने श्रृंगार रस का चित्रण राधा तथा गोपियों के प्रेम के रूप में किया है। बचपन में साथ-साथ खेलने वाले सखा-सखियाँ यौवन प्रिय बन गये गोपियों का प्रेम लरिकाई का प्रेम सो कैसे छूट सकता है। उन्हें तो कृष्ण के सिवा और कुछ अच्छा नहीं लगता।



Caution निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि सूर का काव्य अपने लोकरंजक रूप के कारण, अपनी भक्ति-भावना के कारण, श्रृंगार के कारण इतना श्रेष्ठ है कि किसी कवि को यह कहना पड़ा कि—

सूर सूर तुलसी ससि उडुगन केशवदास

अब के कवि खद्योत सम, जहं तहं करत प्रकास

8.1.3 कवि सूरदास की काव्यभाषा

सूरदास की काव्यभाषा पर विचार करने के लिए अग्रसर होते ही इस तथ्य पर ध्यान चला ही जाता है कि वे काव्यभाषा के दो विधातक तत्वों विचार और इतिवृत्त से बहुत दूर तक बचे हुए हैं। क्योंकि उनकी समग्र रचनाएँ मुक्तक हैं।

काव्यभाषा के शब्दों के सम्बन्ध में ध्यातव्य है कि जिस प्रकार प्रत्येक युग की एक विचारधारा होती है। उसी प्रकार प्रत्येक युग में कवि के लिए उससे सर्वथा मुक्त हो पाना दुस्साध्य होता है। वस्तुतः कृष्णभक्ति-काव्यधारा के कवियों में कविगत भाषिक अंतर है। यत्किंचित् अंतर दिखलायी पड़ता है। वह वैयक्तिक वैशिष्ट्य है क्योंकि व्यक्ति-व्यक्ति की भाषा प्रयोग की एक अपनी आदत होती है।



Notes प्रचलित शब्दावली से भिन्न हटकर कवित्व-सृष्टि का प्रयास किसी कृष्णभक्त कवि में नहीं है और सूरदास के साथ भी वही बात है।

सूरदास की काव्यभाषा अपनी संपूर्ण मान-महत्व यथार्थ स्वरूप और समग्र निर्माण प्रक्रिया प्रदर्शित कर रही है। भाषा का पूरा उपयोग यदि कहीं होता है तो वह काव्य में ही होता है। भाषा के किसी अंश को काव्य व्यर्थ नहीं जाने देता है। वर्ण, शब्द, मुहावरा, वाक्य, विरामचिह्न आदि अपने अंग-अंग से भाषा काव्य का रूप ग्रहण करते हैं। सूरदास ने भी भाषा के प्रत्येक अवयव का कवित्व-सृष्टि के लिए उपयोग किया। सामान्य भाषा को किस प्रकार काव्यभाषा के स्तर तक उन्नत किया जाता है। यह रहस्य सूरदास अच्छी तरह जानते थे। सूरदास के शब्द भंडार का दूसरा बड़ा स्रोत ग्रामभाषा है। उनकी शब्दावली की मूलभूति तद्भव शब्दों की है और उसको संस्कृत, ग्राम और अन्य भाषाओं के शब्दों से सजाया गया है। काव्यभाषा पर विचार करने के लिए अग्रसर होते ही इस तथ्य पर ध्यान चला जाता है कि वे काव्यभाषा के दो विधातक तत्वों विचारों और इतिवृत्त से बहुत दूर तक बचे हुए हैं। क्योंकि उनकी समग्र रचनाएँ मुक्तक हैं। काव्यभाषा के इन विधातक तत्वों से प्रबंधकाव्य में पग-पग पर सामना होता है और समर्थ कवि भी कुछ स्थलों पर इनसे पराजित हो ही जाते हैं। अतः सूरदास की काव्यभाषा के संबंध में पहली बात यही है कि वर्णनात्मक कथात्मक कविताओं को छोड़कर सामान्यतया उसमें केवल विधायक ही विधा तत्व है।

काव्यभाषा के शब्दों के संबंध में ध्यातव्य है कि जिस प्रकार प्रत्येक युग की एक विचारधारा होती है उसी प्रकार प्रत्येक युग की एक शब्दावली भी होती है। सूरदास की शब्द-क्रीड़ा देखी ही जाती है। अन्यत्र भी वे एक ही पद में किसी शब्द को बार-बार लाकर इसमें प्रकृति का परिचय देते हैं। एक उदाहरण इस प्रकार है—

देखि सखी सुंदर बन स्यामा॥

सुंदर मुकुट, कुटिल कच सुंदर, सुंदर लाल तिलक छवि-धामा॥

सुंदर-भव, सुंदर अति लोचन, सुंदर अवलोकनि-बिस्रामा॥

अति सुंदर कुंडल स्रवननि बर, सुंदर झलकित रीझत कामा॥

उनका शब्द-भंडार भी विस्तृत ही है। उनके बृहत शब्द भंडार का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि एक व्यापार के लिए अनेक पर्यायों का प्रयोग उन्होंने किया। सूरदास के शब्द-भंडार का दूसरा बड़ा स्रोत ग्राम-भाषा है। दीर्घकाल तक किसी भाषा में साहित्य रचना होने से उस भाषा के दो रूप हो जाते हैं। सूरदास ने ब्रजभाषेत्तर अनेक देशी-विदेशी भाषाओं से अपना शब्द-भंडार भरा है। विदेशी भाषाओं में अरबी-फारसी के शब्द सूरदास के काव्य में मिलते हैं।

स्व:मूल्यांकन

निम्न कथनों में सत्य/असत्य बताएं:

1. भक्तिकाल की निर्गुण धारा के राम भक्ति शाखा के प्रमुख कवि सूरदास थे।
2. सूरदास जी की तीन प्रमुख रचनाएँ सूरसागर, सूरसारावली तथा साहित्य लहरी हैं।
3. सूरदास को वात्सल्य और श्रृंगार रस का सम्राट कहा जाता है।
4. 'निर्गुण कौन देस को वासी' भ्रमरगीत का प्रसिद्ध पद है।

Notes

8.2 सारांश (Summary)

- हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की सगुण भक्ति धारा में कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख कवि सूरदास हैं। कृष्ण काव्य का बहुत कुछ श्रेय श्री वल्लभाचार्य को है। इसी वल्लभ संप्रदाय के अंतर्गत अष्टछाप के कवि सूरदास में भक्ति, काव्य और संगीत का अमूल्य समन्वय था।
- सूरदास के जीवनवृत्त के लिए वहिसाक्ष्य के रूप में भक्त माल (नाभादास), चौरासी वैष्णवन की वार्ता को आधार बनाया गया है। उनके अनुसार वे दिल्ली के निकट 'सीही' के सारस्वत ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे। वे महाप्रभु बल्लभाचार्य के शिष्य थे। उनका जन्म 1478 ई० तथा निधन 1583 ई० माना जाता है।
- सूरदास की तीन रचनाएँ प्रसिद्ध हैं— 'सूरसागर', 'सूरसारावली' और 'साहित्य लहरी'। सूरसागर की कथा भागवत पुराण के दशम स्कंध से ली गई है। साहित्य लहरी में सूरदास के दृष्टकूट पद संकलित हैं।
- सूरदास ब्रजभाषा के सशक्त कवि हैं उनकी रचनाएँ इतनी प्रगल्भ और काव्यपूर्ण हैं कि आगे होने वाले कवियों की श्रृंगार और वात्सल्य संबंधी उक्तियाँ सूरदास की जूठी सी जान पड़ती हैं।
- श्रृंगार और वात्सल्य के क्षेत्र में इनकी दृष्टि जहाँ तक पहुँची वहाँ तक किसी कवि की नहीं। सूरदास की भक्ति पद्धति का मेरूदंड पुष्टिमार्ग ही है।

8.3 शब्दकोश (Keywords)

प्रतिनिधि: प्रमुख, अग्रणी।

संस्थापक: बुनियाद रखने वाला।

8.4 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. कृष्ण भक्ति धारा के प्रमुख कवि सूरदास का साहित्यिक परिचय दें।
2. सूरदास का संक्षिप्त जीवन परिचय देते हुए उनके काव्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालें।
3. सूरदास के काव्य में प्रकृति-चित्रण और कलापक्ष पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
4. आचार्य शुक्ल के कथन, "सूरदास के भ्रमरगीत जैसा सुन्दर उपालभ्य काव्य दूसरा नहीं मिलता।" पर विचार प्रकट करते हुए सूर के भ्रमरगीत पर टिप्पणी करें।

उत्तर: स्व:मूल्यांकन

- | | |
|----------|---------|
| 1. असत्य | 2. सत्य |
| 3. सत्य | 4. सत्य |

8.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

Notes



हिन्दी साहित्य का इतिहास – द्विवेदी हजारी प्रसाद, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्।

हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ० नगेन्द्र, मयूर पेपरवैक्स, नोएडा।

हिन्दी साहित्य का इतिहास – टंडन डॉ० कपूर चंद, जगताराम एंड संस प्रकाशन।

हिन्दी-साहित्य भाषिक परिदृश्य – तिवारी डॉ० सियाराम, यश पब्लिकेशन्स।

इकाई 9: भक्तिकाल स्वर्ण युग के रूप में

अनुक्रमणिका (CONTENTS)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

9.1 भक्तिकाल स्वर्ण युग के रूप में

9.1.1 भक्तिकाल – स्वर्ण युग कहलाने के कारण

9.2 सारांश (Summary)

9.3 शब्दकोश (Keywords)

9.4 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

9.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी:

- भक्तिकाल को स्वर्ण युग के रूप में जानेंगे।
- भक्तिकाल की विशेषताएँ जानेंगे।

प्रस्तावना (Introduction)

भक्तिकाल साहित्य गुणवत्ता, भावप्रवणता परिणाम दृष्टियों से अतीत महनीय रहा है। समस्त मानवीय बाङमय में यह एक अपनी कोटि का ही साहित्य है। इसमें हृदय, मन, आत्मा को तृप्त करने की अपार शक्ति है। इस काल का साहित्य कविता सम्बन्धी दृष्टिकोण काव्य सौष्ठव, भावपक्ष और कलापक्ष, भिन्न-भिन्न काव्य रूप भारतीय संस्कृति और सभ्यता, संगीत, मनोरंजन, लोकमता और भाषा सभी दृष्टियों में सर्वोत्तम माना जाता है। इस काल की विभिन्न विशेषताओं का अवलोकन करने के लिए इसे स्वर्ण काल की संज्ञा दी है।

9.1 भक्तिकाल स्वर्ण युग के रूप में

जिस काल में कबीर, जायसी, तुलसी, सूर जैसे रससिद्ध कवियों और महात्माओं की दिव्य वाणी उनके अन्तःकरण से निकलकर देश के कोने-कोने में फैली थी उसे साहित्य के इतिहास में सामान्यतः भक्ति युग कहते हैं। निश्चित ही यह हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग था। यह साहित्य एकदम अनुपम और विलक्षण है।

9.1.1 भक्तिकाल – स्वर्ण युग कहलाने के कारण

भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग हम निम्न कारणों से मान सकते हैं:

1. **काव्य संबंधी दृष्टिकोण:** भक्ति काव्य के साहित्यकार का कविता संबंधी दृष्टिकोण अत्यंत उदार है। उन्होंने अपनी वाणी का उपयोग प्राकृत जन-गुणगान में नहीं किया। इनका काव्य आदिकाल और रीतिकाल के कवि के समान राज्याश्रय में पल्लवित एवं पुष्पित नहीं हुआ बल्कि आत्म प्रेरणात्मक है। यह स्वामिनः सुखाय न होकर सवान्तः सुखाय अथवा सर्वान्त सुखाय सिद्ध हुआ। भक्तिकाल के कलाकार का न तो सीकरी से कोई सरोकार था और न ही किसी नरेश की फरमाईश की परवाह। उसका साहित्य निश्छल आत्माभिव्यक्ति है। जिससे सत्य, उल्लास, आनन्द और युग निर्माणकारी प्रेरणा है।



Did u know? भक्तिकाल साहित्य कविता सम्बन्धी दृष्टिकोण, काव्य सौष्ठव, भाव पक्ष और कलापक्ष, संगीत, भारतीय संस्कृति, सभ्यता, भिन्न-भिन्न काव्य रूपों, मनोरंजन भाषा आदि सभी दृष्टियों से सर्वोत्तम है।

2. **भावपक्ष और कलापक्ष का समन्वय:** भक्तिकाल में मर्त्य और अमर्त्य लोक का एक सुखद संयोग है। उसमें भावपक्ष और कलापक्ष परस्पर इतने घुलमिल गये हैं कि उन्हें पृथक् करना सहज व्यापार नहीं है। भक्ति काव्य का अनुभूति पक्ष और अभिव्यक्ति पक्ष संतुलित शक्ति और परस्पर पोषक है। कविता से तुलसी की शोभा नहीं बढ़ी प्रत्युत तुलसी के द्वारा कविता महिमा संपन्न हुई है। सूर का काव्य भक्ति, कविता और संगीत सुन्दर त्रिवेणी है। कबीर, जायसी, मीरा, रसखान, हितहरिवंश, नन्द दास और नानक की कला कृतियों पर हिन्दी साहित्य विश्व साहित्य के सम्मुख गर्व कर सकता है। भक्ति का काव्य विश्वजनीन एवं शाश्वत काव्य है। अतः प्रायः उसमें आत्मा की सहज स्फूर्ति और प्राणों के स्पन्दन का अभाव है। उसमें यह व्यापकता नहीं कि जो भक्तिकाव्य में उपलब्ध होती है। ऐसी स्थिति में भावपक्ष और कलापक्ष के विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ कहना कठिन है कि आदिकाल का साहित्य प्रामाणिक होने की दशा में भी भक्तिकाव्य की प्रतिद्वन्द्विता में खड़ा नहीं हो सकता।
3. **भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का परिचायक:** भारतीय धर्म, दर्शन और सभ्यता आचार और विचार सभी कुछ भक्ति काव्य के सुदृढ़ एवं सुंदर कलेवर में सुरक्षित हैं। जैसे राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस की स्वतंत्रता प्राप्ति के निमित्त किए आन्दोलन का सही इतिहास जानने के लिए मुंशी प्रेमचन्द के साहित्य का अध्ययन आवश्यक है। उसी प्रकार मध्यकालीन भारतीय संस्कृति के सम्यक अवबोध के लिए भक्ति काव्य का अवलोकन अनिवार्य है। आधुनिक भारतीय धर्म और संस्कृति तुलसी निमित्त है। तुलसी का मानस नाना पुराण निगमागम का सार है। भक्तिकाल का समस्त साहित्य समन्वय की विराट चेष्टा है। आदिकाल के साहित्य में युग-पुरुषों का चित्रण इतना अतिरंजनापूर्ण है कि वे इतिहास के व्यक्ति न रहकर कोरे काव्यगत पात्र रह गये। रीतिकाल के काव्य कवि ने राधाकृष्ण का स्मरण किया किन्तु राधाकृष्ण साधारण नायिका और नायक से ऊपर नहीं उठ सके। उसने राधा और कृष्ण के नाम पर मासनिक फफोले फोड़े जिससे अजस्र वासना की धारा बही। तुलसी के राम और सीता तो अलौकिक और आदर्श व्यक्ति हैं ही सूर नन्ददास आदि के कृष्ण तथा राधा भी समग्र रूप में रीतिकालीन राधा-कृष्ण के समान असंयत

Notes

नहीं हैं। वे पतित पावन बहुत अधिक हैं और लीला-विलासी बहुत कम। कुल मिलाकर भक्तिकालीन साहित्य तत्कालीन जनता का उन्नायक, प्रेरक एवं उद्धर्ता है तथा भारतीय संस्कृति और आदर्श का सशक्त उपदेष्टा है।



Task

भक्तिकाल के भाव पक्ष और कलापक्ष पर टिप्पणी करें।

4. **संगीतात्मकता:** भक्तिकाल में भाषा और भाव काव्य और संगीत का मणिकांचन योग है। काव्य में संगीतात्मकता के सन्निवेश के लिए जिस आत्मविश्वास, तीव्रानुभूति, सहज स्फूर्ति और अन्तःप्रेरणा की आवश्यकता होती है भक्त कवि में वह पर्याप्त मात्रा में थी। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में गीतिकाव्य का निर्माण पहले से हो चुका था किन्तु गीति की अवतारणा हिन्दी में सर्वप्रथम भक्ति काव्य में ही हुई जो कि परवर्ती रीतिकाल में प्रायः लुप्त हो गई। क्योंकि रीति कवि में गीत के लिए अपेक्षित आत्मविश्वासवादी आवश्यक उपकरणों की कमी थी। सूर, मीरा, तुलसी, कबीर, परमानन्ददास और नानक के पद भक्ति साहित्य-रसिक और गायक सबके हृदयों और कंठों में आज तक रहते हैं और रहेंगे। कौन है जो सूर की कविता को सुनकर झूमने नहीं लगता और दर्द दीवानी मीरा के पद को सुनकर भावविह्वल और मस्त न होता होगा।
5. **काव्यरूप:** काव्यरूपों की विविधता की दृष्टि से भी भक्तिकाल काफी समृद्ध है। इसमें प्रबन्ध काव्य, मुक्तक काव्य, सूक्ति काव्य, संगीत काव्य, गेय काव्य नाटक जीवन चरित्र, गद्य काव्य और उपदेश काव्य सभी कुछ उपलब्ध होता है। काव्यरूपों की विविधता की दृष्टि से आधुनिक काल निःसंदेह भक्तिकाल से प्रकृष्ट है पर जहाँ तक आदिकाल और रीतिकाल का प्रश्न है वे भक्तिकाव्य के सम्मुख इस दिशा में नगण्य हैं।
6. **भाषा:** अवधी और ब्रजभाषा दोनों ही भक्तिकाव्य में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँची हुई दृष्टिगोचर होती हैं। एक ओर तुलसी के द्वारा अवधी का खूब परिमार्जन हुआ तो दूसरी ओर ब्रजभाषा के अपेक्षित उसका रूप साधू था। रीतिकाल में प्रयुक्त ब्रजभाषा के साथ खिलवाड़ हुआ और शब्दों की कलाबाजी के कारण उसका रूप विकृत हो गया। आदिकाल की भाषा संक्रमण काल की भाषा है।



Notes

विचारों की उत्तमता, भावनाओं और अनुभूतियों की प्रकृष्टता, भावनाओं की मधुरता, काव्यात्मक रूपों की शैलियाँ, भाषाओं की विविधता आदि की दृष्टि से भक्तिकालीन साहित्य अतुलनीय है।

7. **लोकरक्षण और लोकरंजन:** निर्गुणवादी कबीर तथा जायसी ने अपने-अपने माध्यम से हिन्दू-मुस्लिम, धार्मिक एवं सांस्कृतिक एकता के लिए प्रयत्न किया। तुलसी के राम में शील, भक्ति, शक्ति और सौंदर्य का सुखद समन्वय है। सूर के कृष्ण में सुन्दरता की प्रधानता है। तुलसी ने जहाँ मातृप्राय हिन्दू राष्ट्र की धमनियों में नव-निर्माण के नवीन रक्त का संचार किया वहीं सूर ने जीवन में सौन्दर्य पक्ष का उद्घाटन करके जीवन के प्रति आसक्ति और आस्था को प्रतिष्ठित किया। भक्ति काव्य एक साथ हृदय, मन और आस्था की बुभुक्षा को शान्त

करता है। हृदय और मन के लिए आध्यात्मिकता आदि ये सभी वस्तुएं भक्ति काव्य में हैं। सचमुच भक्तिकाव्य मर्त्य और अमर्त्य का अनूठा सहयोग है।

भक्तिकाव्य आत्मप्रेरणा का फल है। निःसंदेह इसका सृजन 'सवान्त' सुखाय हुआ किन्तु अन्ततः यह सर्वान्तः सुखाय सिद्ध हुआ। विषयवस्तु का औदात्य तथा कलागत लावण्य इसमें इतने घुलमिल गये हैं कि उन्हें पृथक् करना सहज व्यापार नहीं। सूर के काव्य में भक्ति, गीत और कवित्व की त्रिवेणी है। रूप विधान तथा शिल्प विधान की दृष्टि से भक्ति साहित्य अप्रतिम है। भक्ति काव्य मानवता, भावनात्मकता एवं सांस्कृतिक एकता का काव्य है। इसमें हृदय, मन और आत्मा की भूख मिटाने की अपार शक्ति है। इसमें क्षेय और प्रेम का अद्भुत समन्वय है। भक्तिकाव्य हिन्दी साहित्य का एक उज्ज्वल रूप स्वर्ण युग है। उदात्त प्रतिभाओं का ऐसा समुज्ज्वल उदय तथा अमर विभूतियों का ऐसा समृद्ध उन्मेष हिन्दी के अन्य युग प्रायः अप्राप्य रहा। इस काल के प्रतिभाशाली कवियों ने काव्य जगत में जो कीर्तिमान स्थापित किए वे हिन्दी साहित्य के पूर्ववर्ती युग में प्रायः दुर्लभ रहे।



Caution

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भक्तिकालीन काव्य सर्वश्रेष्ठ काव्य है। इसमें ऐसी विशेषताएँ हैं जो हिन्दी साहित्य के किसी अन्य युग में प्राप्त नहीं होतीं। भाषा भाव लोक कल्याण भारतीय साहित्य, संस्कृति एवं सभ्यता का चित्रण, इन सभी दृष्टियों से भक्तिकालीन साहित्य उच्चकोटि का है। इस काल के कवियों ने जिस साहित्य का सृजन किया वह अपनी विशेषताओं के कारण आज भी अमर है। आचार्य द्विवेदी के शब्दों में, “समूचे भारतीय इतिहास में यह अपने ढंग का अकेला साहित्य है। इसी का नाम भक्ति साहित्य है। वह एक नई दुनिया है।”

स्व:मूल्यांकन

निम्न कथनों में सत्य/असत्य बताएं:

1. भक्तिकाल का साहित्य अनुपम और विलक्षण है।
2. भक्तिकाल में भावपक्ष और कलापक्ष का समन्वय नहीं पाया जाता।
3. सूरदास, तुलसी, मीरा, कबीर, गुरूनानक तथा परमानन्द दास का काव्य अपनी संगीतात्मकता के कारण भक्तों के हृदय को रसविभोर कर रहा है।

9.2 सारांश (Summary)

- भक्तिकाल का साहित्य अपने पूर्ववर्ती तथा परवर्ती कालों के साहित्य से निश्चित रूप से उत्तम है। भारतीय जनता भक्तिकाल के साहित्य से आशान्वित होकर सांत्वना प्राप्त करती है।
- भक्तिकाव्य जहाँ उच्चतम की व्याख्या करता है वहाँ उसमें उच्च कोटि के काव्य के भी दर्शन होते हैं। इसकी आत्मा भक्ति है उसका जीवन स्रोत रस है, उसका शरीर मानवी है।
- भक्तिकाल के काव्य का कविता संबंधी दृष्टिकोण अत्यंत उदार है। उसने अपनी वाणी का उपयोग प्राकृतजन्य गुणगान में नहीं किया। उसका साहित्य निश्चल आत्माभिव्यक्ति है, जिसमें सत्य, उल्लास, आनंद और युग निर्माणकारिणी प्रेरणा है।

Notes

- भक्ति काव्य में भावपक्ष और कलापक्ष इतने घुलमिल गये हैं कि उन्हें पृथक् करना सहज नहीं है। कबीर, जायसी, मीरा, रसखान, नन्ददास और नानक की कलाकृतियों पर हिन्दी साहित्य, विश्व साहित्य के सम्मुख गर्व कर सकता है।
- इस काल में भाषा और भाव, काव्य और संगीत का मणिकांचन योग है। काव्य रूपों की विविधता की दृष्टि से भी भक्तिकाल काफी समृद्ध है। इसमें प्रबंध काव्य, मुक्तक काव्य, संगीत काव्य, गेय काव्य, गद्य काव्य, जीवन चरित्र आदि सभी कुछ उपलब्ध होते हैं।
- भक्तिकाव्य एक साथ हृदय और आत्मा की मुमुक्षा को शांत करता है।

9.3 शब्दकोश (Keywords)

स्वर्ण युग: सुनहरा युग, उत्तम काल।

काल: युग।

9.4 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग कहा जाता है। इस विषय पर अपना मत प्रकट करें।
2. भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग किन कारणों से माना जाता है?
3. “भक्तिकाल का साहित्य पूर्ण रूप से भारतीय संस्कृति और सभ्यता का परिचायक है” इस कथन को स्पष्ट करते हुए विचार प्रकट करें।
4. निम्न पर टिप्पणी करें:
 - (क) भाव और कला पक्ष का समन्वय
 - (ख) भाषा
 - (ग) संगीतात्मकता

उत्तर: स्व:मूल्यांकन

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य

9.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



हिन्दी साहित्य का इतिहास — नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली।

हिन्दी साहित्य का इतिहास — कपूर श्यामचंद्र, प्रभात प्रकाशन।

हिन्दी साहित्य का इतिहास — शुक्ल आचार्य रामचंद्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास — त्रिपाठी विश्वनाथ, आरिएंट ब्लैक स्वान पब्लिकेशन।

इकाई 10: मेरी सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ – जैनेन्द्र

Notes

अनुक्रमणिका (CONTENTS)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

10.1 मेरी सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ

10.1.1 फोटोग्राफी

10.1.2 खेल

10.1.3 अपना-अपना भाग्य

10.1.4 कहानियों की व्याख्या

10.2 सारांश (Summary)

10.3 शब्दकोश (Keywords)

10.4 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

10.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी:

- जैनेन्द्र जी की सर्वश्रेष्ठ कहानियों की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- जैनेन्द्र की कहानियों 'फोटोग्राफी', 'खेल' और 'अपना-अपना भाग्य', के कथासार एवं तात्त्विक समीक्षा का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

प्रस्तावना (Introduction)

जैनेन्द्र व्यक्तिवादी साहित्यकार हैं। समाज की समस्याओं को ही आधार बनाकर साहित्य सृजन किया है। उन्होंने मनोविज्ञान द्वारा व्यक्ति के आंतरिक सृजन को समझने की चेष्टा की है। व्यक्ति का समग्र रूप उनकी कहानियों में मिलता है। जैनेन्द्र के अनुसार व्यक्ति में राग, द्वेष, प्रेम और घृणा आदि मानवीय भावनाओं का होना स्वाभाविक है। इन सभी की सत्यता हमें जैनेन्द्र की कहानियों में मिलती है।

10.1 मेरी सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ

कहानी के सम्बन्ध में अपना मत अभिव्यक्त करते हुए जैनेन्द्र ने लिखा है— कहानी इतिवृत्त ही तो है। यानी उसमें स्थिति से स्थित्यन्तर अर्थात् जीवनगति होनी चाहिए। काल का कुछ स्पंदन, कुछ तनाव अनुभव हो, वही तो कहानी का रस है। जैनेन्द्र स्थिति और गति के द्वंद में कहानी की सार्थकता मानते

Notes

हैं। उनकी कहानियों में मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक विचार मिलते हैं। जीवन के शाश्वत सत्यों ईश्वर, जीव, जन्म, मृत्यु आदि के संबंध में आत्मानुभूति सत्य को जैनेन्द्र की कहानियों में उद्धारित किया गया है।

10.1.1 फोटोग्राफी

कथासार

रामेश्वर बेफिक्र लेकिन भला युवक था। उसकी आयु भी करीब 23 वर्ष की थी। यों तो उसने बी.ए. पास कर लिया था लेकिन इसके बाद भी उसे मनोनुकूल नौकरी नहीं मिल पाई थी। इसलिए उसका जेब खर्च भी उसकी माँ को ही चलाना पड़ता था। उसकी प्रवृत्ति भी कुछ इस प्रकार की हो चली थी कि कमाना न पड़े और रुपए का अभाव भी न हो। इसलिए वह किसी न किसी तरीके से माँ से रुपए लेने की सोचता रहता। जब भी खर्च के लिए रुपए मिलने में मुश्किल आती, वह मन ही मन ठान लेता कि अब मैं कोई न कोई काम करूंगा, कल से ही पर सुबह होते होते ही वह कोई और नई योजना बनाने लगता। खर्च के लिए रुपए मिलने में कुछ हीला हवाला होते ही, वह अपने को बड़ा कोसता था, बड़ा धिक्कारता था, मन ही मन प्रतिज्ञा करता था कि कल से ही किसी काम में लग जाऊंगा, और माँ से अनुनय करने पर या लड़-झगड़ कर जब रुपया मिल जाता था, तब भी वह प्रतिज्ञा को भूलता नहीं था, पर जब अगला सवेरा होता, तो फिर कोई सरल सी जुगत ढूँढ़ने की फिक्र में लग जाता। रामेश्वर बस मस्त-मौला था, वैसे चाल-चलन ठीक था। आखिरकार वह फोटोग्राफी को अपनी जीविका का साधन मान लेता है।

रामेश्वर साधारण लोगों के बीच घूमता है। इसलिए चित्र भी साधारण लोगों के ही बनाता है। जैसे चांदनी चौक में किसी जाट का सोडावाटर पीते हुए व्यक्ति का चित्र बना देना।

एक बार वह दिल्ली से अलीगढ़ गया। अपने साथ छह प्लेटें भी ले गया। और वहाँ पहुँचते ही छह-की-छह खींच डालीं। चार प्लेटें तो बैग में रख लीं और दो स्लाइड में ही रहने दीं। हालाँकि बच्चों को उसने सख्त हिदायत दी थी कि वह इन प्लेटों के साथ किसी तरह की छेड़-छाड़ न करें, मगर बच्चों ने वही किया जो करना था। प्लेट का कांच निकाल लिया और तोड़-फोड़ कर ही दम लिया। “लड़के, जिन्हें प्रकृति ने परमात्मा की तरह निर्दोष बनाकर भी, उनमें ताक-झांक और तोड़-फोड़ कर उत्सुकता भरकर शैतान बनाया था, और जिन्हें रामेश्वर ने स्लाइड को हाथ न लगाने की सख्त ताकीद कर दी थी, बच्चे छेड़-छाड़ किए बिना रह न सके। भीतर क्या जादू है, यह जानने के लालच में उन्होंने स्लाइड खोल डाली, प्लेट का कांच निकाल लिया और पटककर तोड़ दिया।”



Did u know? इस कहानी में एक ही वर्ष के अन्तराल में चार मार्च, चार फरवरी और पुनः चार मार्च को एक ही परिवार के पुत्र, पति, माँ तथा पत्नी की मृत्यु होती है। इस कहानी की माँ तथा पत्नी जहर प्राशन कर आत्महत्या कर लेती है।

रामेश्वर दिल्ली आने के लिए स्टेशन पर आ गया। वह एक्सप्रेस गाड़ी के ड्योड़े दर्जे में बैठ गया। उसके सामने वाली सीट पर एक महिला अपने बच्चे के साथ बैठी थी। बच्चा केले के लिए ज़िद कर रहा था। मगर केले वाला ज्यों ही खिड़की के पास आया गाड़ी चल पड़ी। बालक को केला न मिल पाया।

वह बुरी तरह केले के लिए मचल पड़ा। बालक सुंदर था। उसके टेढ़े-मेढ़े बाल रामेश्वर के मन को भा गए। बालक की तरह उसकी माँ भी सुंदर थी। बालक को माँ हर तरह से बहलाने की कोशिश कर रही थी, मगर बालक किसी भी तरह नहीं मान रहा था। तभी रामेश्वर ने अपना कैमरा खोला और बच्चे को तमाशा दिखाने की बात कही। बच्चे के मन से केले का ख्याल आया-गया हो गया और तत्काल रामेश्वर की गोद में आकर बैठ गया।

रामेश्वर ने पूछा—“तस्वीर खिंचवाओगे?”

श्याम ने ताली बजाकर कहा—“खिंचवाएंगे।”

माँ बालक की प्रसन्नता से खिल उठी और अनायास ही बोल पड़ी, “खींच दो।”

अब रामेश्वर ने बालक को माँ के पास बेंच पर बिठाकर अपना कैमरा जमाना शुरू कर दिया। रामेश्वर ने श्याम (बालक) की माँ से पूछा “इसमें आप की भी तस्वीर आ जाती है, कुछ हर्ज तो नहीं?”

माँ ने कोई जवाब नहीं दिया। पर कपड़ों की सलवटें ठीक-ठाक कर बैठ गई। रामेश्वर ने फोकस लगाया। एक-दो तीन कहा, और फोटो खिंच गई।

रामेश्वर से अब उस महिला ने फोटो मांगी। यह देखकर रामेश्वर उलझन में फंस गया। उसके पास तो सभी भरी हुई प्लेट थीं, उसने फोटो खींची भी नहीं थी। सिर्फ बच्चे को बहलाने के लिए महज नाटक रचा था। पर महिला थी कि फोटो की मांग किए जा रही थी। रामेश्वर ने महिला को समझाया कि फोटो यों ही नहीं दी जा सकती। उसे धोना पड़ेगा। छापना पड़ेगा। लेकिन महिला का कहना था कि उसे उसकी व उसके बच्चे की फोटो लौटा दी जाए। वह उसे लाहौर में धुलवा लेगी। दोनों तर्क-वितर्क किए जा रहे थे। रामेश्वर ने कहा कि आप लाहौर में रहती हैं, मैं दिल्ली रहता हूँ। मेरा आपका पूर्व परिचय भी नहीं है। आज के बाद शायद कभी मिलना भी संभव न हो न मैं व्यवसायी फोटोग्राफर ही हूँ। आप मुझ पर पूरा विश्वास रखो, इस फोटो से आपको कोई नुकसान नहीं होगा। लेकिन महिला उसका इस तरह का कोई भी तर्क सुनने को तैयार नहीं थी। उसे तो भीतर-भीतर यही डर खाये चला जा रहा था कि कहीं यह फोटो खिंचवाने की बात अखबार या किसी और तरीके से उसके पति तक न पहुंच जाए, और उसकी भरी-पूरी गृहस्थी न बिगड़ जाए। अतः वह रामेश्वर से कहे जा रही थी। आप इस स्लाइड को तोड़ दें। जब रामेश्वर को किसी भी तरह अपना पीछा छूटते नहीं दिखाई दिया तो उसने भरी स्लाइड को खोला। उसकी प्लेट निकाल कर चलती गाड़ी से बाहर फेंक दी। महिला को अब भी रामेश्वर पर पूरा भरोसा नहीं हुआ। उसने कैमरा हाथ में लेकर उसको अच्छी तरह टटोला और तब तक वह रामेश्वर को वापस नहीं लौटाया जब तक उसे यकीन नहीं हो गया कि उसके द्वारा खींची गई फोटो के अब इसमें अवशेष तक नहीं बचे हैं।

अब श्याम व रामेश्वर एक दूसरे के संबंधी हो गए थे। उनमें मामा-भांजे का रिश्ता जुड़ चुका था। दिल्ली पहुंचते श्याम का रामेश्वर ने चुंबन लिया। और फिर स्टेशन से बाहर निकल आया। अगले दिन लाहौर तार भी कर दिया।

बात आई गई हो गई। एक लंबे अर्से तक रामेश्वर श्याम व उसकी माँ के बारे में सोचता विचारता रहा। इससे उसका जीवन क्षेत्र ही बदल गया। उसने प्रयास किया और साहित्य समालोचक व राजनैतिक बन बैठा। एक बार वह लाहौर गया। वहाँ उसे लाहौर जिला कांग्रेस की अध्यक्षता की पार्टी अधिवेशन समाप्त होने के करीब 15 मिनट बाद एक चिट्ठी मिली। चिट्ठी में लिखा था – “क्या मुझे चार बजे पार्क में मिल सकोगे – श्याम की अम्मा।”

Notes

अलीगढ़ वाले हादसे को करीब छह साल बीत चुके थे। पर उस हादसे की याद आज भी ताजा थी। कार्य व्यस्तताओं ने विस्मृति की धूल उस याद पर फेंक दी थी, वह एकदम झड़ गई। रामेश्वर चार बजे पार्क में पहुंचा। वहाँ श्याम की माँ उसका इंतजार कर रही थी। रामेश्वर से उस महिला ने पूछा— “तुम्हारा क्या नाम है?”

उसने उत्तर दिया— “रामेश्वर!”

“मैं अब नाम से पुकारूँगी।” रामेश्वर, “क्या तुम अब फोटो उतार सकते हो?”

रामेश्वर ने देखा, यह कहीं श्याम की अम्मा है। पर काफी बेचैन दिखाई दे रही है। उसे थोड़ा डर भी लगा। बोला, “अभी तो कैमरा नहीं है। अभ्यास भी नहीं है।”

“कैमरा ला नहीं सकते।”

“अभी?”

“हां, अभी।”

“अभी कहां से मिलेगा?”

“क्यों? क्यों नहीं मिलेगा? तुम तो नेता हो, इतना भी नहीं कर सकते?”

“जाता हूँ—कोशिश करूँगा।”

रामेश्वर ने कड़ा दिल करके कह दिया। रामेश्वर उस महिला से विदा होकर कुछ ही दूर गया होगा कि उसने फिर बुलाकर उसे पैसे देकर कहा— “रामेश्वर सुनो, ये रुपये लो, कैमरा न मिले, तो नया खरीद लाओ।” रामेश्वर ने पैसे लेने से इंकार कर दिया।

महिला ने रामेश्वर से कहा कि जरा जल्दी आये, रात होने पर तस्वीर नहीं खिंच पाएगी। करीब घंटे भर बाद रामेश्वर कैमरा लेकर आ गया। महिला ने श्याम का फोटो अपनी जेब से निकालते हुए रामेश्वर को दिया। और खुद हंसने की कोशिश करते हुए फोटो खिंचवाने के लिए बैठ गई। रामेश्वर ने फोकस लगाया। एक-दो-तीन कहा और फोटो खिंच गई।

उसने रामेश्वर से कहा मेरा व श्याम के फोटो एक साथ तैयार करना। उसका बड़े-से-बड़ा आकार तैयार करना। अखबार में भी छपवाना? दोस्तों को भी बांटना।

उसने फिर कहा— “जानते हो, अब श्याम कहां है! वह बहुत बड़ी गोद में बैठा है।”.... यह आकाश में परमात्मा की गोद में? श्याम उसी गोद में छिपा बैठा है। यह सुनते-सुनते रामेश्वर का गला भर आया। वह रामेश्वर को फिर बोली “जानते हो— यही चौथी मार्च का दिन था, इसी दिन इसी वक्त गया था। मैं साल भर से इसी चौथी मार्च के लिए भटक रही थी। सोच रही थी— तुम मिलोगे तो तस्वीर खिंचवाऊंगी। तुम मिल गए, तस्वीर खिंच गई अब जा रही हूँ — सदा उसी के पास रहने जा रही हूँ।”

माँ ने अंत में कहा— “सुनो, एक महीना हुआ, मैं विधवा हो गई। वह भी चौथी ही तारीख थी। चौथी तारीख मार्च का महीना। आज भी यह मार्च का दिन मेरे जीवन के अंतिम साध का अंतिम दिन है। आज मुझे भी अंतर्हित हो जाना है। मैंने जहर खाया है। अब जहर की अवधि का अंतिम क्षण दूर नहीं है। मैं फिर दुनिया में नहीं रहूँगी। देखते-देखते उसकी देह निष्प्राण होकर गिर पड़ी।”

इस घटना से रामेश्वर के जीवन का दोबारा नया सफर शुरू हुआ। उसने लेखनी व लीडरी दोनों ही छोड़ दी और दोबारा फोटोग्राफी के व्यवसाय को अपना लिया।

तात्विक समीक्षा

Notes

कथावस्तु: 'फोटोग्राफी' कहानी की कथानक के शास्त्रीय आधार पर समीक्षा नहीं की जा सकती। यों भी जैनेन्द्र की कहानियों में कथानक परंपरागत नहीं हैं। वस्तुतः उनकी कहानियों में कथानक का काम सिर्फ व्यक्ति पात्र के जीवन के एकाधिक मोड़ों को साथ जोड़ना है। इस कहानी में घटनाओं का जमघट नहीं दिखाई देता। भीड़-भाड़ भी नहीं है। घटना के वर्णन में भी कहानीकार ने रुचि नहीं ली। ऐसा लगता है, जैसे कहानीकार कहानी न सुनाकर पाठकों से बातें कर रहा हो। यों उन्होंने इस बात के समर्थन में कहीं लिखा भी है— “कहानी लिखता हूँ, तो मेरे मन में कुछ स्पष्ट नहीं होता। प्लॉट तो होता ही नहीं। सिर्फ कहानी का अंत कुछ-कुछ मन में रहता, कभी विचार बिंदु तो कभी भाव ग्रंथि के रूप में इस बिंदु तक कैसे पहुंचा जाए, बस इसमें प्लॉट-प्लॉट जो होता है, बना रहता है। इससे ज्यादा कुछ मैं नहीं जानता।” ऊपर लिखे उदाहरण से यह साफ हो जाता है कि जैनेन्द्र अपनी कहानियों में पाठकों को कथक्कड़ नहीं दिखाई देते। उनकी कहानियों में कथानक का अनावश्यक विस्तार नहीं मिलता। यह बात आलोचक कहानी में भी देखी जा सकती है। इसमें न तो लंबा-चौड़ा कथानक है न घटनाओं का अनावश्यक विस्तार। कथानक का मान हल्का-सा तंतु है। इस विषय में डॉ० निर्मल जैन ने ठीक लिखा है— “जैनेन्द्र के लिए कहानी का कहानीपन घटना में न रहकर घटना के मोड़ में निहित रहता है। इसीलिए फोटोग्राफी कहानी की घटनाओं का पहला एक बी.ए. पास, बेकार पर फोटोग्राफी के शौकीन रामेश्वर को, कार्य के अभाव में अनवरत उद्योग से साहित्य-समालोचक और फिर राजनीतिक नेता बनाता है और दूसरा मोड़ वापिस “फोटोग्राफी।”... रेल के डिब्बे में मिलने वाली एक नारी, जो श्याम की मां से अधिक कुछ नहीं और इसलिए रामेश्वर उस नारी के संदर्भ में ‘श्याम के मामा’ से अधिक कुछ नहीं हो पाता। वर्षों बाद नेता रामेश्वर को वह नारी सहसा मिलती है – पुत्र वंचिता विधवा के रूप में। इस पुनर्मिलन और उस नारी के जीवन में घटित घटनाओं में नियति और संयोग का पूरा सिलसिला मौजूद है।



Notes

‘फोटोग्राफी’ कहानी में संवेदनात्मक भावुकता विद्यमान है और शिल्प की दृष्टि से सशक्त और समर्थ कहानी है।

इस कहानी का कथानक कल्पना के आधार पर बुना गया है। संवेदनाओं के कई जोड़ दिखाई पड़ते हैं। लेकिन इनमें स्वाभाविकता भी विद्यमान है। तभी कहानी का सीधा प्रभाव पाठक पर पड़ता है।

कहानी के कथानक में तीन बिंदु हैं— आरंभ, विकास और चरम बिंदु। कहानी का आरंभ रेल के डिब्बे में होता है, उसका विकास रामेश्वर के नेता बनने व अध्यक्षीय भाषण देने के क्रम में होता है। जब श्याम की मां रामेश्वर से पार्क में मिलकर फोटो खिंचवाती है और पुत्र वंचिता, अपने वैधव्य के बारे में और जहर खाने की बात बताती है, यह कहानी का चरम बिंदु है। उसके बाद कथानक में तेजी से ढलान शुरू होता है। और फिर उसका अंत हो जाता है। इस प्रकार ‘फोटोग्राफी’ का कथानक पाठक की जिज्ञासा अंत तक बनाए रखता है। यही इस कहानी की सफलता है।

पात्र और चरित्र चित्रण: फोटोग्राफी कहानी में पात्रों की भीड़-भाड़ नज़र नहीं आती। इसमें ऐसे पात्रों से भी बचा गया है, जिससे कथानक के प्रवाह में बाधा पहुंचती हो। कहानी में प्रमुख रूप से दो ही पात्र हैं— फोटोग्राफर रामेश्वर व श्याम की मां। ये दोनों ही व्यक्ति पात्र हैं। रामेश्वर ने बी.ए. पास किया है। वह नौकरी के लिए भटक रहा है, पर प्रयास के उपरांत भी अनुकूल कार्य नहीं मिल पा रहा है।

Notes

वह कामचोर नहीं है, पर हकीकत यह है, कि उसे उसकी इच्छानुरूप कार्य नहीं मिल पा रहा है। आखिर में वह जीविकार्जन के लिए फोटोग्राफी का धंधा चुन लेता है हालांकि वह इससे संतुष्ट नहीं होता। उसके मन में प्रगति की अविकल चाह बनी रहती है। तभी वह एक दिन साहित्य समालोचक और राजनीतिक नेता बन जाता है।

अलीगढ़ से दिल्ली आते हुए गाड़ी में उसका परिचय श्याम व उसकी मां से होता है। श्याम स्टेशन पर केले के लिए मचल उठता है, मां उसे चुप कराना चाहती है, वह और ज्यादा जिद करता है। रामेश्वर उस बच्चे को जिद करते देख उसे प्रसन्न करने का प्रयास करता है। यहाँ उसके चरित्र में मनोवैज्ञानिकता स्पष्ट दिखाई पड़ती है। वह चाहता तो श्याम की माँ को प्रसन्न कर सकता था। पर उसने उसके बच्चे को खुश करने की कोशिश की। भाग्य ने रामेश्वर का कुछ ऐसा साथ दिया कि वह श्याम का मामा बन गया। रामेश्वर में आत्म पीड़न की प्रवृत्ति भी इस कहानी में देखी जा सकती है। फोटोग्राफी के धंधे का चुनाव उसने तब किया था, जब उसे मनोनुकूल कार्य नहीं मिल पा रहा था। उसने परिश्रम के बल पर अपना भविष्य बनाया। एक दिन वह साहित्य समालोचक व राजनीतिक नेता बन गया। यदि चाहता तो वह इसमें और ज्यादा प्रसिद्धि प्राप्त कर सकता था। लेकिन वह 'श्याम की मां' के दुःख को सुनकर व्यथित हो गया। श्याम की मां की आत्महत्या के बाद वह इतना दुःखी होता है कि अपने भविष्य की चिंता न करते हुए भी दोबारा वह अपने पुराने फोटोग्राफी को अपना लेता है।

वस्तुतः रामेश्वर भावुक चरित्र वाला व्यक्ति है। वह महत्वाकांक्षी नहीं है, वह तो कोरा भावुक है। वह करुणा के सागर में आकंठ डूबा है। जैनेन्द्र जी के जीवन-दर्शन को इस चरित्र में स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है।

कहानी में नारी पात्र श्याम की मां है। यद्यपि इस नारी पात्र के साथ एक अन्य नारी पात्र भी है। पर उसका कथानक में कोई उभार नहीं है। रामेश्वर से ज्यादा भावुक यह नारी चरित्र है। यह व्यक्तिवादी चेतना से व्यथित है। रेल के डिब्बे में वह बार-बार रामेश्वर से फोटो प्राप्त करने की जिद करती है। उसे दूसरों की मजबूरी से कुछ लेना-देना नहीं है। उसमें स्वार्थ भावना दिखाई देती है। उसमें यह स्वार्थ-भावना भी अकारण नहीं आई। दरअसल श्याम की मां ने फोटो तो खिंचवा ली, पर अब उसे यही डर खाए जा रहा है कि यदि उसके पति को फोटो खिंचवाने की बात मालूम पड़ गई तो उसका घर ही बिगड़ जाएगा। कहानीकार ने श्याम की मां की इस चिंता को स्पष्ट प्रकट करते हुए लिखा है, “लाहौर जाकर यह बात छिपी नहीं रहेगी, फिर क्या होगा।” उसने रामेश्वर से कहा कि “आप अखबार में भेज देंगे, अपने यहाँ लगा लेंगे।” उसे विश्वास हो चुका था कि वह बात लाहौर में उसके पति तक अवश्य पहुंचेगी। इस बात से वह भयभीत थी।

जैसे शरद बापू की कहानियों में नारी पात्रों की भावुकता है, वैसी ही जैनेन्द्र के पात्रों में भी है। श्याम की माँ में यह भावुकता इस तरह भरी है कि उसमें जीवन की चुनौतियों से संघर्ष करने की हिम्मत ही टूट चुकी है। तभी तो वह आत्महत्या का मार्ग चुनती है। श्याम की मां का आत्महत्या का निर्णय उसके चरित्र की आत्म हनन की प्रवृत्ति का परिचायक है। आत्महत्या के निर्णय में उसकी अतिशय भावुकता ही कारण है। उसने जहर खा लिया है, और तीन घंटे बाद वह मर जाएगी, यह बात रामेश्वर को बताते हुए उसके मन में जरा भी संकोच नहीं दिखाई पड़ता। उसके चरित्र का जैसे यह आत्म गौरव हो। वस्तुतः ये दोनों ही पात्र समसामयिक छायावादी कविता की मूल प्रवृत्तियों से प्रभावित हैं। श्याम की मां का व्यक्तित्व और चरित्र इसका प्रमाण है कि जैनेन्द्र जी के कथा साहित्य में छायावादी कविता की मूल प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं। श्याम की मां जीवन की मूल समस्याओं से जूझना नहीं चाहती। उसमें जीवन की

चुनौतियों से टकराने का मादा नहीं है। वह तो परिस्थितियों को सामने खड़ी देखकर भाग उठती है। वह गरीब नहीं है। उसे आर्थिक संकट का सामना नहीं करना पड़ता। कथाकार ने उसका चरित्र एक ऐसी अबला के रूप में दिखाया है, जो आधुनिक संवेदनाओं में जी रही है। इस प्रकार फोटोग्राफी कहानी चरित्र विश्लेषण की दृष्टि से एक सफल कहानी है। कहानी में पात्र-योजना के प्रति कथाकार काफी सतर्क रहा है।

देश, काल और वातावरण: फोटोग्राफी कहानी की घटना दिल्ली, अलीगढ़ और लाहौर तक फैली है। कथा का आरम्भ अलीगढ़ से होता है। फिर कहानी दिल्ली होती हुई लाहौर में समाप्त होती है। कहानी आधुनिक युग जीवन पर आधारित है। इसलिए इसका वातावरण भी आधुनिक है। कहानी मध्यम वर्ग से जुड़ी है। यह मध्यवर्गीय परिवेश की है। वस्तुतः वही कहानी सफल कही जा सकती है जो अपने परिवेश को जीवंत रूप में प्रस्तुत करने में समर्थ हो। फोटोग्राफी कहानी मध्यवर्गीय परिवार की कहानी है। इसका वातावरण कहानी के सर्वथा अनुकूल है। श्याम की माँ की चिंता यह है कि यह बात लाहौर में उसके पति तक अवश्य पहुंचेगी। इस वाक्य में श्याम की माँ के डर को बारीकी के साथ कथाकार ने व्यक्त कर दिया है। यानी जैसे ही उसके पति को मालूम पड़ेगा कि अलीगढ़ व लाहौर के दौरान उसने किसी फोटोग्राफर से फोटो खिंचवाया है, उसका पति उसके चरित्र को लेकर शंकाग्रस्त हो जाएगा। न जाने तब उसके साथ क्या बीतेगी। इस तरह की चेतना किसी मध्यवर्गीय परिवार में ही देखी जा सकती है। चूँकि इस तरह की बातों पर मध्यवर्गीय परिवारों में ही फसाद खड़े हुआ करते हैं। इस बात से यह भी जाहिर होता है कि कहानी में कहानीकार ने मध्यवर्गीय वातावरण को जीवंत रूप में चित्रित किया है। इस विषय में डॉ० निर्मला जैन का यह मत भी सार्थक है— “कहानी में घटना कुछ न रहे, केवल वह शेष रहे, जिसके लिए कहानी लिखी गई है, यानी विचार, तभी शायद उनकी दृष्टि में अपनी देश-कालबद्ध घटनात्मकता को लांघकर कहानी देश-कालीन होती है।” इस कहानी में सिनेमा शैली का असर देखा जा सकता है। वस्तुतः इस कहानी में घटना एक ही स्थान पर घटित नहीं होती अपितु कई स्थानों पर व एक लंबे काल तक घटती है।

संवाद योजना: जैनेन्द्र की कहानियों में संवाद योजना या कथोपकथन अत्यंत सफलता के साथ व्यंजित हुए हैं। कथोपकथन संक्षिप्त, चुस्त व नाटकीय के साथ-साथ तीखे भी हैं। कथोपकथन के द्वारा वे कथा सूत्रों को जोड़ते ही नहीं अपितु उसके माध्यम से कहानी को अंतिम बिंदु तक भी पहुंचाते हैं। कहानी में संवादों की मार्मिकता यों भी बताई जा सकती है कि कहानीकार के हस्तक्षेप के बिना भी वे पात्रों के व्यक्तित्व को स्पष्ट करने में समर्थ हैं। फोटोग्राफी में प्रयुक्त संवादों के एक-दो उदाहरण दर्शनीय हैं— “देखिये, यह ठीक नहीं है, तस्वीर दे दीजिए।”

रामेश्वर ने कहा, “तस्वीर अभी कैसे दी जा सकती है? उसे धोना होगा, छापना होगा, तब कहीं वह तैयार होगी।” माँ ने कहा, “धोनी होगी? खैर, हम लाहौर में धुलवा लेंगे।” रामेश्वर बोला, “जी नहीं! उसे जरा भी प्रकाश लगेगा, तो वह खराब हो जाएगी।”

“सुनो, एक महीना हुआ, मैं विधवा हो गई। वह भी चौथी ही तारीख थी। चौथी तारीख और मार्च का महीना। आज की यह चौथी मार्च का दिन मेरे जीवन की अंतिम साध का अंतिम दिन है। आज मुझे भी अंतर्हित हो जाना है। मैंने जहर खाया है, तीन घंटे होने आए हैं, अब जहर की अवधि का अंतिम क्षण दूर नहीं है। मैं फिर दुनिया में नहीं रहूंगी।”

फोटोग्राफी कहानी का यह संवाद कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। मानसिक द्वन्द के विश्लेषण और कहानी के रहस्योद्घाटन दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। कहानी में एक चूक भी है — श्याम की माँ, जब

Notes

एक महीना पूर्व चौथी मार्च को विधवा हो गई, तब फिर एक महीने के बाद दोबारा चौथी मार्च का अंतिम दिन कैसे आ गया।

भाषा शैली: हिन्दी कहानियों को नया मोड़ देने के लिए जैनंद्र जी को सदैव स्मरण किया जाता रहेगा। वह मोड़ न केवल कहानी के दृष्टिकोण को लेकर था, अपितु भाषा प्रयोग के स्तर पर भी था। उन्होंने भाषा संबंधी अनेक प्रयोग किए। कहानियों के अंतर्मन के उद्घाटन में जो उन्हें अनुपम सफलता मिली है, उसमें सशक्त व नव प्रयोग संपन्न भाषा का भी योग है। वस्तुतः पात्रों के अंतर्मन के सूक्ष्म विश्लेषण के लिए इसी प्रकार की भाषा की आवश्यकता थी। जैनंद्र की अपनी कहानियों में व्यक्ति पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। इसके लिए उन्होंने अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है। फोटोग्राफी कहानी में छोटे वाक्यों का प्रयोग है। इससे उन्होंने पात्रों के मन की थाह नापने में सफलता मिली है। इस संबंध में एक उदाहरण दर्शनीय है:

“तुम्हारा नाम क्या है?”

“रामेश्वर।”

“मैं अब नाम से पुकारूंगी।” रामेश्वर, “क्या तुम अब फोटो उतार सकते हो?”

“अभी कैमरा नहीं है। अभ्यास भी नहीं है।”

“कैमरा ला नहीं सकते हो?”

“अभी?”

“हां, अभी”

“अभी कहाँ से मिलेगा?”

“क्यों? क्यों नहीं मिलेगा? तुम तो नेता हो, इतना भी नहीं कर सकोगे?”

“जाता हूँ, कोशिश करूंगा।”

फोटोग्राफी कहानी में जैनंद्र ने भाषा का प्रयोग संवेदनात्मक स्तर पर किया है। वे कहीं तो अभिधात्मक भाषा का प्रयोग करते हैं और कहीं लक्षण या व्यंजना का। उनकी शैली में वर्णनात्मकता व विश्लेषणात्मकता विद्यमान है। इसके अतिरिक्त उनकी भाषा में दार्शनिकता जन्य वक्रता व असाधारणत्व का समावेश है।

उद्देश्य: जैनंद्र की ‘फोटोग्राफी’ कहानी उनकी प्रारंभिक कहानी है। इसलिए कहानी में एक संवेदनात्मक भावुकता विद्यमान है। उन्होंने अपनी कहानियों द्वारा पाठकों को किसी प्रकार का उपदेश नहीं दिया है, और न ही उन्होंने अपना कोई दृष्टिकोण पाठकों पर लादने का आग्रह दिखाई पड़ता है। उनका मुख्य उद्देश्य कहानी के माध्यम से व्यक्ति का उद्घाटन करना है। जैनंद्र का कहना है कि कहानी के उद्देश्य के बारे में मैं कुछ अधिक सचेत नहीं हूँ, इतना अवश्य होगा कि मेरे भीतर जो रहा, विचार व भाव, उससे कहानी फोटोग्राफी में ऐसा कुछ आरोपित नहीं है, जिसे पढ़ने के बाद पाठक अपने मन पर किसी विशेष प्रकार के बोझ का अनुभव करे। इस कहानी का नायक फोटोग्राफर होने के साथ एक नेता भी है। वह सभाओं और कांफ्रेंस में अध्यक्षता करने के लिए आमंत्रित किया जाता है। वह भाषण देता है, और जनता उसकी बात सुनने के लिए बेचैन रहती है। यही इसका यथार्थ है और यह यथार्थ जैनंद्र के समय के साथ जुड़ा है। वस्तुतः प्रत्येक देशभक्त युवक जनता का प्रिय नेता हुआ करता है। रामेश्वर

कहानीकार जैनेन्द्र के समसामयिक युवा वर्ग के सपनों को साकार करने में समर्थ रहा है। वस्तुतः कथाकार चाहते हैं कि रामेश्वर जैसे युवक को कुछ और भी बनना चाहिए। यह कुछ और की अभिव्यक्ति करना ही फोटोग्राफी कहानी का उद्देश्य है। बाहर की ओर दौड़ लगाने से भी महत्वपूर्ण कार्य है – भीतरी मन व हृदय की आवाज सुनना।

उपरिकथित विवेचन से स्पष्ट है कि फोटोग्राफी कहानी शिल्प की दृष्टि से सशक्त व समर्थ कहानी है।

10.1.2 खेल

कथासार

‘खेल’ कहानी जैनेन्द्र की विख्यात कहानियों में से एक है। इसमें कथाकार ने बाल मनोविज्ञान का सहारा लिया है। लेकिन इससे ज्यादा इस कहानी में चित्रित यथार्थ आकर्षित करता है। कहानी का सार इस प्रकार है:

संध्या का समय था। गंगा किनारे पर एक बालक व एक बालिका बालू व पानी के साथ खेल रहे थे। बालक एक लकड़ी से किनारे के पानी को उछाल रहा था। बालिका अपने एक पैर पर रेत जमाकर और उसे थोप-थोप कर एक भाड़ बना रही थी। इस बालिका का नाम सुरबाला था और बालक का मनोहर। बालक की आयु करीब नौ वर्ष की थी, और बालिका की सात साल की।

सुरबाला दीन दुनिया से बेखबर हो भाड़ बनाने में लगी थी। उसके साथ-साथ वह कल्पना की दुनिया में भी खोई थी। वह भाड़ से बातें भी कर रही थी, “देख, ठीक नहीं बना, तो मैं तुझे फोड़ दूंगी।” फिर बड़े प्यार से थपका-थपका उसे ठीक करने लगी। सोचती जाती थी – इसके ऊपर मैं एक कुटी बनाऊंगी – वह मेरी कुटी होगी। और मनोहर! नहीं, वह कुटी में नहीं रहेगा, बाहर खड़ा-खड़ा भाड़ में पते झोंकेगा। जब वह आएगा, बहुत कहेगा, तब मैं उसे अपनी कुटी के भीतर ले लूंगी।”

सुरबाला मनोहर के बारे में सोचे जा रही थी। उसकी दृष्टि में मनोहर है तो अच्छा पर उसे बराबर छेड़ता रहता है। वह सोचती है कि अगर अब वह दंगा करेगा तो वह उसे साझी नहीं रखेगी। सोचते-सोचते उसे अचानक ध्यान आया कि छत तो गरम होगी। मनोहर उस पर कैसे रहेगा फिर सोचा, उससे कह दूंगी भाई छत बहुत तप रही है, तुम जलोगे, तुम मत जाओ। अगर नहीं माना, और पास बैठने के लिए आया ही, तो कहूंगी— भाई ठहरो, मैं ही बाहर आती हूँ। किन्तु वह तो बड़ा हठी है, आने की हठ करेगा, पर मैं उसे आने नहीं दूंगी। धक्का दे दूंगी, और कहूंगी अरे, जल जाएगा, मूर्ख।

बालिका ने अब भाड़ पर हाथ लगाकर देखा—भाड़ बन चुका था। अब धीरे-धीरे उसने भाड़ के नीचे से अपना पांव निकाल लिया। उधर मनोहर पानी से खेल रहा था। सुरबाला मनोहर को यह भाड़ दिखाना चाहती थी। मगर उसने सोचा, पहले भाड़ पर एक कुटिया बना लूँ, तभी दिखाऊंगी। धीरे-धीरे उसने कुटिया बना ली। फिर धुआं निकलने का रास्ता बनाकर उसे लगा कि ब्रह्मांड का सबसे संपूर्ण भाड़ और विश्व की सबसे सुंदर वस्तु तैयार हो गई।

कुछ देर बाद मनोहर भाड़ के पास आया। कहकहा लगाकर एक लात में ही उसने भाड़ का काम तमाम कर दिया। अब सुरबाला के सामने एक शून्य फैल गया। उसका मन दुःख से भरा था। उसे लगा जैसे उसकी अन्यतम कला का विनाश उसके सामने ही कर दिया हो। उसके विचार में इसकी क्षतिपूर्ति संभव

Notes

नहीं थी। अब वह मनोहर से नाराज हो गई। मनोहर को भी अपने अपराध का बोध हो गया। उसने सुरबाला के द्वारा दी जाने वाली हर तरह की सजा खुशी-खुशी भुगतने के लिए अपने आप को तैयार कर लिया। वह सुरबाला को किसी भी सूरत में दुःखी नहीं देखना चाहता था। उसने कहा— “सूरी, मनोहर तेरे पीछे खड़ा है। वह बड़ा दुष्ट है। बोल मत, पर उस पर रेत क्यों नहीं फेंक देती, मार क्यों नहीं देती। उसे एक थप्पड़ लगा—वह अब कभी कुसूर नहीं करेगा।”

सुरबाला अब न दुःखी थी और न गुस्से में। अब एक नया भाव ही उसके मन में बस चुका था। यह एक उल्लास था। कुछ क्षण बाद सुरबाला बोली— “हमारा भाड़ क्यों तोड़ा जी? हमारा भाड़ बनाकर दो।”

“लो अभी लो।”

“हम वैसा ही लेंगे”

“वैसा ही जी, उससे भी अच्छा।”

“उस पै हमारी कुटी थी, उसमें धुएं का रास्ता था।”

“जी, सब लो।”

मनोहर ने एक भाड़ बनाकर तैयार किया और कहा—“लो, भाड़ बन गया।”

“धुएं का रास्ता बनाया? कुटी बनाई।”

भाड़ के सिर पर एक सींक लगाकर और एक-एक पत्ते की ओट लगाकर कहा—“बना दिया।”

सुरबाला ने कहा—“थोड़ा पानी ला दो, भाड़ के सिर पर डालेंगे।”

मनोहर पानी लाया और पानी भाड़ के ऊपर डालना चाहता था कि सुरबाला ने अपनी एक लात से मारकर भाड़ के सिर को चकनाचूर कर दिया। “गंगाजल से कर पात्रों द्वारा वह भाड़ का अभिषेक करना ही चाहता था कि सुरो रानी ने एक लात से भाड़ के सिर को चकनाचूर कर दिया।”

भाड़ तोड़ने का सुरबाला ने भाड़ तोड़कर बदला ले लिया। बालक-बालिका दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े। तभी शाम हो आई— “उस निर्जन प्रांत में वह निर्मल शिशु हास्य रव लहरें लेता हुआ व्याप्त हो गया। सूरज महाराज बालकों जैसे लाल-लाल मुंह से गुलाबी-गुलाबी हंसी उड़ा रहे थे। गंगा मानो जान बूझकर किलकारियां भर-भर रही थी। और-और वे लंबे-ऊंचे दिग्गज पेड़ दार्शनिक पंडितों की भांति, सब हास्य की सार-शून्यता पर मानों मन ही मन गंभीर तत्वालोचन कर हंसी में भूले हुए मूर्खों पर थोड़ी दया बख्शना चाह रहे थे।”

तात्विक समीक्षा

कथानक: ‘खेल’ कहानी के कथानक में घटनाओं का विस्तार नहीं है, अपितु वह अत्यंत सूक्ष्म है। इसमें बाल सुलभ खेल का वर्णन है। बहुत छोटी-सी घटना है। एक दिन शाम के समय गंगा के किनारे दो बच्चे खेल रहे थे। एक का नाम मनोहर था और दूसरी बालिका थी सुरबाला।

मनोहर गंगा तट पर पानी से खेल रहा था। जबकि सुरबाला रेत में भाड़ बना रही थी। सुरबाला ने काफी मेहनत के साथ एक भाड़ बनाया। भाड़ के ऊपरी भाग में एक कुटिया भी बनाई। भाड़ बनाते-बनाते वह कल्पनाओं में डूबती-उतरती जाती थी। उसने सोचा कि मनोहर को कुटी में नहीं रखूंगी। अगर वह

जिद करेगा, तो कह देगी—मैं ही बाहर चली जाती हूँ। इस तरह की अनेक कल्पनाएं सुरबाला भाड़ बनाते हुए कर रही थी। तभी मनोहर आया। उसने आते ही पैर मारकर सुरबाला का भाड़ तोड़ डाला। सुरबाला को भाड़ टूटने का दुःख पहुंचा। उसे लगा जैसे उसकी सर्वोत्तम कलाकृति का उसके किसी स्वजन ने विनाश कर दिया हो। न केवल वह व्यथित हो गई अपितु रूठ गई। मनोहर ने बड़ी मुश्किल से सुरबाला को मनाया। सुरबाला मान गई पर उसने मनोहर के सामने शर्त रखी कि उसे उसी तरह का भाड़ बनाकर दे। मनोहर ने बड़ी मुश्किल से भाड़ बनाया। जब उसे तसल्ली हो गई कि उसका पहले जैसा भाड़ बन चुका है, उसने मनोहर से पानी मंगाया। मनोहर जैसे ही पानी लेकर आया तो सुरबाला ने उसके बनाए भाड़ को एक लात से तोड़ डाला। दोनों बच्चे खिलखिला कर हंस पड़े। इतने में शाम हो गई। दरअसल इस कहानी में से बच्चों की नोक-झोंक, कलह व बाल सुलभ अन्य चेष्टाओं का स्वाभाविक चित्रण किया है। यह कहानी शिशु-संवेदना पर आधारित है।

जन चरित्र-चित्रण: इस कहानी में कथाकार ने जहाँ अत्यंत सूक्ष्म घटना का आश्रय लिया है, वहीं अत्यंत कम पात्रों की संयोजना भी की है। कहानी में कुल दो पात्र ही हैं— एक, नौ वर्षीय मनोहर व दूसरी, सात वर्षीय सुरबाला। इन दो पात्रों के सहारे ही पूरी कहानी कही गई है। कथाकार की रुचि घटनाओं का चित्र बनाने में नहीं है, अपितु उसकी पूरी प्रतिभा व्यक्ति के चरित्र को चित्रित करने में खर्च हुई है। मनोहर व सुरबाला के माध्यम से शिशु मन की संवेदनाओं का सूक्ष्म चित्रण आलोच्य कहानी में दर्शनीय है। दोनों ही पात्र काल्पनिक योजनाओं में रत हैं। सुरबाला रेत के भाड़ का निर्माण करती है, उसके ऊपर कुटिया बनाती है। इससे उसकी रचनात्मक वृत्ति का परिचय मिलता है। कहानी में सुरबाला कल्पना करती है कि मनोहर जब उसके घर में प्रवेश की जिद करेगा, वह बाहर निकल जाएगी। इस भाव में नारी सुलभ भाव ही प्रकाशित हुआ है। बेशक कहानी के दोनों पात्र छोटी आयु के हैं, पर उनमें निजता का गहरा भाव छिपा है। उनमें स्वतंत्रता है और प्रतीकात्मकता भी। मनोहर जहाँ पुरुष का प्रतीक है, वहाँ सुरबाला स्त्री का। इन दोनों पात्रों के माध्यम से रचनाकार ने संवेदनशीलता व मनोविज्ञानता का अच्छा परिचय दिया है। सुरबाला में रचनात्मक प्रतिभा भी है। उसका भाड़ रेत का भले ही बना है, पर वह संसार की अन्यतम कृति है। श्रेष्ठ कलाकार की सबसे बड़ी विशेषता उसमें रमने की है। सुरबाला में यह विशेषता देखी जा सकती है। वह अत्यंत तन्मयता के साथ अपने भाड़ का निर्माण करती है। सुरबाला की एक विशिष्टता यह भी है कि उसमें अपनी कलाकृति के लिए कहीं न कहीं आत्म विसर्जन की भावना भी विद्यमान है। इसके विपरीत मनोहर में विध्वंसात्मक वृत्ति भी है। वह सुरबाला के पास आते ही, उसके बने भाड़ का पैर मारकर काम तमाम कर देता है। मनोहर के इस व्यवहार से सुरबाला को अत्यंत कष्ट पहुंचता है। मनोहर को भी अपने किए पर पछतावा होता है। अब वह किसी भी कीमत पर सुरबाला को प्रसन्न करने का प्रयत्न करता है। वस्तुतः मानव संवेदनशील प्राणी है। वह अपने कर्मों का विश्लेषण भी करता है। सुरबाला को प्रसन्न करने की चेष्टा करते हुए वह कहता है— “सुरी, मनोहर तेरे पीछे खड़ा है। वह बड़ा दुष्ट है। बोल मत, पर उस पर रेत क्यों नहीं फेंक देती, मार क्यों नहीं देती। उसे थप्पड़ लगा—वह अब कभी कुसूर नहीं करेगा।” सुरबाला एक बाला है— स्त्री। इसलिए उसमें नारीजन्य कोमलता भी है। इसलिए कहानीकार जैनेन्द्र ने उसके चरित्र का विश्लेषण इन शब्दों में किया है— “बालिका में व्यथा व क्रोध कभी का खत्म हो चुका था। वह तो पिघलकर बह चुका था। यह कुछ और ही भाव था। यह एक उल्लास था, जो व्याज कोप का रूप धर बैठा था। दूसरे शब्दों में वह स्त्रीत्व था।”

सुरबाला में बदले की भावना भी है। मनोहर ने उसके द्वारा बनाए भाड़ को तोड़ डाला। सुरबाला मनोहर के सामने खुश होने की शर्त रखती है कि उसे पहले जैसा भाड़ बनाकर दे:

Notes

“हमारा भाड़ क्यों तोड़ा जी? हमारा भाड़ बना के दो।”

“लो अभी लो।”

“वैसा ही लो, उससे भी अच्छा।”

“उस पर हमारी कुटी थी, उस पै धुंए का रास्ता था।”

“लो, सब लो। तुम बताती जाओ, मैं बनाता जाऊं।”

“हम नहीं बताएंगे। तुमने तोड़ा? तुमने तोड़ा तुम्ही बनाओ।”

“अच्छा, पर तुम इधर देखो तो।”

“हम नहीं देखते, पहले भाड़ बनाकर दो।”

मनोहर ने एक भाड़ बनाकर तैयार किया। कहा—“लो भाड़ बन गया।”

“बन गया?”

“हां!”

“धुंए का रास्ता बनाया? कुटी बनाई?”

“सो कैसे बनाऊं— बताओ तो।”

“पहले बनाओ, तब बताऊंगी।”

भाड़ के सिर पर एक सींक लगाकर और एक-एक पत्ते की ओट लगाकर कहा, “बना दिया।”

तुरंत मुड़कर सुरबाला ने कहा, “अच्छा दिखाओ।”

“सींक ठीक नहीं लगी जी” “पत्ता ऐसे लगेगा” आदि-आदि संशोधन कर चुकने पर मनोहर को हुकुम हुआ—

“थोड़ा पानी लाओ, भाड़ के सिर पर डालेंगे।”

मनोहर पानी लाया।

“गंगाजल से कर पात्रों द्वारा वह भाड़ का अभिषेक करना ही चाहता था कि सुरो रानी ने एक लात से भाड़ के सिर को चकनाचूर कर दिया।”

कथाकार के इन संवादों से स्पष्ट होता है कि सुरबाला में बदले की भावना विद्यमान है। वह मनोहर से वैसा भाड़ ही नहीं बनवाना चाहती अपितु निर्देशन भी देती जाती है। उसकी इस भावना में न केवल क्षतिपूर्ति का भाव प्रकट होता है, अपितु कहीं न कहीं उसके अहं भाव की संतुष्टि भी होती है। मनोहर के द्वारा भाड़ बना देने के बाद वह उससे गंगाजल मंगवाती है। जैसे ही वह पानी लेकर आता है, सुरबाला लात मार कर भाड़ तोड़ देती है और अलौकिक सुख में लीन हो जाती है।

बाल्यावस्था में बदले की भावना प्रबलतम होती है। बालक को इससे अलौकिक सुख की अनुभूति होती है। “सुरबाला में इस भावना को देखा जा सकता है। मनोहर ने सुरबाला का भाड़ तोड़ डाला, इससे उसे आरंभ में पहले तो काफी तकलीफ हुई, पर बाद में उसके मन में यह भावना पैठ गई कि मनोहर से दोबारा भाड़ बनवाया जाए और उसे तोड़कर आनंद उठाया जाए। वह यही करती है। इस प्रकार सुरबाला के चरित्र में बाल मनोविज्ञान का लक्ष्य पूर्ण रूप से परखा जा सकता है।

सारांश यह है कि 'खेल' कहानी चरित्र मूलक कहानी है। पूरी कहानी पढ़ने के बाद ऐसा लगता है जैसे कथाकार ने दोनों बालकों के चरित्र के उद्घाटन के लिए ही कथा की रचना की हो। वस्तुतः दोनों पात्रों की मानसिक व चारित्रिक संवेदनाओं की अभिव्यक्ति में 'खेल' कहानी पूरी तरह सफल है।

देशकाल व वातावरण: जैनेन्द्र जी कहानी लिखते समय घटना की तरफ ध्यान नहीं देते। इसलिए उनकी कहानियों का शास्त्रीय शिल्प से विवेचन नहीं किया जा सकता। उनकी दृष्टि में कहानी कल्पना विधायिनी है, वे कहानियों को देश काल व वातावरण के साथ नहीं जोड़ते, अपितु उनका समग्र ध्यान कहानी को मनोविज्ञान-सम्मत बनाने में लगा रहता है। सच तो यह है कि जैनेन्द्र की दृष्टि में जो निदान समस्या को बाहर देखता है, देश और काल में रखता है, वह रोग के लक्षणों को पकड़ता है। मूल तक नहीं जा पाता। इसलिए वे जब मूल को पकड़ने की कोशिश करते हैं, जो व्यक्त लक्षण के पीछे अव्यक्त है, तो अक्सर कहानी निदान में या मूल को पकड़ने में नहीं, बल्कि रहस्य में आकर समाप्त होती है।

जैनेन्द्र मनोवैज्ञानिक कथाकार हैं। मनोविज्ञान का संबंध घटना से नहीं होता, अपितु व्यक्ति की मानसिकता से होता है। तभी तो उनकी कहानियों में मानसिकता का विवेचन प्रमुखता से मिलता है। देशकाल व वातावरण का आधार इनकी कहानियों में न के बराबर होता है। यदि कोई इस आधार पर उनकी कहानियों का अध्ययन करना चाहे भी तो उसके हाथ निराशा ही लगेगी। वास्तविकता यह है कि घटना जो जगत में घटती है, वही समय में बंधी होती है और पुरानी पड़ा करती है। इसलिए जैनेन्द्र अपनी कहानी की घटना को जागतिक और सामयिक न बनाकर मानसिक बनाने का प्रयास करते हैं, ताकि वह सनातन बन सके। कथाकार की खेल कहानी में सामयिकता की ओर ध्यान नहीं दिया गया है। यह मनोवैज्ञानिक कहानी है, इसलिए इसमें मानसिकता को प्रमुखता दी गई है। यह देश काल और वातावरण की सीमा से सर्वथा मुक्त दिखाई पड़ती है। वस्तुतः इसमें एक प्रकार का सनातन वातावरण प्रमुखता से उपस्थित हुआ है। शायद ही कोई व्यक्ति होगा, जो बाल्यावस्था में सुरबाला व मनोहर के चरित्र में से न गुजरा हो। खेल की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि इसमें प्रत्येक पुरुष अपने भीतर बाल स्मृति में मनोहर व स्त्री सुरबाला का अस्तित्व अनुभव करती है। मनोवैज्ञानिकों की भी धारणा है कि प्रत्येक पुरुष व प्रत्येक स्त्री में बाल्यावस्था में नया कुछ करने की कामना होती है। उनके निर्मित संसार को जब कोई विध्वंस कर देता है तो पहले तो उन्हें असीम व्यथा होती है, लेकिन बाद में उनमें बदले की भावना घर कर उठती है। जब वह बदला ले लेते हैं, तब उनकी व्यथा के ऊपर प्रसन्नता हावी हो जाती है।

खेल कहानी में की घटना एकदेशीय है। यह कहानी गंगा तट की है। यह एक विशेष क्षण में घटित होती है। शाम का समय है। एकदम रोमानी वातावरण है। कहानीकार को इस वातावरण को प्रस्तुत करने में सफलता मिली है। बल्कि इस कहानी में देशकाल और वातावरण का दोहरा चित्रण है। एक पंक्ति में हम कह सकते हैं— 'खेल' कहानी का काल बोध सनातन रूप में प्रस्तुत है।

संवाद योजना: खेल कहानी में संवाद योजना को प्रमुखता मिली है। सुरबाला व मनोहर आपस में बातें कर रहे हैं। इससे कथाकार जहाँ कथानक को गतिशील बना रहा है, वहाँ वह पात्रों की मानसिकता भी प्रस्तुत कर सकता है। इससे पात्रों की सूक्ष्म संवेदनाएं भी प्रकट होती जाती हैं। कथाकार का मुख्य उद्देश्य भी घटना का विश्लेषण नहीं है, अपितु चरित्र विवेचन है। पात्रों में परस्पर जो वार्तालाप होता है, उसमें उनके चरित्र, उनके चिंतन, जीवन दर्शन, उनकी वैचारिक भाव-भूमि, उनका रहस्योद्घाटन स्वयं हो जाता है। इस कथन की पुष्टि के लिए यह संवाद उल्लेखनीय है।

मनोहर— “सूरी, मनोहर तेरे पीछे खड़ा है। वह बड़ा दुष्ट है। बोल मत, पर उस पर रेत क्यों नहीं डाल देती, मार क्यों नहीं देती। उसे एक थप्पड़ लगा—वह अब कसूर नहीं करेगा।”

Notes

“चुप रहो जी।”

“चुप रहता हूँ पर मुझे देखोगी नहीं?”

“नहीं देखते।”

“अच्छा मत देखो, मत ही देखो। मैं अब कभी सामने नहीं आऊंगा, मैं इसी लायक हूँ।”

“तुम चुप रहो। हम नहीं बोलते।”

“लो सूरी, मैं नहीं बोलता। मैं बैठ जाता हूँ। यहीं बैठा रहूंगा। तुम जब तक न कहोगी, न उठूंगा, न बोलूंगा।”

सुरबाला—“हमारा भाड़ क्यों तोड़ा जी? हमारा भाड़ बना के दो।”

“लो अभी लो।”

“हम वैसा ही लेंगे।”

“वैसा ही लो, उससे भी अच्छा।”

इन संवादों का विश्लेषण करने के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि जहाँ इनसे कहानी की कथात्मक संवेदना का विकास हुआ है, वहाँ मनोहर व सुरबाला की चरित्रिक विशेषताएँ भी अभिव्यक्त हुई हैं। जहाँ एक ओर सुरबाला में मान-मनुहार व अहं भाव दिखाई देता है, वहीं मनोहर में पश्चाताप व उसका मानसिक उद्वेलन भी प्रकाशित होता है।

जैनद्र ने इस कहानी में ऐसे संवादों का सृजन किया है, जिससे एक ही पात्र वक्ता व श्रोता दोनों की भूमिकाओं का निर्वाह करता है। वह भाषण ध्वनिमय नहीं होता, अपितु अनुभूति सापेक्ष होता है। इस तरह एक संवाद देखा जा सकता है।

“भाड़ की छत तो गरम होगी, उस पर मनोहर रहेगा कैसे? मैं तो रह जाऊंगी पर मनोहर तो जलेगा। उससे मैं कह दूंगी, भाई छत बहुत तप रही है, तुम जलोगे, तुम मत आओ। पर अगर वह नहीं माना.... पर वह मेरे पास आने की जिद करेगा क्या? जरूर करेगा, वह बड़ा हठी....”

इस प्रकार हम देखते हैं, ‘खेल’ कहानी के संवाद उद्देश्यपूर्ण और पात्रों की मानसिकता का विश्लेषण करने में समर्थ हैं।

भाषा शैली: जैनद्र की भाषा मनोवैज्ञानिक है। अपनी कहानियों में उन्होंने इस भाषा का प्रयोग अत्यंत सावधानीपूर्वक किया है। कहीं तो उनकी भाषा में भावुकता दिखाई पड़ती है तो कहीं संवेग व विचार तत्त्व। घटनाओं का आयोजन तो केवल नाममात्र के लिए है। ‘खेल’ कहानी में सूक्ष्म संवेदनाओं का अंकन है। उन्होंने इन संवेदनाओं के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है। उनके वाक्य बहुत छोटे-छोटे हैं। मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों का छोटे-छोटे वाक्यों से ही प्रभावशाली अंकन किया जा सकता है। भाषा की दृष्टि से यह कहानी सफल है।

‘खेल’ कहानी में जैनद्र ने कई प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया है। कहीं तो वे वर्णात्मक शैली का प्रयोग करते हैं तो कहीं विवेचनात्मक या विश्लेषणात्मक शैली का। कहीं वे संवादात्मक शैली का प्रयोग करते हैं तो कहीं आत्मकथात्मक और स्वगत-भाषण शैली का। चूँकि जैनद्र की भाषा में भावना, अनुभूति, संवेग को व्यक्त करने की अद्भुत क्षमता विद्यमान है, इसलिए उन्होंने भावानुकूल शैली का

प्रयोग किया है। कहीं तो उनकी भाषा में अतिशय कोमलता देखने को मिलती है तो कहीं भावुकता। इनकी भाषा में कहीं-कहीं दार्शनिकता का रंग भी बिखरा पड़ा है। 'खेल' कहानी की शैली को निम्नांकित संकेतों के आधार पर विश्लेषित किया जा सकता है:

वर्णनात्मक शैली: कथाकार जैनेन्द्र 'खेल' में कई स्थानों पर तटस्थ द्रष्टा की तरह दिखाई पड़ते हैं। तब वे वर्णनात्मक शैली का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार की शैली का एक उदाहरण प्रस्तुत है— “बालक कहीं से एक लकड़ी लाकर तट के जल को छटा-छटा उछाल रहा था। पानी मानों चोट खाकर भी बालक से मित्रता जोड़ने के लिए विह्वल हो उछल रहा था। बालिका अपने एक पैर पर रेत जमाकर और थोप-थोप एक भाड़ बना रही थी।”

विवेचनात्मक अथवा विश्लेषणात्मक शैली: 'खेल' कहानी में जहाँ कथाकार ने पात्रों की मानसिकता का विश्लेषण किया है, वहीं उनकी शैली विश्लेषणात्मक हो गई है। इस प्रकार का एक उदाहरण दर्शनीय है— “बालिका में व्यथा और क्रोध कभी का खत्म हो चुका था। वह तो पिघल कर बह चुका था। यह कुछ और ही भाव था। यह एक उल्लास था जो व्याज कोप का रूप धर बैठा था। दूसरे शब्दों में यह स्त्रीत्व था।”

संवादात्मक शैली: संवाद शैली का प्रयोग परस्पर दो पात्रों के बीच होता है। ये पात्र जब आपस में बातचीत करते हैं, तब कथा में गति बढ़ती है। इसी के माध्यम से रचनाकार पात्रों की चरित्रगत विशेषता को स्पष्ट करता है। 'खेल' कहानी में इस शैली का प्रयोग भी किया गया है। इस शैली का एक उदाहरण दर्शनीय है:

“सुरी और सुरिया! मैं मनोहर हूँ, मनोहर। मुझे मारती नहीं।”

“सुरी, मनोहर तेरे पीछे खड़ा है। वह बड़ा दुष्ट है। बोल मत, पर उस पर रेत क्यों नहीं फेंक देती, मार क्यों नहीं देती। उसे एक थप्पड़ लगा—वह अब कभी कसूर नहीं करेगा।”

बाला ने कड़क कर कहा, “चुप रहो जी!”

“चुप रहता हूँ, पर मुझे देखोगी भी नहीं।”

“नहीं देखते।”

“अच्छा मत देख! मत ही देखो। मैं अब कभी सामने नहीं आऊंगा, मैं इसी लायक हूँ।”

“कह दिया तुमसे, चुप रहो, हम नहीं बोलते।”

इन संवादों में कथाकार ने दोनों पात्रों की चारित्रिक विशेषता का सजीव चित्रण किया है। इसके अतिरिक्त कथा में ये गतिशीलता भी बढ़ाते हैं।

स्वगत भाषण शैली: जब पात्र मानसिक उद्वेग में रहता है। तब वह अपने आप से बातें करने लगता है। ऐसी स्थिति में रचनाकार स्वगत शैली का प्रयोग करता है। इससे रचना प्रभावशाली हो उठती है। 'खेल' कहानी में इस शैली का प्रयोग भी है।

बनाते-बनाते बालिका भाड़ से बोली, “देख, ठीक नहीं बना, तो मैं तुझे फोड़ दूंगी।” फिर बड़े प्यार से थपका-थपका कर उसे ठीक करने लगी। सोचती जाती थी— “इसके ऊपर मैं एक कुटी बनाऊंगी — यह मेरी कुटी होगी। और मनोहर? नहीं, वह कुटी में नहीं रहेगा, बाहर खड़ा-खड़ा भाड़ में पत्ते झोंकेगा। जब वह हार जाएगा, बहुत कहेगा, तब मैं उसे अपनी कुटी के भीतर ले लूँगी।”

Notes

आत्मकथात्मक शैली: जब पात्र अपने संबंध में कोई बात कहता है, वहाँ वह विशेष प्रकार की शैली का प्रयोग करने लगता है। उदाहरण के लिए ये पंक्तियाँ दर्शनीय हैं— “सुरी, मनोहर तेरे पीछे खड़ा है। बोल मत, पर उस पर रेत क्यों नहीं फेंक देती। मार क्यों नहीं देती।”

काल्पनिक शैली: कहानीकार कहानी कहते हुए अनेक प्रकार की कल्पना में विचरण करता है। जब उसकी भाषा में कल्पना तत्व का प्राधान्य हो जाता है, तब उसकी भाषा स्वयमेव आलंकारिक हो जाती है। ‘खेल’ कहानी में ऐसी शैली का अभाव नहीं। उदाहरण प्रस्तुत है:

“मौन-मुग्ध संध्या स्मित प्रकाश से हंस रही थी। उस समय गंगा निर्जन बालुका स्थल पर एक बालक व एक बालिका अपने को और सारे विश्व को भूल, गंगा तट के बालू, और पानी को अपना एकमात्र आत्मीय बना उनसे खिलवाड़ कर रहे थे।”



Did u know? ‘खेल’ कहानी में जैनेंद्र ने अपनी लेखन पद्धति से बालमनोविज्ञान का चित्रण करते हुए उसे दार्शनिकता का रूप दे दिया है।

“उस निर्जन प्रांत में वह निर्मल शिशु हास्य रव लहरें खेलता हुआ व्याप्त हो गया। सूरज महाराज बालकों जैसे लाल-लाल मुंह से गुलाबी-गुलाबी हंसी हंस रहे थे। गंगा मानों जान बूझकर किलकारियाँ भर-भर रही थी। और-और वे लंबे ऊंचे-ऊंचे दिग्गज पेड़ दार्शनिक पंडितों की भांति, सब हास्य की सार-शून्यता पर मानो मन ही मन गंभीर, तत्वालोचन कर हंसी में भूले हुए मूर्खों पर थोड़ी दया बख्शना चाह रहे थे।”

दार्शनिक शैली: जैनेंद्र मनोवैज्ञानिक कथाकार हैं। चूंकि उनकी कहानियों में दार्शनिकता कूट-कूट कर भरी है, इसलिए उन्हें दार्शनिक कहानीकार भी कहा जा सकता है। उनका चिंतन ठीक उसी प्रकार है, जैसे किसी दार्शनिक का होता है। खेल में उनकी शैली पर यह तत्व पूरी तरह हावी दिखाई देता है। इसका एक उदाहरण प्रस्तुत है— यह संसार क्षणभंगुर है। इसमें दुःख क्या और सुख क्या। जो जिसने बनाया है, वह उसी में लय हो जाता है—उसमें शोक व उद्वेग की क्या बात है? यह संसार जल का बुदबुदा है, फूटकर किसी रोज जल में ही मिल जाएगा। फूट जाने में ही बुदबुदे की सार्थकता है।”

उद्देश्य: रचना निष्प्रयोजन नहीं की जाती। उसमें रचनाकार का कोई न कोई उद्देश्य अवश्य निहित रहता है। यह बात अलग है, जैनेंद्र अपनी कहानियों के माध्यम से पाठकों पर हावी नहीं होते। एक स्थान पर उन्होंने लिखा भी है— “कहानी के उद्देश्य के बारे में मैं कुछ अधिक सचेत नहीं हूँ। इतना अवश्य होगा कि मेरे भीतर जो रहा, विचार और भाव, उससे कहानी को अमुक दिशा मिलती रही होगी। कहानी लिखता हूँ तो मेरे मन में कुछ स्पष्ट नहीं होता।” दरअसल जैनेंद्र कहानी को किसी उद्देश्य में फिट नहीं करते। खेल कहानी में उन्होंने किशोर मन की स्वच्छ मानसिकता दर्शाई है। इसमें उन्हें विशिष्ट सफलता भी मिली है। डॉ० निर्मला जैन ने कहानी के बारे में सटीक टिप्पणी की है— ‘खेल जीवन से तराशा हुआ टुकड़ा है’।

इस प्रकार ‘खेल’ कहानी में रचनाकार ने युगानुकूल शिल्प का चित्रण किया है। उसमें शास्त्रीय शिल्प नहीं है, पर पात्रों के मानसिक विश्लेषण के लिए जिस प्रकार के कथाशिल्प की आवश्यकता हो सकती है, विद्यमान है। सारांश यह है, ‘खेल’ की कहानी तात्विक आधार पर सफल कहानी है।

10.1.3 अपना-अपना भाग्य

कथासार

‘अपना-अपना भाग्य’ कहानी जैनेन्द्र ने 1929 में लिखी थी। यह घटना प्रधान कहानी है। इस कहानी का विवेचन करने पर आसानी से समझा जाता है कि उस समय का जैनेन्द्र प्रेमचंद परंपरा से जुड़ा है। कथाकार नैनीताल में है। वह काफी समय तक निरुद्देश्य घूमता रहा, और इसके बाद आकर एक बेंच पर बैठ गया। वह शाम का समय था। “नैनीताल की संध्या धीरे-धीरे उतर रही थी। रूई के रेशे से, भाप से बादल हमारे सिरों को छू-छू कर बेरोक घूम रहे थे। हल्के प्रकाश और अंधियारी से रंग कर कभी वे नीले दिखते, कभी सफेद और फिर ज़रा देर में अरुण पड़ जाते। वे जैसे हमारे साथ खेलना चाह रहे थे।” कथाकार जहाँ बैठा था, वहाँ पीछे पोलोलान था। वहाँ बच्चे हाकी खेल रहे थे। उन्हें दीन दुनिया की कोई फिक्र नहीं थी। सिर्फ वे पूरे मन से वर्तमान में ही थे।

सड़क पर लोग घूम फिर रहे थे। उनमें अंग्रेज भी थे, जो अधिकार गर्व से तने थे। इसके अलावा वहाँ वे लोग भी मौजूद थे, जो फटे-पुराने मैले कपड़े पहने थे, और उन्होंने घोड़ों की बाग हाथ में संभाली हुई थी। उनका आत्माभिमान मर चुका है और वे अब बड़ी तत्परता से दुम हिलाना सीख गए हैं— “अधिकार गर्व से तने अंग्रेज उसमें थे, और चिथड़ों से सजे घोड़ों की बाग थामे वे पहाड़ी उसमें थे, जिन्होंने अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान को कुचल कर शून्य बना लिया है, और जो बड़ी तत्परता से दुम हिलाना सीख गए हैं। वहाँ न केवल घोड़े की बाग थामे पहाड़ी थे, अपितु लाल-लाल अंग्रेजों के बच्चे भी थे, जो हंस-खेल रहे थे, और तरह-तरह की शरारतें कर रहे थे। दूसरी तरफ वहाँ वे हिन्दुस्तानी भी थे, जो पिता की उंगली पकड़ कर चल रहे थे। वहाँ अंग्रेज पिता भी थे, जो बच्चों के साथ भाग-दौड़ रहे थे, और भारतीय भी, जो बुजुर्गों को अपने चारों ओर लपेट कर अपनी झूठी अमीरी के नगाड़े पीट रहे थे। वहाँ अंग्रेज औरतें भी थीं। जो दिल्लगी में ही किसी हिन्दुस्तानी पर कोड़े भी बरसा देती थी। इसके विपरीत वहाँ भारतीय स्त्रियाँ भी थीं, जो अपनी शालीनता व मर्यादा के साथ चली आ रही थीं। “इसके साथ ही भारतीयता का एक और नमूना था। अपने कालेपन को खुरच-खुरच कर बहा देने की इच्छा करने वाले अंग्रेजी दा पुरुषोत्तम भी थे। जो नेटिव को देखकर मुंह फेर लेते थे, और अंग्रेजों को देखकर आँखें बिछा देते थे, और दुम हिलाने लगते थे।”

बेंच पर बैठे यह सब नजारा देखते-देखते ग्यारह बज गए। लेखक अपने होटल की ओर चल पड़ा। लेखक के साथ उसका मित्र भी था। लेखक का मित्र कुछ देर और वहाँ बैठना चाहता था। दोनों वहाँ फिर बैठ गए। रात काफी बीत चुकी थी। कुहरे की सफेदी में एक काली मूर्ति उनकी ओर बढ़ रही थी। जब तीन गज की दूरी रह गई। तब वह चेहरा साफ-साफ दिखाई देने लगा। वह बड़े-बड़े बालों वाला एक लड़का था। जो बालों को खुजलाते हुए नंगे पांव उनकी तरफ बढ़ा चला आ रहा था। बेहद ठंड में उसने सिर्फ एक कमीज पहन रखी थी। उम्र थी कोई दस वर्ष। रंग तो उसका गोरा था, पर मैल के कारण काला पड़ गया था। उसके चेहरे पर झुर्रियाँ साफ-साफ झलक रही थीं। मित्र ने आवाज देकर उस लड़के को अपने पास बुला लिया।

“मित्र ने आवाज दी—‘ए’।

उसने जैसे जागकर देखा और पास आ गया।

“तू कहाँ जा रहा है रे।”

Notes

उसने अपनी सूनी आँखें फाड़ दीं।

“दुनिया सो गई, तू ही क्यों घूम रहा है।”

बालक, मौन मूक, फिर भी बोलता हुआ चेहरा लेकर, खड़ा रहा।

“कहां सोयेगा?”

“यहीं कहीं”

“कल कहां सोया था?”

“दुकान पर”

“आज वहां क्यों नहीं?”

“नौकरी से हटा दिया”

“क्या नौकरी थी?”

“सब काम! एक रुपया और जूटा खाना।”

“फिर नौकरी करेगा?”

“हां।”

“बाहर चलेगा।”

“हां।”

“आज क्या खाना खाया?”

“कुछ नहीं”

“अब खाना मिलेगा?”

“नहीं मिलेगा।”

“यों ही सो जाएगा”

“हां”

“कहां?”

“यहीं कहीं”

“इन्हीं कपड़ों से”

“बालक फिर आँखों से बोलकर मूक खड़ा रहा।”

बातचीत में पता चला। उस गरीब लड़के के कई भाई-बहिन थे। वो भाग आया। वहाँ न तो कोई काम था, और न रोटी ही। बाप तक को रोटी मयस्सर नहीं थी। वह उस लड़के को मारता-पीटता भी था। माँ भी भूखी सो जाती थी। उसी गांव का उसका एक साथी और था। उसके साहब ने उसके साथी को एक रोज इतना मारा कि वह दम तोड़ गया।

लेखक व उसका मित्र दरियादिल हो उस लड़के को होटल ले आए। वे यहाँ उसे वकील के पास नौकरी दिलवाना चाहते थे। लेकिन वकील साहेब ने उस लड़के को नौकरी देने से मना कर दिया और उल्टे यह फतवा और जड़ दिया “ये पहाड़ी बड़े शैतान होते हैं।”

दोनों मित्र उसे साथ लेकर बाहर आ गए। लेखक के मित्र ने उस लड़के को कुछ देने के लिए जेब में हाथ डाला। पास में दस रुपये थे। खुल्ला पैसा न होने के कारण मित्र ने लेखक से पूछा। उसके पास भी नहीं थे। लेखक ने सलाह दी तो दस का नोट ही दे दो। मित्र ने कहा बजट बिगड़ जाएगा। मित्र ने कहा, जितनी दया है, उतने जेब में पैसे नहीं, तो लेखक ने कहा तो जाने दो। आज के जमाने के हिसाब से यह भी कुछ कम नहीं। लेखक के मित्र ने अगले दिन सुबह दस बजे होटल बुलाया। उसने फिर लड़के से पूछा कहां सोएगा, उत्तर मिला—“यहीं कहीं बैंच पर, पेड़ के नीचे—किसी दुकान की भट्टी में।”

बालक चला गया। दोनों मित्र भी होटल के लिए चल पड़े। रास्ते की बातचीत में लेखक ने कहा कि “भयानक शीत है, उसके पास कपड़े भी कम हैं।” लेखक ने मित्र की चिंता पर टिप्पणी करते हुए कहा कि “यह संसार है यार! चलो, पहले बिस्तर पर गर्म हो लो, फिर किसी और की चिंता करना।”

पूर्व योजना के अनुसार उस बालक को दूसरे दिन इनके पास होटल पहुंचना था, मगर वह नहीं आया। वे अपनी सैर खत्म कर जब मोटर में बैठे, तभी उन्हें समाचार मिला—“पिछली रात एक पहाड़ी बालक, सड़क के किनारे पेड़ के नीचे ठिठुर कर मर गया। उसे यह भी बताया गया कि उस गरीब के मुँह, छाती, मुट्ठियों और पैरों पर बर्फ की हल्की सी चादर चिपक गई थी। मानों दुनिया की बेहयाई ढकने के लिए प्रकृति ने शव के लिए सफेद और ठंडे कफन का प्रबंध कर दिया।” लेखक ने एक लंबी सांस लेते हुए कहा— ‘अपना-अपना भाग्य।’

तात्विक समीक्षा

कथानक: जैनेन्द्र की कहानी ‘अपना-अपना भाग्य’ का कथानक घटना प्रधान है। इस कहानी की एक विशेषता यह है कि वह अपने समसामयिक कथा साहित्य से जुड़ी है। कहानी की शुरुआत नैनीताल में शासक अंग्रेजों व शासित परिवारों की जीवन पद्धति के मध्य विषमता के तीखे बोध से होती है। इस विषमता ने भीतर तक भारतीयों को निगल रखा है। जैनेन्द्र जी ने इसकी नजीर यों दी है— “इसके साथ ही भारतीयता का एक और नमूना था। अपने को खुरच-खुरच कर बहा देने की इच्छा करने वाले अंग्रेजी दा पुरुषोत्तम भी थे, जो नेटिव को देखकर मुँह फेर लेते थे और अंग्रेज को देखकर आँखें बिछा देते थे, और दुम हिलाने लगते थे।” इस कहानी के कथानक को पढ़कर प्रेमचंद की घटनामूलक कहानियों की याद हो आती है। प्रेमचंद के कथानक की एक विशिष्टता यह है कि वे अपने कथानक का निर्माण सूक्ष्म संवेदना व वैचारिक तत्व को केंद्र में रखकर करते हैं। आलोच्य कहानी उत्तम पुरुष में लिखी गई है। कहानी में आदि से अंत तक कहानीकार छाया हुआ है। इसलिए वह द्रष्टा भी है और वक्ता भी। इस कहानी के कथानक की यह विशेषता भी कही जा सकती है कि इसमें घटनाओं की प्रधानता नहीं दिखाई देती अपितु घटनाक्रमों का प्राधान्य दिखाई पड़ता है।

कहानी का कथानक यों है— लेखक सैर करने के इरादे से नैनीताल जाता है। जहाँ वह एक होटल में ठहरता है। वहाँ उसकी मित्रता एक अन्य व्यक्ति से होती है। इसके अलावा कुछ वकीलों से भी लेखक का परिचय हो जाता है। शाम का वक्त है। लेखक इधर-उधर निरुद्देश्य घूमकर एक बेंच पर बैठ जाता है। सामने नैनीताल की सड़कों पर आगंतुकों की भीड़ है। सड़कों पर चलने वाले व्यक्तियों में काफी

Notes

असमानताएं हैं। अंग्रेजों में राजमद हावी है। वहाँ आगंतुकों में ऐसे भारतीय भी हैं, जो हीन भावना से बुरी तरह ग्रसित हैं। वे अंग्रेजों की चापलूसी में लगे हैं। एक ओर भारतीय महिलाएं हैं, जो शील मर्यादा में सड़क पर आ जा रही हैं। दूसरी ओर वे अंग्रेज महिलाएं हैं, जो घोड़े पर सवार होकर भारतीयों पर कोड़े बरसाती जा रही हैं।

लेखक काफी देर से यहाँ बैठा है। रात हुए भी काफी वक्त बीत चला है। वह उठकर जाता था, पर मित्र के आग्रह ने फिर रोक दिया। ठंड बढ़ चली है। लेखक अपने मित्र के साथ बैठा यहाँ प्राकृतिक दृश्य का अवलोकन कर रहा है। तभी उन्हें दूर से आता हुआ एक पहाड़ी बालक दिखा। बालक से पूछताछ के बाद पता चला कि वह गरीब परिवार का रहने वाला है। जब घर में उसके पेट की भूख शांत नहीं हुई तो यहाँ वह नौकरी के मकसद से आया। उसके साथ गांव से एक लड़का आया था। लेकिन उसके मालिक ने उसे किसी बात पर इतना मारा कि उसके प्राण पखेरू ही उड़ गए। वह भी कहीं नौकरी करता था, पर उसके मालिक ने भी उसे वहाँ से निकाल दिया है। लड़का भूखा-प्यासा था, सिर्फ एक कमीज पहने हुए था। लेखक का मित्र दया भाव से उस लड़के को नौकरी दिलाने की नीयत से किसी वकील मित्र के पास लाया। वकील ने उस बालक को नौकरी देने से यह कहकर इन्कार कर दिया “पहाड़ी बड़े शैतान होते हैं।” लेखक व उसका मित्र उस लड़के की मदद करना चाहते हैं, पर उनके पास खुल्ले पैसे नहीं हैं। वह उस बालक को अगले दिन मिलने की सलाह देते हैं। लेकिन दूसरे रोज लड़का तय वक्त पर होटल नहीं पहुंच पाया। वे लोग अपनी गाड़ी में सवार हुए ही थे तभी किसी ने (उस लड़के के बारे में) समाचार दिया कि एक पहाड़ी लड़का सड़क के किनारे, पेड़ के नीचे मर गया है, और उसके शरीर पर बर्फ की हल्की-सी चादर बिछी थी। लेखक ने यह सब सुनकर कहा—अपना-अपना भाग्य।

पात्र और चरित्र चित्रण: इस कहानी में कोई भी केंद्रीय पात्र नहीं है। यदि शास्त्रीय आधार पर इस कहानी का विवेचन किया जाए तो हम कह सकते हैं कि यह नायक विहीन कहानी है। इस कहानी का केंद्रीय पात्र वह अभागा लड़का है। यह बालक अत्यंत गरीब परिवार का है और भूख-प्यास व ठंड से तड़प कर दम तोड़ देता है। जैनेंद्र इस पात्र का सफलतापूर्वक चरित्र गढ़ सकते थे, पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। उन्होंने इस कहानी के पात्र का वर्णन वस्तुगत किया है, जैसे उपन्यास सम्राट् प्रेमचंद व उनके वर्ग के कथाकार करते रहे।

कहानी में पात्र व्यक्ति के रूप में वर्ग के प्रतीक हैं। अंग्रेज राजमद से चूर वर्ग के प्रतीक हैं। कुछ भारतीय पात्र हैं, जो ऐसे चापलूसों के प्रतीक हैं, अंग्रेजों के टट्टू हैं। लेखक मित्र में करुणा का भाव तो है, पर सतही। वह बेसहारे पहाड़ी बालक की मदद करना तो चाहता है, पर दस रुपये से छोटा नोट उसके पास नहीं है, इसलिए उस निरीह बालक की मदद नहीं करना चाहता। लेखक का मित्र दुविधा में है। वह कैसे उस निरीह बालक की मदद करे। कहानी का एक पात्र नायक भी है। वह न केवल इस घटना का दृष्टा है, अपितु वक्ता भी है। उसमें तटस्थता है, लेकिन उसमें स्वभाव जन्य करुणा व मार्मिकता भी है। उसके मित्र के पास दस रुपये हैं, लेखक का मित्र जब बालक को देने के लिए छोटा नोट मित्र से मांगता है, तो लेखक उसे बता देता है, उसके पास भी दस रुपये से कोई छोटा नोट नहीं है। इस पर लेखक कृत्रिम करुणा पर व्यंग्य किए बिना भी नहीं रहता। वह मित्र को दस का नोट दे देने की ही सलाह देता है। इसी प्रकार का इस कहानी में एक अन्य पात्र है— वकील साहब, जिन्हें नौकर की आवश्यकता तो है, लेकिन उस बालक को नौकरी न देकर भला-बुरा कहते हैं।

कहानी के सभी पात्र ‘टाइप’ हैं। पहाड़ी बालक को भी जीता जागता व्यक्ति पात्र नहीं कहा जा सकता, वह आर्थिक विपन्नताओं में ग्रसित दीन-हीन व बेसहारा बालक का प्रतीक है। यह वह बालक है,

जो इस भौतिक संसार में, अपने लिए पूरी क्षमता के बाद भी दो जून की रोटी का इंतजाम नहीं कर पाता। अंत में भूखा-प्यासा सड़क के किनारे ठंड में सिकुड़ कर दम तोड़ देता है।

देश-काल और वातावरण: कहानी 1929 में लिखी गई। उस वक्त देश गुलाम था। इस कहानी की पूरी घटना नैनीताल में घटी है। यह जगह अपने सौंदर्य के लिए विश्व विख्यात है। आर्थिक दृष्टि से संपन्न लोग यहाँ नैसर्गिक सुख भोगने के लिए आते हैं। अंग्रेज तो तब हिंदुस्तान के मालिक ही थे। उस समय वे भारतीयों पर किस कदर जुल्म ढाया करते थे, और भारतीय भी कैसे उनके कदमों में बैठ खुशामद करते थे। यह चित्र इस कहानी में सजीव रूप से उतार दिया गया है। कुछ ऐसे भारतीयों की भी देश में कमी नहीं थी, जिन्होंने नैतिक मर्यादा तक समाप्त कर दी थी।

कहानी में अपने समय के वातावरण का यथार्थ रूप से चित्रण है। देश में प्रमुख रूप से दो वर्ग हैं— अमीर व गरीब। अमीर विलासता का जीवन व्यतीत कर रहा है, और गरीब के पास दो वक्त की भूख शांत करने तक का साधन नहीं। यह गरीब ऐसा है जिसके पास पहनने के लिए कपड़े तक नहीं हैं। वह परिश्रम करता है, पर उसके श्रम का पैसा तक अमीर वर्ग नहीं देना चाहता। तभी तो वह बालक लेखक के मित्र को बताता है— मालिक ने काम करवाकर बिना पैसे दिए नौकरी से अलग कर दिया। और इन निरीह बालकों के साथ अमीर वर्ग किस कदर बदसलूकी से पेश आता है, यह बालक के इस बयान से पता चलता है कि उसके साथ गांव से एक दूसरा लड़का भी आया था, पर एक रात मालिक ने नाराज होकर उस बालक को इतना मारा कि वह मर ही गया। यह उस समय का सजीव चित्र है। हालांकि यह अमीर-गरीब में फर्क आज भी है, पर पहले तो हालत इससे भी बदतर थे। कहानी की पूरी की पूरी घटना नैनीताल में शासक अंग्रेजों व शासित भारतीय परिवारों की जीवन प्रणाली के मध्य विषमता के तीखे बोध के बीच घटित होती है। इस विषमता ने भारतीयों को आकंट डुबो दिया था। दरअसल आलोच्य कहानी दो वर्गों की मानसिकता का सजीव चित्र प्रस्तुत करती है। इसके अतिरिक्त कहानी में आर्थिक निर्धनता से ग्रसित भारतीयों की हीन भावना का चित्र भी प्रस्तुत है। निष्कर्षतः ‘अपना-अपना भाग्य’ कहानी देश-काल और वातावरण की दृष्टि से सफल कहानी है। इसमें युगीन वातावरण का चित्र अत्यंत सूक्ष्मता से प्रस्तुत है।



Did u know? ‘अपना-अपना भाग्य’ में आर्थिक विषमता का अंकन किया गया है। पूंजीपति अपने स्वार्थ में अंधे रहते हैं। वे गरीबों पर अत्याचार करते हैं। इसका मर्मस्पर्शी चित्रण जैनेन्द्र ने इस कहानी में किया है।

कथोपकथन अथवा संवाद योजना: किसी भी कहानी में कथोपकथन या संवाद की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कथोपकथन के माध्यम से कथाकार दो उद्देश्य पूरे करता है। पहला, कहानी को विकास प्रदान करता है, और दूसरा चरित्र को विश्लेषित करता है। अपना-अपना भाग्य कहानी में रचनाकार संवादों के दो माध्यम से इन दोनों विशेषताओं को ध्वनित करने में सफल रहा है। आलोच्य कहानी के संवादों के माध्यम से कथाकार जहाँ कथानक का विकास करता है, वहाँ बालक की विवशताएँ, व उसके साथ धनाढ्य वर्ग द्वारा की जा रही बदसलूकी का चित्रण भी करता है। इस प्रकार का एक संवाद यहाँ विचारणीय है—

“तू कहां जा रहा है रे?”

उसने अपनी सूनी आँखें फाड़ दीं।

“दुनिया सो गई, तू ही क्यों घूम रहा है।”

Notes

बालक मौन-मूक, फिर भी बोलता हुआ चेहरा लेकर खड़ा रहा।

“कहां सोएगा?”

“यहीं कहीं”

“कल कहां सोया था?”

“दुकान पर”

“आज वहां क्यों नहीं।”

“नौकरी से हटा दिया।”

“क्या नौकरी थी?”

“सब काम! एक रुपया और जूठा खाना।”

“फिर नौकरी करेगा?”

“हां”

“आज क्या खाना खाया?”

“कुछ नहीं।”

“अब खाना मिलेगा?”

“नहीं मिलेगा।”

“यों ही सो जाएगा?”

“हां”

“कहां?”

“यहीं कहीं”

“इन्हीं कपड़ों से?”

बालक फिर आँखों से बोलकर मूक खड़ा रहा। आँखें मानों बोलती थीं:

“यह भी कैसा मूर्ख प्रश्न।”

“मां-बाप हैं?”

“हां?”

“कहां?”

“पंद्रह कोस दूर गांव में”

“तू भाग आया!”

“हां”

“क्यों?”



Notes

इस कहानी में आर्थिक विषमता के कारण गरीबी में घिरे पहाड़ी बालक की मृत्यु का चित्रण किया गया है।

Notes

“मेरे कई छोटे भाई-बहन हैं—सो भाग आया! वहां काम नहीं, रोटी नहीं। बाप भूखा रहता था और मारता था। मां भूखी रहती थी और रोती थी। सो भाग आया। एक साथी और था। उसी गांव का था—मुझसे बड़ा। दोनों साथ यहाँ आए थे। वह अब नहीं है।”

“कहा गया?”

“मर गया।”

‘अपना-अपना भाग्य’ कहानी के संवाद चुस्त हैं। कहानी को चरमोत्कर्ष तक पहुंचाने में समर्थ हैं। कहानीकार को कथानक के सूक्ष्म विवेचन के लिए विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता। बल्कि संवाद कथानक को आगे बढ़ाते रहते हैं। इस प्रकार इस कहानी में संवाद संक्षिप्त हैं, और भावाभिव्यक्ति में पूर्णतः सफल हैं।

भाषा-शैली: जैनेन्द्र की कहानियाँ भाषा-शैली की दृष्टि से सफल हैं। उन्होंने भाषा की दृष्टि से अनेक प्रयोग किए हैं। उनमें भावानुकूल भाषा प्रस्तुत करने की अनुपम क्षमता है। ‘अपना-अपना भाग्य’ कहानी घटना प्रधान होने के साथ-साथ भावात्मक व संवेगात्मक भी है। कहानी में जहाँ घटनाओं की प्रधानता है, वहाँ वर्णात्मकता भी है। किंतु उस वर्णन से कहीं भी व्यक्तिनिष्ठता नहीं दिखाई पड़ती। जहाँ कहानी में संवेगात्मक भाव हैं, वहाँ वाक्य छोटे हैं। लेकिन स्पष्ट व चुस्त हैं। रचनाकार ने कहानी में मध्यम वर्ग की असंगतियों व कमजोरियों को व्यक्त किया है। इसके लिए उन्होंने ऐसी भाषा का चुनाव किया है, जो भावों के रहस्यमय आवरणों को धीरे-धीरे अनावृत करते चलते हैं। जैनेन्द्र की भाषा-शैली को इस कहानी में दो रूपों में देखा जा सकता है। उनकी वृत्ति कभी तो वस्तुओं या वृत्तों का वर्णन करने में रमती है, या फिर कहीं संवाद शैली में। ‘अपना-अपना भाग्य’ में दोनों प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया गया है। भाषा शैली कहानी में कहीं भी आरोपित नहीं दिखाई देती। स्वाभाविक लगती है। भाषा प्रयोग करते समय व पात्रों के संस्कार और उनकी योग्यता की भली भाँति परख कर लेते हैं। तभी उनके पात्रों के संवाद अस्वाभाविक प्रतीत नहीं होते। लेखक का मित्र बालक के लिए ‘तू’ का प्रयोग करता है। इससे स्पष्ट होता है कि रचनाकार भाषा-शैली के प्रति काफी सतर्क है। जैनेन्द्र की भाषा-शैली में समकालीन काव्य का प्रभाव भी परिलक्षित होता है, इसलिए उनकी भाषा में आलंकारिता भी विद्यमान है।

“नैनीताल की संध्या धीरे-धीरे उतर रही थी। रूई के रेशे से, भाप से बादल हमारे सिरों को छू-छू कर बेरोक घूम रहे थे। हलके प्रकाश में और अंधियारी से रंग कर कभी वे नीले दिखते, कभी सफेद और फिर जरा देर में अरुण हो जाते। वे जैसे हमारे साथ खेलना चाह रहे थे।”



Task

इस कहानी के उद्देश्य को स्पष्ट करें।

“सब सन्नाटा था। तल्लीताल की बिजली की रोशनियां दीप मालिका-सी जगमगा रही थी। वह जगमगाहट दो मील तक फैले हुए प्रकृति के जल दर्पण पर प्रतिबिंबित हो रही थीं। और दर्पण का

Notes

कांपता हुआ, लहरें लेता हुआ वह तल उन प्रतिबिंबों को सौ-गुना हजार गुना करके उनके प्रकाश को मानों एकत्र और पूंजीभूत करके व्यस्त कर रहा था। पहाड़ों के सिर पर की रोशिनियाँ तारों-सी जान पड़ती थीं।”

उद्देश्य: ‘अपना-अपना भाग्य’ कहानी में घटनावृत्त की समानता है। कहानी चूँकि प्रेमचंद की कहानी परंपरा से जुड़ी हुई है, इसलिए इसमें तत्कालीन सोदेश्यता भी विद्यमान है। कहानी के कथानक को देखकर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है, रचनाकार का कहानी लेखन का उद्देश्य पूर्व ही निश्चित था। इस कहानी के माध्यम से रचनाकार ने परतंत्र भारत का वर्णन किया है। जब अंग्रेज शासक भारतीयों पर नाना अत्याचार करते थे। रचनाकार ने नैनीताल की सड़कों का वर्णन किया है। इन सड़कों पर जहाँ मर्यादाशील भारतीय नारी आ-जा रही हैं। वहीं छोड़े पर सवार वे अंग्रेज स्त्रियाँ भी हैं, जो निर्दोष भारतीयों पर कोड़े बरसाती चली जा रही हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे भारतीयों का भी चित्रण है, जो हीन भावना से ग्रसित हैं, और अंग्रेजों के खुशामदी टट्टू का काम करते हैं। जैनंद्र के शब्दों में— “इसके साथ ही भारतीयता का एक और नमूना था। अपने को खुरच-खुरच कर बहा देने की इच्छा करने वाले अंग्रेजी दा पुरुषोत्तम भी थे, जो नेटिव को देखकर मुह फेर लेते थे और अंग्रेज को देखकर-आँखें बिछा देते थे, और दुम हिलाने लगते थे।”

जैनंद्र ने इस कहानी के माध्यम से उन व्यक्तियों पर कटाक्ष किया है, जो करुणाशील बनने का नाटक करते हैं। या जिनमें दया सिर्फ सतही ही होती है। लेखक का मित्र उस भूखे-प्यासे निर्धन पहाड़ी बालक की मदद तो करना चाहता है। पर जब में खुले पैसे न होने के कारण नहीं कर पाता। कहानीकार के पूछने पर वह बताता है, “इसे खाने के लिए कुछ देना चाहता था, मगर दस-दस के नोट हैं।”

“नोट ही शायद मेरे पास है—देखूँ”

XX XX XX

मित्र ने पूछा, “तब?”

मैंने कहा, “दस का नोट ही दे दो।” सकपकाकर मित्र मेरा मुँह देखने लगे, “अरे यार बजट बिगड़ जाएगा। हृदय में जितनी दया है, पास में उतने पैसे तो नहीं।”

“तो जाने दो, यह दया ही इस जमाने में बहुत है।” इस संवाद में कथाकार ने अप्रत्यक्ष रूप में अपने मित्र की करुणा पर व्यंग्य किया है।

10.1.4 कहानियों की व्याख्या

1. रामेश्वर बड़े भले स्वभाव का युवक था। उनके चलन में जरा भी खोट न थी, पर था वह आनंदी और निश्चित स्वभाव का। उसने प्रशंसनीय सफलता के साथ बी.ए. पास किया था, पर वह यह नहीं जानता था कि इस दो शब्द की पूँछ से कहाँ और किस तरह का फायदा उठाया जा सकता है। इस पूँछ के लगने के बाद, एक विशिष्ट गौरव से सिर उठाकर राह चलते नेटिव लोगों पर हिकारत की निगाह डालते हुए चलने का अधिकार मिल जाता है – यह भी मूर्ख नहीं समझता था।

प्रसंग: व्याख्येय कथांश श्री जैनंद्र कुमार द्वारा रचित ‘फोटोग्राफी’ नामक कहानी से लिया गया है। इसमें लेखक ने कहानी के नायक रामेश्वर के चरित्र का चित्रण किया है।

व्याख्या: कथाकार कहता है कि रामेश्वर चरित्रवान युवक था। सीधा-साधा स्वभाव था। चरित्र में रत्ती भर दोष नहीं था। पर था वह मस्तमौला। बेफिक्र स्वभाव था उसका। परिश्रम या पढ़ने-लिखने में उसकी विशेष रुचि नहीं थी। उसका भविष्य कैसा बीतेगा, इस बारे में भी वह चिंतित नहीं था। लेकिन विद्यार्थी जीवन में वह काफी पढ़ा था। तभी उसने विशेष योग्यता के साथ बी.ए. पास किया था। बी.ए. पास करने के बाद वह अपने आप को कुछ और समझने लगा था। बी.ए. पास युवक किस तरह अपने जीवन को बेहतर जी सकता है, इसका उसे पता नहीं था। उन दिनों बी.ए. पास करना बहुत बड़ी बात समझी जाती थी। जो भी युवक यह परीक्षा उत्तीर्ण कर लेता था, वही अपने को कुछ समझने लगता था। गांव के लोगों को हिकारत की नजर से देखा करता था। लेकिन रामेश्वर के स्वभाव के साथ ऐसा कुछ नहीं था। बेशक वह बी.ए. पास कर गया था, मगर इससे उसको अहंकार छू तक नहीं गया था। वह उसी तरह सरल व सहज स्वभाव का बना रहा। गांव में अपनी पढ़ाई का रौब जमाना वह नहीं चाहता था। इस झूठी धारणा में उसका कतई विश्वास नहीं था।

विशेष: प्रस्तुत कथांश में रचनाकार ने तत्कालीन शिक्षित युवकों की जीवन-प्रणाली पर गहरा व्यंग्य किया है। “बी.ए. पास किया था पर वह यह नहीं जानता था कि इस दो शब्द की पूंछ से कहां और किस तरह फायदा उठाया जा सकता है।” वाक्य में उपमा अलंकार है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि उस समय शिक्षित युवक को कैसे हिकारत की नजर से देखा जाता था। इसी वाक्य से एक संकेत और ध्वनित होता है कि भारतीयों को शिक्षा यापन से चिढ़ नहीं थी, अपितु हिकारत की महज वजह यह थी कि वह अंग्रेजी शिक्षा पढ़ा है। यह वह समय था जब गांधीजी का प्रभाव भारतीयों पर असर डाले हुए था।

2. इस फोटोग्राफी सूझ के बाद अब वह बिल्कुल ऐसे-गैरे लोगों में अपना कैमरा बाँह पर लटकाए और हाथ में स्टैंड को छड़ी के मानिंद घुमाता हुआ कहीं भी देखा जा सकता है। उसकी अपनी खींची हुई अच्छी-बुरी तस्वीरों के संग्रह में आप एक जाट को दिल्ली के चांदनी चौक के फुटपॉथ पर बोतल लगाए सोडावाटर गटकते पा सकते हैं और होली के उत्सव की खुशी में रंग-बिरंगे उछलते-कूदते आठ-आठ दस-दस ग्रामीणों की नाचती हुई उन्मत्त टोली को पा सकते हैं। सारांश यह है कि उसके चित्र अधिकतर साधारण कोटि के लोगों में से लिए गए हैं।

प्रसंग: व्याख्येय पंक्तियाँ प्रसिद्ध कथाकार स्वर्गीय जैनेन्द्र द्वारा रचित ‘फोटोग्राफी’ कहानी से ली गई हैं। इस अंश में कथाकार ने यह स्पष्ट किया है कि फोटोग्राफी सीखने में रामेश्वर कितना रच-बस गया था। इसके अतिरिक्त इस अंश के माध्यम से कथाकार ने यह संकेत भी दिया है कि फोटोग्राफी का विषय आम आदमी है, बड़े नहीं।

व्याख्या: रामेश्वर को बी.ए. पास करने के बाद भी जब उसके मन के माफिक कोई वाजिब रोजगार नहीं मिला तो उसने फोटोग्राफी के शौक को रोजगार बना लिया। अब उसका स्वभाव पहले जैसा नहीं रहा। उसमें काफी बदलाव आ गया। बी.ए. पास करने के बाद जिन्हें वह हिकारत की नजर से देखता था, वही उसकी फोटोग्राफी के मजबूत बनने लगे। अब वह आम लोगों के बीच ही अपना कैमरा उठाए घूमता है। कैमरा अपनी बाँह पर लटकाए, और कैमरे के स्टैंड को छड़ी की मानिंद घुमाता हुआ वह आम आदमी के फोटो उतारता फिरता है। अभी तक जितने भी चित्र उसने अपने कैमरे में कैद किए हैं, उनमें से कोई भी चित्र राजनेताओं अथवा महान व्यक्तियों का नहीं है। किसी चित्र में उसने ऐसे जाट को कैमरे में कैद किया है, जो चांदनी

Notes

चौक में फुटपाथ पर गटागत सोडा वाटर पी रहा है या किसी फोटो में उसने ग्रामीणों की टोली को होली का हुड़दंग करते दिखाया है। कहने का मतलब यह है कि उसके कैमरे से उतारे गए चित्र साधारण लोगों के हैं। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि रामेश्वर की रुचि असाधारण लोगों में न होकर सामान्य लोगों में है।

विशेष: इस अंश में कथाकार ने रामेश्वर की जीवन दृष्टि का चित्र प्रस्तुत किया है। देसी शब्दों 'ऐरे-गैरे' जैसे शब्दों का इस्तेमाल किया गया है उर्दू के शब्दों का इस्तेमाल बहुतायत में है। वर्णन प्रधान शैली है।

3. प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कुछ घटनाएं ऐसी घट जाती हैं, जिनको वह समाप्त कर देना नहीं चाहता, उनका सिलसिला बराबर जारी रखना चाहता है। श्याम को सदा के लिए भुला देना होगा-भाग्य का यह विधान उसे बहुत कठोर ही मालूम हुआ। उसकी इच्छा थी कि उसके जीवन ग्रंथ के अन्तिम पन्ने तक श्याम व श्याम की अम्मा का संबंध चलता रहे-टूटे नहीं, परंतु अब उनके बीच में दो सौ पचास से ज्यादा मील का व्यवधान है, और उनके जीवन की दिशाएं भिन्न होने के कारण, उस व्यवधान को क्षण-क्षण बढ़ा रही हैं।

प्रसंग: प्रस्तुत कथांश जैनंद्र कुमार द्वारा रचित 'फोटोग्राफी' नामक कहानी से ली गई हैं। रामेश्वर को रेलगाड़ी में श्याम व उसकी मां का चित्र खींचने का मौका मिला था। उस दौरान उसके साथ जो कुछ भी घटा था, वह उसके दिल-ओ-दिमाग में काफी गहरा बैठ गया है। वह उस प्रसंग को जितना ज्यादा भुलाने की कोशिश करता है, वह उतना ही ज्यादा उसे याद आ रहा है। इसी मनःस्थिति का रचनाकार ने यथार्थ चित्र प्रस्तुत इस कथांश में किया है।

व्याख्या: रेलगाड़ी में श्याम और उसकी मां के साथ हुई मुलाकात रामेश्वर किसी भी सूरत में भूल नहीं पा रहा था। हर आदमी की जिंदगी में कभी-कभी ऐसा हदसा हो जाता है, जब वह उसे लाख भूलने की कोशिश करता है, पर वह भूलता नहीं। रामेश्वर के साथ भी ऐसा ही हुआ है। वह अलीगढ़ से दिल्ली की रेलयात्रा के दौरान घटी घटना को भूलना नहीं चाहता। पर वह इस प्रसंग को जिंदगी की आखिरी सांस तक लिए जाना चाहता था। इसे वह अपने जीवन का बेशकीमती रिश्ता बनाए रखना चाहता था। पर उसकी मजबूरी थी। दिल्ली व लाहौर के बीच करीब अढ़ाई सौ मील की दूरी थी। श्याम व उसकी मां लाहौर में रहते थे। इतनी दूरी के रहते वह अपना संपर्क कैसे बनाए रख सकता था। यानी दोनों की दिशाएं अलग थीं। दोनों में बराबर की दूरी थी। पर रामेश्वर था कि उसके दिमाग से यह हादसा निकल ही नहीं पा रहा था।

विशेष: इस कथांश में रचनाकार ने मस्तिष्क की एक स्थिति का विश्लेषण किया है। प्रायः प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कुछ अविस्मरणीय अंश आते हैं, जिन्हें व्यक्ति भूलना चाहकर भी नहीं भूलता या फिर उन्हें भूलना ही नहीं चाहता। पर विवशता ही ये संबंध भूला भी देती है। रामेश्वर अलीगढ़-दिल्ली के बीच 'श्याम व उसकी मां की फोटो की घटना' को भूलना नहीं चाहता। हर वक्त अपने जेहन में रखना चाहता है पर दोनों के बीच अढ़ाई सौ मील दूरी का फासला है। इसी केन्द्र पर यह अनुच्छेद सही मायने में लिखा गया है।

4. मां बड़ी, सज-धज के साथ आई थी। अब फोकस ठीक करके रामेश्वर एक-दो-तीन बोलने को हुआ तो मां ने अपनी सारी शक्ति लगाकर चेहरे पर स्मित हास्य की चमक ले आने का प्रयत्न किया। आह! वह हंसी कितनी रहस्यपूर्ण और कितनी दुःख पूर्ण थी। जितना कि उसमें उल्लास प्रकट करने का प्रयास था, उतना ही उसमें विषम पीड़ा का प्रत्यक्ष दर्शन था।

प्रसंग: प्रस्तुत पंक्तियाँ श्री जैनेन्द्र कुमार द्वारा रचित 'फोटोग्राफी' नामक कहानी से ली गई हैं। इसमें कथाकार ने एक अभागी नारी की पीड़ा का चित्रण किया है। रामेश्वर जब श्याम की माँ की फोटो खींचने के लिए एक-दो-तीन कहता है, तब श्याम की माँ ने चेहरे पर मुस्कराहट प्रकट की। इसी पर रचनाकार ने टिप्पणी की। इन पंक्तियों में इसी का विश्लेषण दृष्टव्य है।

व्याख्या: छह साल के बाद रामेश्वर फोटोग्राफर से रामेश्वर राजनीतिक नेता बन गया। फिर कांग्रेस के अधिवेशन में वह कभी लाहौर गया। अधिवेशन की समाप्ति के बाद लेखक को एक महिला का पुर्चा मिला। पुर्चा लिखने वाली श्याम की माँ थी। उसने लेखक से नियत स्थान पर मिलने का आग्रह किया था। लेखक वहाँ पहुँच गया। आग्रह करने वाली श्याम की माँ फोटो खिंचवाने के लिए सज-धज कर आई थी। यह देख लेखक की हैरानी बढ़ गई। लेखक कैमरा ले आया। उसने कैमरा का फोकस ठीक किया। वह एक-दो-तीन कहने को ही था कि श्याम की माँ ने चेहरे पर हंसी बिखेर दी। लगता था, हंसी लाने की उसे कोशिश करनी पड़ी थी। इस हंसी को स्वाभाविक हंसी नहीं कहा जा सकता था। उसे यह हंसी रहस्यपूर्ण और दुःख प्रकट करने वाली लगी। उसकी हंसी में जहाँ एक प्रकार उल्लास दिखाने की ख्वाइश थी, वहीं उसमें अंतर्वेदना का भाव भी न चाहते हुए झलक रहा था। उस हंसी में सहजता का भाव गायब था, केवल कृत्रिमता ही बची थी।

विशेष: श्याम की माँ अब की बार अकेली ही लेखक को मिली। यह वही महिला थी, जिसकी श्याम को खुश करने की चाह में लेखक ने उसकी माँ की भी झूठी फोटो उतार दी थी, और उसे तब तक चैन नहीं पड़ा था, जब तक कि उसने कैमरे से रील निकालकर बाहर नहीं फेंक दी। अब वह खुद ही फोटो खिंचाने चली आई। उसने इससे पूर्व अपार-कष्ट सहा है। इस कष्ट को छिपाते हुए उसने हंसकर फोटो खिंचाने की कोशिश की। इसी केंद्रीय भाव पर यह अंश लिखा गया है। भाषा संस्कृतनिष्ठ है।

5. यह आकाश ही परमात्मा की गोद है। श्याम उसी गोद में छिपा बैठा है। दिखता भी तो नहीं। देखो, चारों तरफ आकाश है, चारों तरफ देखो, कहीं दिखता है क्या? दिखे, तो मुझे भी दिखाना। मैं भी देखूँगी। चुपचाप ही चला गया। अगर मैं उसे देख पाऊँ, तो कहूँ, “देख तेरा तछबील वाला मामा देख रहा है— रामेश्वर वह तुम्हें याद करता गया है।”

प्रसंग: व्याख्येय गद्यांश श्री जैनेन्द्र कुमार द्वारा रचित 'फोटोग्राफी' कहानी से लिया गया है। श्याम की माँ ने रामेश्वर को एक नियत स्थान पर मिलने के लिए बुलाया है। रामेश्वर के आने पर उसने उसे श्याम की मृत्यु का दुःखद समाचार दिया है। श्याम की मृत्यु का समाचार देते हुए माँ का वात्सल्य व कारुण्य छलक आया है। इन पंक्तियों में यही करुणामय दुःखद भाव चित्रित है।

व्याख्या: छह साल बाद लाहौर में जब रामेश्वर श्याम की माँ से मिला। तब तक उस पर दुःख की बरसात हो चुकी थी। श्याम की माँ ने रामेश्वर को बताया कि उसका बेटा उसे बहुत चाहता था। लेकिन अब वह इस संसार में नहीं रहा है। वह अब मेरी गोदी में नहीं है, अपितु परमात्मा की गोद में बैठा है। यह आकाश ही ईश्वर की गोद है। ईश्वर को देखा नहीं जा सकता। इसलिए श्याम को भी नहीं देखा जा सकता। वह रामेश्वर को संबोधित करते हुए कहती है कि अगर श्याम तुम्हें कभी दिखाई दे तो मुझे भी दिखाना। वह उसके दर्शन के लिए आतुर है। वह रामेश्वर से कहती है कि मुझे इसी बात की तकलीफ है कि वह मुझे बिना कुछ कहे ही छोड़कर चला गया। वह यह भी बताती है कि चूँकि श्याम तुम्हें याद करते हुए गया है कि अगर वह मुझे कहीं

Notes

दिखाई दे जाए तो मैं उसे कहूँगी—देख! तुम्हारा तस्वीर वाला मामा तुम्हें देख रहा है। वह उसे बताती है कि उसे श्याम बेहद प्यार करता था।

विशेष: इन पंक्तियों में कथाकार ने पुत्र दुःख से दुःखी श्याम की मां का कारुणिक चित्र प्रस्तुत किया है। पुत्र की असामयिक मृत्यु ने मां को तोड़कर रख दिया है।

6. मां की हालत शब्द-शब्द पर क्षीण होती जा रही थी। मां ने कहा, “सुनो, एक महीना हुआ, मैं विधवा हो गई। वह भी चौथी ही तारीख थी। चौथी तारीख और मार्च का महीना। आज भी यह चौथी मार्च का दिन मेरे जीवन की अंतिम साध का अंतिम दिन है। आज मुझे भी अंतर्हित हो जाना है। मैंने जहर खाया है, तीन घंटे होने आए हैं, अब जहर की अवधि का अंतिम क्षण दूर नहीं है। मैं फिर दुनिया में न रहूँगी। रामेश्वर के देखते-देखते मां की देह निष्प्राण होकर गिर पड़ी।

प्रसंग: व्याख्येय गद्यांश विख्यात रचनाकार श्री जैनंद्र कुमार द्वारा रचित ‘फोटोग्राफी’ शीर्षक कहानी से लिया गया है। इसमें रामेश्वर व श्याम की अंतिम मुलाकात का वर्णन है। श्याम की मां रामेश्वर को श्याम की मृत्यु व अपने वैधव्य के संबंध में बताते-बताते अत्यंत करुण हो चली थी। उसके अंतःकरण से शब्द धीरे-धीरे निकलने बंद होने लगे थे। पति व पुत्र की मृत्यु के उपरांत वह इतनी भावुक हो उठी थी कि अपने जीवन को निरर्थक समझ बैठी। उसने जहर खा लिया। इस अंश में उसकी इस संबंध में स्वीकारोक्ति भी प्रस्तुत है, और पुत्र व पति का मार्मिक वियोग भी।

व्याख्या: रामेश्वर व श्याम की मां की आखिरी मुलाकात का वर्णन करते हुए रचनाकार कहता है कि श्याम की मां रामेश्वर से जब यह सब कह रही थी, तब तक उसे जहर खाए करीब तीन घंटे हो चुके थे। जहर का प्रभाव ज्यों-ज्यों तेज होता जा रहा था, त्यों-त्यों उसकी जीवन नैया भी डूबती जा रही थी। श्याम की मां रामेश्वर से अंतिम क्षण आते-आते बोली, “रामेश्वर! करीब एक माह पूर्व मेरे पति का देहांत हो गया है। मैं विधवा हो गई हूँ। इस बीच मेरे जीवन में बहुत कुछ घट चुका है। छह साल पहले अलीगढ़ से दिल्ली आते हुए रेलगाड़ी के डिब्बे में श्याम के साथ मेरी मुलाकात आप से हुई थी। आज ही के दिन यानी चार मार्च को श्याम की मृत्यु हुई थी। आज भी संयोग से चार मार्च का ही दिन है। यह दिन मेरे भी जीवन का आखिरी दिन ही होगा। विधवा होने के बाद मेरा इस संसार में रहने का कोई अर्थ नहीं रह गया था। न ही मैं पति-पुत्र वियोग सहन कर सकती थी। इसलिए मैंने आत्महत्या का निश्चय किया और जहर खा लिया। जहर का असर अब काफी बढ़ चला है। तीन घंटे के भीतर यह अपना पूरा असर दिखा देगा। यानी मेरा जीवन अब कुछ ही क्षणों का रह गया है। मेरा मृत्यु काल निकट है। वह जब यह सब कुछ कह रही थी। धीरे-धीरे उसका शरीर निर्जीव होकर गिर पड़ा। रामेश्वर के जीवन का एक महत्वपूर्ण पृष्ठ हमेशा-हमेशा के लिए खो गया।

विशेष: प्रस्तुत अंश भावुक श्याम की मां का चित्रण है। वह पुत्र एवं पति का वियोग सहन नहीं कर पाई और अंत में उसने जहर खाकर अपनी जीवन-लीला समाप्त कर ली।

7. लेखकी और लीडरी को गड़ढे में डाल रामेश्वर फिर भूली हुई फोटोग्राफी के ज्ञान को चेताने लगा। साल भर में उसने श्याम व श्याम की अम्मा का पूर्णाकार चित्र तैयार कर लिया। जिस कमरे में वह चित्र लगा, वह उसके आत्मचिंतन का कमरा बन गया। वहाँ और चित्र न रह सकता था। फोटोग्राफी को ही अपना व्यवसाय व ध्येय बनाया। थोड़े ही समय में वह मार्के का फोटोग्राफर

हो उठा। सभी बढ़िया अखबारों में श्याम और उसकी अम्मा का वह चित्र निकला, और सभी में उसकी सराहना हुई।

प्रसंग: प्रस्तुत कथांश श्री जैनेन्द्र कुमार द्वारा रचित 'फोटोग्राफी' कहानी से लिया गया है। इस अंश में लेखक ने यह बताने की कोशिश की है कि श्याम की माँ की करुण कहानी का रामेश्वर पर गहरा असर पड़ा। उसकी समूची जीवन धारा ही बदल गई। उसने फोटोग्राफी का पुराना धंधा दोबारा अपना लिया। इसी श्याम की माँ ने उसके जीवन को पहले भी दिशा दी थी। तब कोई काम न मिलने पर उसने बेरोजगारी से आजिज आ फोटोग्राफी का धंधा अपना लिया था। एक बार अलीगढ़ से दिल्ली आते हुए रेलगाड़ी के डिब्बे में उसकी मुलाकात श्याम की माँ से हुई थी। इस मुलाकात में लेखक से श्याम इतना घुल-मिल गया था कि उसे 'मामा' कहकर याद करता रहा। लेखक भी अब फोटोग्राफी छोड़कर राजनीति में आ गया। फिर कभी लाहौर में कांग्रेस के अधिवेशन में श्याम की माँ ने लेखक को पुर्चा भेजकर शहर के पार्क में बुलाया। पार्क में पहुंचने पर रामेश्वर को पता चला कि श्याम की माँ पर इन दिनों काफी बुरा घटा है। उसका पुत्र श्याम अब इस दुनिया में नहीं रहा। पति भी चल बसा है। पति पुत्र वियोग अब वह सहन नहीं कर पाई। लिहाजा उसने जहर खा लिया और उससे बातें करती-करती वहीं ढेर हो गई। रामेश्वर की इस घटना से जीवन धारा ही बदल गई। इसी बदलाव का इन पंक्तियों में चित्रण है।

व्याख्या: श्याम की माँ के दुःखद निधन से रामेश्वर की जीवन प्रणाली ही बदल गई। श्याम की माँ से पहली मुलाकात और आखिरी मुलाकात के बीच वह प्रतिष्ठित व्यक्ति बन चुका था। लेकिन श्याम की माँ के दुःखद अंत के बाद उसने अपनी जीवन-शैली ही बदल दी। उसने दोबारा फोटोग्राफी के धंधे को अपना लिया। एक साल तक उसने कड़ी मेहनत की और श्याम की माँ का एक विशाल चित्र बनाया। उसने यह चित्र कमरे में लगा लिया। उसे याद आता है कि आज से छह साल पहले उसने रेलगाड़ी में श्याम को बहलाने के लिए फोटो खींचने का नाटक किया था। लेकिन श्याम और उसकी माँ ने इस नाटक को वास्तविक समझ लिया था। दुर्भाग्य से श्याम की माँ के दुःखद अंत ने उसके तन-मन को झकझोर कर रख दिया। उसने श्याम व उसकी माँ का एक संपूर्ण चित्र बनाकर कमरे में टांग लिया। उसने मेहनत की। देखते-देखते वह एक कामयाब फोटोग्राफर बन गया। उसने श्याम व उसकी माँ का चित्र शहर के बेहतरीन अखबारों में छपने के लिए भेजा। वह छपा और पूरे शहर में लेखक की तारीफ हुई। रामेश्वर को लगा यह गौरव उसे 'श्याम की माँ' के कारण मिला।

विशेष: कभी-कभी जीवन में घटना महत्वपूर्ण परिवर्तन कर देती है। एक बालक को बहलाने के लिए किया गया झूठा नाटक उसके जीवन को बदल गया। यही नहीं उसे पहले की अपेक्षा अधिक यश प्रदान किया।

8. मौन मुग्ध संध्या स्मित प्रकाश से हंस रही थी। उस समय गंगा निर्जन बालुका स्थल पर एक बालक व बालिका अपने को व सारे विश्व को भूल, गंगा तट के बालू और पानी को अपना एक मात्र आत्मीय बना, उनसे खिलवाड़ कर रहे थे। प्रकृति इन निर्दोष परमात्म खंडों को निस्तब्ध व निर्निमेष निहार रही थी। बालक कहीं से एक लकड़ी लाकर तट के जल को छटा-छटा उछाल रहा था। पानी मानों चोट खाकर भी बालक से मित्रता जोड़ने के लिए विह्वल हो उछल रहा था। बालिका अपने पैरों पर रेत जमा कर थोप-थोपकर एक भाड़ बना रही थी।

Notes

प्रसंग: व्याख्येय कथांश श्री जैनद्र कुमार द्वारा रचित 'खेल' कहानी से लिया गया है। कहानी का आरंभ लेखक ने प्राकृतिक पृष्ठभूमि से किया है। कहानीकार इसी पृष्ठभूमि का चित्रण करते हुए कहता है।

व्याख्या: संध्या का समय था। सर्वत्र नीरवता छाई हुई थी। मंद-मंद प्रकाश फैला था। गंगा के सुनसान किनारे पर बालू बिखरा था। रेतीले तट पर एक बालक व बालिका संसार के शोर-शराबे से दूर बालू और पानी के खेल में लीन हैं। इन दोनों मासूम बालकों को दीन-दुनिया की कोई खबर-फिक्र नहीं है। प्रकृति ईश्वर की इन दोनों निमृत्तियों को एकटक निहार रही थी। बालक कहीं से लकड़ी का टुकड़ा ले आया था और वह जल के साथ खिलवाड़ कर रहा था। उधर वह बालिका भी बालू रेत को अपने पैरों पर थाप-थापकर भाड़ बना रही थी। बालक लकड़ी की पट्टी से पानी को जितना छप-छप कर रहा था पानी बालक से उतना ही टकराने की बेचैनी दिखा रहा था। भाव यह है कि बालक लकड़ी की पट्टी से पानी को धकेल रहा था, और पानी भी दोबारा उसी पट्टी से टकरा रहा था।

9. बालिका ने दो-एक पक्के हाथ भाड़ पर लगाकर देखा-भाड़ अब बिल्कुल बन गया है। मां जिस सतर्क सावधानी के साथ अपने नवजात शिशु को बिछौने पर लिटाने को छोड़ती है, वैसे ही सुरबाला ने अपना पैर धीरे-धीरे भाड़ के नीचे से खींच लिया। इस क्रिया में वह सचमुच भाड़ को पुचकारती सी जाती थी। उसके पांव पर ही भाड़ टिका है। उसी का आश्रय हट जाने पर बेचारा कहीं टूट न पड़े। पैर साफ निकालने पर भाड़ जब ज्यों का त्यों टिका रहा, तब बालिका एक बार आह्लाद के साथ नाच उठी।

प्रसंग: प्रस्तुत पंक्तियां जैनद्र कुमार द्वारा रचित 'खेल' कहानी से ली गई हैं। इसमें कहानीकार ने बाल-मनोविज्ञान का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है।

व्याख्या: बालिका के मनोविज्ञान का विश्लेषण करते हुए कहानीकार कहता है कि जब बालिका को यह विश्वास हो गया कि भाड़ बनकर तैयार हो गया है तो उसने उस पर एक दो पक्के हाथ मारे जिससे कि यह सुनिश्चित हो जाए कि भाड़ पक्का बन गया है। इसके बाद उसने बहुत ही सावधानी के साथ अपना पैर बाहर खींचा। जिस प्रकार एक मां अपने नवजात शिशु को बिस्तर पर लिटाते समय बहुत सावधानी और सतर्कता बरतती है, ठीक उसी प्रकार उस लड़की ने पूरी सावधानी बरतते हुए अपना पैर बाहर खींचा। भाड़ में से अपना पैर बाहर खींचते समय वह एक नवजात शिशु की मां की भांति वस्तुतः पुचकार सी रही थी। उसे यह अच्छी तरह ज्ञात था कि बालू का बना हुआ वह भाड़ केवल उसके पैर के सहारे स्थित है और तनिक सी भी असावधानी होने पर वह चूर-चूर हो जाएगा। जब वह पूरी सावधानी बरतने के बाद भाड़ को तनिक भी क्षति पहुंचाए बिना भाड़ में से अपना पांव निकालने में सफल हो गई, तो स्वभावतः वह अत्यधिक प्रसन्न हुई। उसकी सारी साधना सफल हो गई।

विशेष: प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक ने बाल-सुलभ औत्सुक्य का सजीव चित्रण किया है।

10. सुरो रानी मूक खड़ी थी। उनके मुंह पर जहाँ अभी परम विशुद्ध रस था, वहाँ एक शून्य फैल गया। रानी के सामने एक स्वर्ग आ खड़ा हुआ था। वह उन्हीं के हाथों का बनाया हुआ था। और वह एक व्यक्ति को अपने साथ लेकर उस स्वर्ग की एक-एक मनोरमता और स्वर्गीयता को दिखलाना चाहती थी। हां हंत! वही व्यक्ति आया और उसने अपनी लात से उसे तोड़-फोड़ डाला। रानी हमारी बड़ी व्यथा से भर गई।

प्रसंग: प्रस्तुत पंक्तियाँ जैनेन्द्र कुमार द्वारा रचित 'खेल' नामक कहानी से उद्धृत की गई हैं जिसमें लेखक ने दोबारा एक बालिका के भोले मन के कल्पना-लोक के बलात् छिन्न-भिन्न हो जाने का मार्मिक चित्रण किया है। सात वर्ष की एक बालिका ने बालू का भाड़ बनाकर तरह-तरह की सुखद कल्पनाएं संजोए थीं, जो कि किसी निर्मोही की लात के प्रहार से धूलि-धूसरित हो गईं। इस क्रूर प्रहार ने बालिका के कोमल मन को बुरी तरह तोड़ दिया। लेखक ने प्रस्तुत पंक्तियों में उसी स्थिति का वर्णन किया है।

व्याख्या: लेखक कहता है कि अपनी कल्पनाओं के संसार को इस प्रकार धूल मिलते देखकर सुरबाला अर्थात् सुरो हतप्रभ हो गई, वह सर्वथा मौन हो गई। जहां अभी कुछ ही क्षणों पहले उसके मुख मंडल पर अद्भुत उत्साह बिखरा था। आनंद का अनंत प्रसार था, वहां अब एक अंधकारपूर्ण शून्य स्थापित हो चुका था। उसका उत्साह, उसका उल्लास मनोहर की एक लात की चोट से कहां खो गया। रानी अर्थात् सुरबाला ने बालू का भाड़ नहीं बल्कि एक स्वर्ग का निर्माण किया था। बाल कल्पना ने एक ऐसे स्वर्ग की रचना की थी जिसमें सर्वत्र सुख-सौंदर्य ही है, उल्लास और वैभव ही है। बड़े यत्नपूर्वक बनाई गई वह रचना समय के तूफान ने धराशायी कर दी थी, बालिका का कोमल मन टूट गया था। स्वयं सुरबाला ने अपनी कल्पना के स्वर्ग की रचना की थी और उसकी कामना थी कि वह मनोहर को उस स्वर्ग लोक की लोकयात्रा कराएगी, वहां के सभी सुख-वैभव प्रदान कराएगी, उसकी मनोहर छटा के दर्शन कराएगी। किंतु उसका सबसे बड़ा दुर्भाग्य यही था कि जिस मनोहर के लिए उसने उस स्वर्ग की रचना की थी, उसी मनोहर ने लात मारकर उस वर्ग को चकनाचूर कर दिया था। स्वभावतः सुरबाला का मन टूट गया। उसने जो सुरम्य व अनुपम सपने संजाए थे, वे छिन्न-भिन्न हो गए, उसका सारा संसार ही मानो लुट गया था।

11. हमारे विद्वानों पाठकों में से कोई होता, तो उन मूर्खों को समझाता—यह संसार क्षणभंगुर है। इसमें दुःख क्या और सुख क्या? जो जिसने बनाया है, वह उसी में लय हो जाता है। इसमें शोक व उद्वेग की क्या बात है। यह संसार जल का बुदबुदा है। फूटकर किसी रोज जल में ही मिल जाएगा। फूट जाने में ही बूंद-बूंद की सार्थकता है। जो यह नहीं समझते वे दया के पात्र हैं। री, मूर्ख लड़की, तू समझ, सब ब्रह्माण्ड ब्रह्म का है, और उसी में लीन हो जाएगा। इसलिए तू किसलिए व्यर्थ व्यथा सह रही है। रेत का तेरा भाड़ क्षणिक था, क्षण में लुप्त हो गया। रेत में मिल गया। इसी पर खेद मत कर, इससे शिक्षा ले। जिसने लात मार कर तोड़ा है, वह तो परमात्मा का केवल साधन मात्र है। परमात्मा तुझे नवीन शिक्षा देना चाहते हैं। लड़की तू मूर्ख क्यों बनती है। परमात्मा की इस शिक्षा को समझ व परमात्मा तक पहुंचने का प्रयास कर आदि-आदि।

प्रसंग: व्याख्येय कथांश श्री जैनेन्द्र कुमार द्वारा रचित 'खेल' कहानी से लिया गया है। इसमें लेखक ने दो बालकों में एक सामान्य सी दिखने वाली घटना को दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने की कोशिश की है। एक बालिका ने बड़ी लगन से भाड़ बनाया। वह बड़े गर्व से अपनी कृति अपने साथी मनोहर को दिखाने को हुई तो उसके साथी ने एक लात मार कर उस भाड़ को तोड़ दिया। बालिका का कोमल मन टूट गया। इन पंक्तियों में लेखक ने इस साधारण से प्रकरण को असाधारण बना दिया है।

व्याख्या: सुरो ने बड़े जतन से भाड़ बनाया। लेकिन मनोहर ने एक लात से भाड़ तोड़ डाला। बालिका इससे व्यथित हो गई। लेखक इसी प्रकरण में कहता है कि यदि विद्वानों ने इस घटना

Notes

को देखा होता तो वे इन दोनों बालक-बालिका की मूर्खता पर हंसते। उन्हें समझाते, 'बच्चों, तुम इस भाड़ के टूट जाने पर इतने दुःखी हो रहे हो। तुम्हें जानना चाहिए कि यह भाड़ क्या? सारा संसार ही क्षणभंगुर है। यह संसार का अपरिवर्तनीय नियम है कि जो इस संसार में पैदा हुआ है, उसकी मृत्यु निश्चित है। इस अटल नियम से व्यथित होने की आवश्यकता नहीं है न ही खुश होना ही ठीक है। यह जान लेना चाहिए कि इस संसार में जो कुछ भी विद्यमान है, वह ईश्वर प्रणीत है। जितना भी यह दृश्यमान संसार है, अंत में ईश्वर में लीन हो जाता है। जब सब कुछ ईश्वर है। सृष्टि व विनाश ईश्वराधीन है, तब इस क्षणभंगुर संसार के लिए चिंता करने की आवश्यकता क्या है? क्या आवश्यकता है नश्वर संसार से प्राप्त दुःखी-सुखी होना। वस्तुतः यह संसार जल के बुलबुले के समान है। इसी अथाह सागर में लुप्त हो जाना है। बुलबुले की सार्थकता भी यही है कि वह फूटकर इसी जल राशि में लीन हो जाए। जो संसार के इस सत्य से दूर भागते हैं, उन्हें संसार का दुःख व्यथित करता है। ऐसे व्यक्ति समझदार नहीं वे दया के पात्र हैं। वे मोहजनित अज्ञान के कारण ही कष्ट पा रहे हैं। मूर्ख लड़की, तू भी संसार के मोह में लीन है। शायद इसीलिए कष्ट अनुभव कर रही है। तुझे यह बात अच्छी तरह जान लेनी चाहिए कि यह सारा संसार ब्रह्मलीन है। यानी यह संसार ब्रह्म का है और अंततः इसी सत्ता में इसे विलीन होना है। जब यह सच है, मानव ने इस संसार में आना भी है और जाना भी है। तब इस क्षणभंगुरता से व्यथित होने की क्या आवश्यकता है। इसलिए मनोहर द्वारा भाड़ को लात मार कर तोड़ देने से व्यथित होने की आवश्यकता नहीं है। तू तो व्यर्थ ही व्यथित हो रही है। आखिर बालू का बना भाड़ तो बालू में ही लीन होना था। बेशक यह भाड़ तुमने यत्नपूर्वक बनाया है। पर था वह क्षणिक ही। उसे बालू रेत में ही मिलना था। भाड़ का अंत निश्चित था। इसलिए जब यह भाड़ रेत में मिल गया है तो व्यथित मत हो चूँकि ऐसा ही होना था। तुझे इस घटना से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। तुमने भाड़ बनाया था, यह सिर्फ सांसारिक भ्रम है। वास्तव में इस भाड़ को बनाने वाला परमात्मा था, तुम तो उसका साधन मात्र थी। इसी तरह तुम्हारा यह सोचना भी गलत है कि भाड़ तोड़ने वाला मनोहर ही है। असल में भाड़ को तोड़ा भी परमात्मा ने ही है, मनोहर तो सिर्फ परमात्मा का साधन मात्र रहा है। संसार में हम जो कुछ भी करते हैं, वह परमात्मा के कहे पर करते हैं। या यों कहिए कि इस दृश्यमय संसार में जो कुछ भी व्यक्त करता है, वह ईश्वरीय प्रेरणा से करता है। असल में इस भाड़ के टूटने से परमात्मा यह शिक्षा देना चाहते हैं कि भाड़ के टूटने से मन छोटा करने की जरूरत नहीं। भाड़ की गति तो यही थी। इसमें मनोहर का जरा भी कुसूर नहीं है। मूर्ख बालिका! यदि तुम इस सारे प्रकरण का रहस्य जान जाओगी, तो तुम्हें न तो भाड़ टूटने का कष्ट होगा और न ही किसी को दोषी करार दोगी। अतः ईश्वर के इस अपरिवर्तनीय विधान पर विश्वास कर। तेरी पूरी कथा का यही मर्म है। इसे पूरी तरह मन में बसा लेने से तुम्हारा मन संयमित हो जाएगा। राग-द्वेष भी मिट जाएंगे।

12. बालिका में व्यथा और क्रोध कभी खत्म हो चुका था। वह तो पिघल कर बह चुका था। यह कुछ और ही भाव था। यह एक उल्लास था जो ब्याज-कोष का रूप धर बैठा था। दूसरे शब्दों में यह स्त्रीत्व था।

प्रसंग: प्रस्तुत पंक्तियां श्री जैनंद्र कुमार द्वारा रचित 'खेल' कहानी से ली गई हैं। इसमें लेखक ने सुरबाला के बाल सुलभ क्रोध को एकदम नया अर्थ दिया है। सुरबाला का परिश्रम से बना भाड़ मनोहर ने लात मार कर तोड़ दिया, इससे सुरबाला व्यथित हो गई। वह मनोहर पर गुस्से हो उठी। सुरबाला ने देखा कि मनोहर को अपने किए पर रंज है, तो उसका गुस्सा काफूर हो गया। अब

उसके मन में स्त्री सुलभ भाव ने जन्म ले लिया। बेशक उसने मनोहर को माफ कर दिया, पर उसकी ऐंठन अभी बाकी थी।

व्याख्या: मनोहर ने खेल-खेल में लात मारकर सुरो का भाड़ तोड़ दिया था। बाद में उसे अपने किए पर शर्म आई। उसने माफी मांगी। बेशक सुरबाला ने मनोहर को माफ कर दिया, मगर उसकी अकड़ बरकरार रही। मनोहर के लिए उसके मन में गुस्सा नहीं रहा। लेकिन उसके मन की कठोरता शांत नहीं हुई। कठोरता का भाव स्वाभाविक नहीं था, एकदम ऊपर से ओढ़ा सा नजर आता था। यह कठोरता का भाव सामान्य भाव नजर आ रहा था। दरअसल यह एक प्रकार का उल्लास था। जो मनोहर द्वारा पश्चाताप करने के उपरांत पैदा हुआ था। अब सुरबाला के मन में क्रोध का भाव नजर नहीं आ रहा था। न ही पहले जैसी कटुता थी। वह तो मात्र दिखावा दिखाई दे रही थी। उसके मन में इसकी बेहद खुशी थी कि मनोहर को अपने किए पर पछतावा है। दरअसल भारतीय नारी की यह महान विशेषता है कि वह उदार हृदय है। यदि पुरुष सच्चे मन से माफी मांगे तो नारी उसकी बड़ी से बड़ी गलती माफ कर सकती है। यों वह बेशक कठोर दिखाई दे, पर उसका हृदय शांत सागर सा दयावान हो जाता है।

विशेष: इसमें रचनाकार ने नारी-मनोविज्ञान पर प्रकाश डाला है। उसका मानना है कि सात वर्षीया बालिका में भी स्त्री सुलभ गुण विद्यमान रहते हैं।

13. गंगाजल से कर पात्रों द्वारा वह भाड़ का अभिषेक करना ही चाहता था कि सुरो रानी ने एक लात से भाड़ के सिर को चकनाचूर कर दिया। सुरबाला रानी हंसी से नांच उठी। मनोहर उत्फुल्लता से कहकहा लगाने लगा। उस निर्जन प्रांत में वह निर्मल शिशु हास्य लहरें लेता हुआ व्याप्त हो गया। सूरज महाराज बालकों जैसे लाल मुंह से गुलाबी हंसी हंस रहे थे। गंगा मानो जान बूझकर किलकारियां भर रही थी और-और वे लंबे ऊंचे-ऊंचे दिग्गज पेड़ दार्शनिक पंडितों की भांति सब हास्य की सारशून्यता पर मानो मन ही मन गंभीर तत्वालोचन कर, हंसी में भूले हुए मूर्खों पर थोड़ी दया बख्शना चाहते थे।

प्रसंग: व्याख्येय कथांश जैनेन्द्र कुमार द्वारा रचित 'खेल' कहानी से लिया गया है। सुरबाला द्वारा प्रयास से बनाया भाड़ मनोहर ने एक लात से तोड़ डाला। बाद में मनोहर को अपने किए पर लज्जा भी आई। सुरबाला ने मनोहर से शर्त के साथ समझौता करने की मंशा रखी। उसने कहा कि वह तब ही मान सकती है जब वह वैसा ही भाड़ बनाकर उसे दे, जैसा कि उसने तोड़ा है। समझौते के तहत मनोहर ने गंगा तट पर उसकी मंशा के मुताबिक नया भाड़ बना दिया। जब भाड़ बनकर तैयार हो गया और गंगाजल से उसके अभिषेक का समय आया तो सुरबाला ने भी एक लात मार कर उस भाड़ को तोड़ दिया। एक प्रकार से सुरबाला ने मनोहर से पूरा बदला ले लिया। इससे दोनों बालक सहज उल्लास में डूब गए। इसी भाव का अत्यंत सजीव चित्र इन पंक्तियों में प्रस्तुत है।

व्याख्या: मनोहर ने जब प्रयत्न करके भाड़ तैयार कर लिया, और गंगाजल से उसका अभिषेक करने को तैयार हुआ, तभी सुरबाला ने एक लात जमा कर उसका बना-बनाया भाड़ बिगाड़ दिया। मनोहर की सारी मेहनत पर पानी फेर दिया। लेकिन भाड़ टूटने का उसे जरा-भी रंज नहीं हुआ। सुरबाला सबसे ज्यादा खुश थी। जैसे उसकी मन की मुराद ही पूरी हो गई हो। उसने मनोहर का भाड़ तोड़कर उससे बदला ले लिया था। इसी से वह खुश थी। मनोहर को भाड़ टूटने का दुख नहीं हुआ, अपितु वह सुरबाला के साथ कहकहा लगाने लगा। दोनों बच्चों के कहकहों से वहां

Notes

का वातावरण ही जीवंत हो उठा। उस सुनसान प्रदेश में नवजीवन की एक लहर सी दौड़ गई। सूरज भी अबोध बालकों की नॉक-झोंक पर गुलाबी हंसी हंस रहा था। यानी शाम के समय सूरज की लालिमा बिखरी हुई थी। उधर गंगा भी कल-कल करती उल्लास के साथ बह रही थी। अर्थात् इन बालकों के निश्चल हास्य के कारण सारा वातावरण उल्लासपूर्वक हो गया था। गंगा के किनारे खड़े पेड़ दार्शनिक पंडितों की तरह लग रहे थे। मन ही मन इस हास्य की सार-शून्यता पर हंस रहे थे। उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे ये बालक अकारण ही हंस रहे हैं। लंबे-ऊंचे वृक्ष मानो गंभीर तत्त्वचिंतन में लीन थे। उन्हें लगता था जैसे इन अबोध बच्चों की हंसी अकारण ही है। लेकिन इसके बावजूद वे हास्य के इस वातावरण को विकृत नहीं करना चाहते थे। वे बच्चों के हास्य को बने रहने देना चाहते थे। निश्चय ही यह उनकी उदारता को प्रकट कर रहा था।

विशेष: आलंकारिक भाषा है। सूरज महाराज बालकों जैसे लाल मुंह से गुलाबी-गुलाबी हंसी हंस रहे थे। गंगा मानो जानबूझ कर किलकारियां मार रही थी। और-और वे लंबे ऊंचे दिग्गज पेड़ दार्शनिक पंडितों की भांति, सब हास्य की सार-शून्यता पर मानो मन ही मन गंभीर तत्वालोचन कर, हंसी में भूले हुए मूर्खों पर थोड़ी दया बख्शाना चाह रहे थे। उत्प्रेक्षा अलंकार है। संस्कृतनिष्ठ भाषा है।

14. पीछे पोलोलान में बच्चे किलकारियां मारते हुए खेल रहे थे। शोर, मारपीट, गाली गलौज भी जैसे खेल का ही अंश था। इस तमाम खेल को उतने क्षणों का उद्देश्य बना वे बालक अपना सारा मन, सारी देह, समग्र बल और समूची विधा लगाकर मानो खतम कर देना चाहते थे। उन्हें आगे की चिंता न थी, बीते का ख्याल न था। वे शुद्ध तत्काल के प्राणी थे। वे शब्द की संपूर्ण सच्चाई के साथ जीवित थे।

प्रसंग: प्रस्तुत कथांश श्री जैनंद्र कुमार द्वारा रचित 'अपना-अपना भाग्य' नामक कहानी से लिया गया है। इसमें लेखक ने पोलोलान में खेलते हुए बच्चों का जीवंत चित्रण किया है। यह उन दिनों का प्रकरण है, जब भारत गुलाम था। अतएव भारतीय व अंग्रेज बच्चों के लिए अलग-अलग खेलने का इंतजाम था। इन पंक्तियों में लेखक ने भारतीय बच्चों को हाकी खेलते चित्रित किया है।

व्याख्या: पोलोलान में भारतीय बच्चे बड़े उत्साह के साथ हाकी खेल रहे थे। खेलते वक्त खूब शोर कभी-कभी आपसी मारपीट, गाली-गलौज जैसी हो जाती थी। खेल में यह सब होता ही है। मार-पीट, गाली-गलौज भारतीय खेल में कोई नई बात नहीं थी। इन बच्चों के सामने सिर्फ हाकी खेलना ही उद्देश्य था। और किसी तरह की चिंता से वे बेखबर थे। हाकी खेलते वक्त वे पूरी क्षमता का परिचय दे रहे थे। खेल थोड़ी देर हो रहा है, या ज्यादा देर, इसका इन शब्दों पर कोई खास फर्क नहीं पड़ रहा था। इनका काम तो खेल को मनोयोगपूर्ण खेलना था। इस मामले में वह किसी तरह की कोई कमी नहीं छोड़ना चाहते थे। उन्हें इस बात की कोई चिंता नहीं थी कि कल क्या हुआ, क्या होने वाला है, वे तो बस खेल के क्षणों को पूरी तन्मयता के साथ बिता देना चाहते थे। कहने का भाव यह है बच्चे खेल में मग्न थे। वे निश्चित से भूत-भविष्य या वर्तमान की चिंता से मुक्त थे। वे तो पूरी तन्मयता के साथ खेल में मस्त थे। ऐसा लगता था जैसे बच्चों के जीवन में खेलने के अलावा कोई दूसरा उद्देश्य ही न हो।

15. अधिक गर्व में तने अंग्रेज उसमें थे, और चिथड़ों से सजे, घोड़ों की बाग थामे वे पहाड़ी उसमें थे जिन्होंने अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान को कुचल कर शून्य बना दिया है और जो बड़ी तन्मयता

से दुम हिलाना सीख गए हैं। भागते-खेलते, हंसते शरारत करते, लाल-लाल अंग्रेज बच्चे थे और पीली-पीली आंखें फाड़े, पिता की ऊंगली पकड़ कर चलते हुए अपने हिंदुस्तानी नौनिहाल थे। अंग्रेज पिता थे जो अपने बच्चों के साथ भाग रहे थे, हंस रहे थे और खेल रहे थे। उधर भारतीय पितृदेव भी थे। जो बुजुर्गों को अपने चारों तरफ लपेटे धन संपन्नता के लक्षणों का प्रदर्शन करते हुए चल रहे थे।

प्रसंग: प्रस्तुत पंक्तियाँ कथाकार जैनेन्द्र कुमार द्वारा रचित 'अपना-अपना भाग्य' नामक कहानी से ली गई हैं। इसमें लेखक ने अंग्रेजों के भारतीय जीवन की विषमता का मार्मिक चित्रण किया है। अंग्रेजों ने भारत को अपने अधीन किया हुआ है, उनके बच्चे यहां गर्व के साथ रह रहे हैं। जबकि भारतीय बच्चे अपने देश में ही दयनीय जीवन बिता रहे हैं। इसी का यथार्थ चित्रण इन पंक्तियों में यहां व्यक्त किया गया है।

व्याख्या: कथाकार जैनेन्द्र कहते हैं कि भारत में अंग्रेज बच्चे गर्व के साथ रह रहे हैं। उन्हें किसी का भय नहीं है। जबकि हिंदुस्तानी बच्चे दयनीय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। वे फटे-पुराने वस्त्र पहने हुए हैं। भारतीय पहाड़ियों ने अंग्रेजों की दासता के सामने अपने आप को एक प्रकार से समर्पित कर दिया है। उनका स्वाभिमान व आत्मप्रतिष्ठा मर चुकी है सच तो यह है कि ये लोग अंग्रेजों के सामने पालतू कुत्तों की तरह दुम हिलाते फिर रहे थे। इनके भीतर का स्वाभिमान मर चुका था। अंग्रेजों की जी हजुरी करना ही मानों उनका एकमात्र उद्देश्य रह गया था। उन्होंने अपना समूचा सम्मान और प्रतिष्ठा मानों अंग्रेजों के पास गिरवी रख दी हो, ऐसा लगता था। इसी भीड़ भरे इलाके में एक ओर अंग्रेजों के साथ सुंदर गोल-लाल मुंह वाले बच्चे खेल रहे थे। दूसरी ओर पीली जर्द आंखों वाले भारतीय बच्चे भी थे। इन नौनिहाल बच्चों की आंखों में जीवन की झलक गायब थी। अपने पिता की अंगुली थामे ये भारतीय बच्चे दरिद्रता की साक्षात-मूर्ति दिखाई दे रहे थे। एक ओर अंग्रेज पिता थे। ये अपने बच्चों के साथ खेल में भाग रहे थे। आपस में खुशियां मना रहे थे। कहने का भाव यह है कि भारतीय व अंग्रेज बच्चों में जमीन आसमान का अंतर था। अंग्रेजों के हाथों में सत्ता थी। इसलिए वे अधिकारपूर्वक जी रहे थे। दूसरी तरफ गुलाम भारतीय थे, उनका स्वाभिमान मर चुका था। इसलिए उनके बच्चों की आंखों में भी यह मजबूरी दिखाई दे रही थी।

16. इसके साथ ही भारतीयता का एक और नमूना था। अपने कालेपन को खुरच-खुरच कर बहा देने की इच्छा करने वाले अंग्रेजी दां दुरुषोत्तम भी थे, जो नेटिव को देखकर मुंह फेर लेते थे और अंग्रेज को देखकर आंखें बिछा देते थे, और दुम हिलाने लगते थे। वैसे वह अकड़कर चलते थे मानों भारत भूमि को इसी अकड़ के साथ कुचल-कुचल कर चलने का उन्हें अधिकार मिल गया हो।

प्रसंग: व्याख्येय अंश श्री जैनेन्द्र कुमार द्वारा रचित 'अपना-अपना भाग्य' कहानी से लिया गया है। इनमें लेखक ने अंग्रेजकालीन शासन काल के भारतीयों का चित्र प्रस्तुत किया है। ये भारतीयों को हिकारत की नजर से देखते थे। अंग्रेजों की खुशामद कर अपना उल्लू सीधा करना ही उनका खास मकसद था।

व्याख्या: ऐसे भारतीय भी थे जो अंग्रेजों की खुशामद करना ही अपना मुख्य लक्ष्य मानते थे। अपनी काली चमड़ी खुरच-खुरच कर अंग्रेज कहलाना ही जैसे उनका लक्ष्य था। ये बोल-चाल, रहन-सहन, जवाब-तलबी, यानी कि हर तरह से अंग्रेज थे, बस बदकिस्मती से इनका जन्म भारत में हुआ था। इसीलिए भारतीयों को वे हिकारत की नजर से देखते थे। वे उन्हें अपने समकक्ष नहीं

Notes

समझते थे। लेकिन जब वे अंग्रेजों को देखते थे उनके पीछे दुम हिलाना शुरू कर देते थे। ये वे भारतीय थे, जो अपने आपको भारतीयों से एकदम अलग समझते थे। ये लोग इतना अकड़ कर चलते थे, जैसे आम भारतीयों को यहाँ चलने-फिरने का हक नहीं है।

स्व:मूल्यांकन

रिक्त स्थान भरें:

1. “फोटोग्राफी” कहानी का मुख्य पात्र है।
2. “खेल” कहानी में बालकों की गतिविधियों में का ही प्राधान्य है।
3. “अपना-अपना भाग्य” कहानी में की दुष्टता को दर्शाया गया है।
4. जैनेंद्र की सभी कहानियाँ प्रायः वर्ग से संबंधित हैं।
5. जैनेंद्र की कहानियों में मानव की, ... एवं निराशा का चित्रण हुआ है।

10.2 सारांश (Summary)

- जैनेंद्र ने अपनी कहानियों में यथार्थ घटनाओं का ही वर्णन नहीं किया अपितु सूक्ष्म संवेदना को भी कहानी में स्थान दिया गया है।
- जैनेंद्र की सभी कहानियों में समष्टि को मानते हुए भी व्यक्ति को विशेष महत्व दिया गया है। उनके हर पात्र भौतिक दबाव से मुक्त विहार करते हुए सहज मानव लगते हैं। उन्होंने मानसिकता को अपनी कहानियों में प्रमुख स्थान दिया है।
- उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानियों की यह विशेषता है कि उनमें मनोविज्ञान, दार्शनिकता, गांधी दर्शन, ईश्वर में आस्था स्पष्ट दिखाई देती है। उनकी कहानियों में जो मनोवैज्ञानिक विचार मिलते हैं वे उनके अपने स्वतंत्र विचार हैं।
- जैनेंद्र की कहानी ‘फोटोग्राफी’ में संवेदनात्मक भावुकता विद्यमान है। कहानी के माध्यम से व्यक्ति का उद्घाटन करना उनका मुख्य उद्देश्य है। इसमें पात्र रामेश्वर कहानीकार जैनेंद्र के समसामयिक युवा वर्ग के सपनों को साकार करने में समर्थ रहा है।
- जैनेंद्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में ‘खेल’ कहानी में किशोर मन की स्वच्छ मानसिकता दर्शाई गई है। बालिका सुरबाला के माध्यम से दुनिया की नश्वरता और परमात्मा का रहस्य समझाने की कोशिश की है।
- कहानी “अपना-अपना भाग्य” में आर्थिक विषमता के कारण गरीबी में घिरे हुए एक पहाड़ी बालक की मृत्यु का चित्रण है। पुरुषों की स्वार्थी प्रवृत्ति का चित्रण किया गया है। कहीं-कहीं आर्थिक विषमता भी स्वार्थी प्रवृत्ति का कारण बनती है।
- इस तरह जैनेंद्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में जीवन के शाश्वत सत्यों – ईश्वर, जीव, जन्म, मृत्यु आदि के सम्बन्ध में आत्मानुभूति सत्य को उद्घाटित किया गया है।

10.3 शब्दकोश (Keywords)

सर्वथा: हमेशा, हर तरह से, अत्यंत।

मंदगति: धीमी उन्नति।

वार्तालाप: बातचीत करना।

प्रकृति: स्वभाव, गुण, प्रकार।

10.4 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. जैनेन्द्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियों की तात्त्विक समीक्षा करें।
2. जैनेन्द्र की कहानी “फोटोग्राफी” के मुख्य पात्र और उनका चरित्र-चित्रण करें।
3. जैनेन्द्र की कहानी “फोटोग्राफी” की तात्त्विक समीक्षा करें।
4. ‘खेल’ कहानी का कथासार लिखते हुए इसके उद्देश्य पर प्रकाश डालें।
5. ‘खेल’ कहानी की भाषाशैली की विवेचना कीजिए।
6. “अपना-अपना भाग्य” कहानी का कथासार लगभग 150 शब्दों में लिखें।
7. “अपना-अपना भाग्य” कहानी की तात्त्विक समीक्षा करते हुए इसके उद्देश्य का वर्णन करें।

उत्तर: स्व:मूल्यांकन

- | | |
|-----------------|--------------|
| 1. रामेश्वर | 2. कामवृत्ति |
| 3. पूँजीपतियों | 4. मध्यम |
| 5. कुण्ठा, घुटन | |

10.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



जैनेन्द्र की प्रतिनिधि कहानियाँ – स. शिवनन्दन प्रसाद, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली।

जैनेन्द्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ – डॉ० निर्मला जैन, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली।

जैनेन्द्र की कहानियाँ: एक मूल्यांकन – डॉ० शकुन्तला शर्मा, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली।

इकाई 11: जैनेंद्र – व्यक्तित्व एवं कृतित्व

अनुक्रमणिका (CONTENTS)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

11.1 कहानीकार जैनेंद्र

11.1.1 जैनेंद्र कुमार: व्यक्तित्व और रचना

11.2 जैनेंद्र के कृतित्व

11.2.1 जैनेंद्र: कहानीकार के रूप में और उनकी रचनाओं का मूल स्वर

11.2.2 जैनेंद्र के कथा साहित्य में कथा तत्व

11.2.3 जैनेंद्र की कहानियों में मनोवैज्ञानिक धरातल

11.3 सारांश (Summary)

11.4 शब्दकोश (Keywords)

11.5 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

11.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी:

- जैनेंद्र कुमार के व्यक्तित्व के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- कहानीकार, उपन्यासकार के रूप में जैनेंद्र की मुख्य रचनाओं के बारे में ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- जैनेंद्र की कहानियों में दर्शन और मनोविज्ञान संबंधी तथ्यों को जानेंगे।

प्रस्तावना (Introduction)

हिन्दी साहित्य जगत में प्रेमचंद को युगप्रवर्तक माना जाता है। हिन्दी कथा साहित्य में प्रेमचंद को केन्द्र मानकर काल विभाजन किया गया है। पूर्व प्रेमचंद युग, प्रेमचंद युग और प्रेमचंदोत्तर युग इस प्रकार हिन्दी साहित्य के तीन कालकांड माने गये हैं। प्रेमचंद युग में ही जैनेंद्र का आगमन हुआ। तथापि प्रेमचंद युग के पचास वर्ष बाद भी उनका लेखन अबाध गति से चलता रहा। उनका उल्लेख नये युग के प्रवर्तक के रूप में किया जाता है और वह नया युग हिन्दी के मनोवैज्ञानिक कथा साहित्य से जुड़ा हुआ है।

11.1 कहानीकार जैनेंद्र

प्रसाद संस्थान के कहानीकारों में श्री जैनेंद्र कुमार विशेष उल्लेखनीय और साहित्यिक दृष्टि से सर्वाधिक सशक्त हिन्दी कहानीकार हैं, जिन्होंने यथेष्ट लोकप्रियता प्राप्त की है तथा जो विशेष अध्ययन की वस्तु माने गये हैं।

जैनेंद्र की कहानियाँ साधारण स्तर पर पाठकों का केवल मनोरंजन ही नहीं करतीं अपितु उनमें मौलिक विचारों तथा नवीन रीति से चिन्तन का महत्त्व है। उनकी प्रत्येक रचना में किसी अनुभूति की कोई मार्मिक चोट होती है। उनकी सृष्टि मौलिक चिन्तन की गहराई से निकलती है। वे विचारपूर्ण हैं।

कहानी के संबंध में अपना मत अभिव्यक्त करते हुए जैनेंद्र ने लिखा है— “कहानी इतिवृत्त ही तो है।” यानी उसमें स्थिति से स्थित्यन्तर, अर्थात् जीवनगति होनी चाहिए। काल का कुछ स्पंदन, कुछ तनाव अनुभव हो, वही तो कहानी का रस है। यह घटना द्वारा अनुभव कराया जाए, या चाहे तो बिना घटना के अनुभव करा दिया जाए। चुनांचे ऐसी भी सफल कहानियाँ हैं जिनमें खोजो तो घटना तो है नहीं फिर भी रस से भरपूर हैं।



Did u know? जैनेंद्र ने अपनी समग्र कहानियाँ दस भागों में “जैनेंद्र की कहानियाँ” शीर्षक के अन्तर्गत संकलित की हैं।

11.1.1 जैनेंद्र कुमार: व्यक्तित्व और रचना

व्यक्तित्व: हिन्दी कथा साहित्य में प्रेमचंद के पश्चात् गोर्की, रवीन्द्र और शरत् के धरातल को छूने वाला कथाकार जैनेंद्र में ही सजग हुआ है। उन्होंने कथा में नई शैली का प्रवर्तन किया। उपन्यास पद्धति को नया मोड़ प्रदान किया और चिंतक व दर्शनिक रूप में देखते ही देखते साहित्याकाश पर पियूषवर्षी मेघ की भाँति छा गए। वस्तुतः प्रेमचंद के बाद हिन्दी कहानी में जो नया मोड़ आया उसका श्रेय जैनेंद्र व अज्ञेय को जाता है। उनका व्यक्तित्व कृतित्व से अलग होते हुए भी संवेदना के किसी एकल बिंदु के साथ जुड़ा रहता है। वे हिन्दी कथासाहित्य के एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनका व्यक्तित्व उनके कृतित्व से किसी न किसी रूप से अवश्य जुड़ा हुआ है – अब चाहे वह संवेदना के स्तर पर हो, या फिर भाव के स्तर पर अथवा घटना की सूक्ष्मता या पारदर्शिता से ज्ञांकता दृष्टिगत हो। डॉ० मनमोहन सहगल ने उनके कृतित्व पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि “जैनेंद्र के उपन्यास ‘परख’ और ‘त्याग पत्र’ और अनेक कहानियाँ कवित्व के रत्न हैं। किंतु अपनी साहित्य साधना के उत्तरार्द्ध में वह जो राह भटके, तो फिर कभी राह न पाई। अतः उनके अंदर के कोमल, संवेदनशील विवेकी कलाकार ने दम तोड़ दिया है, और लगता है कि अब उनकी रक्षा नहीं हो सकती।”

कथाकार जैनेंद्र के व्यक्तित्व की छाप उनकी प्रत्येक कथा में ही नहीं वरन् कहानी की प्रत्येक पंक्ति में दिखाई देती है। उनके व्यक्तित्व में जो उभार आया, उसकी छाप उनकी कहानियों से इसलिए भी जुड़ी है चूँकि वे देश के स्वाधीनता संग्राम के साथ जुड़े थे, और जीवन की यातनाओं के प्रत्यक्ष भोक्ता थे। डॉ० निर्मला जैन ने उनके व्यक्तित्व के संदर्भ में सटीक टिप्पणी की है— जैनेंद्र कुमार साहित्य की सामग्री अपने परिवेश से न लेकर, अपने मन में क्रियाशील कुछ तात्त्विक प्रश्नों के मंथन से उठाते हैं, इसलिए चिंतन, सृजन जैनेंद्र कुमार के व्यक्तित्व के समान रूप से महत्वपूर्ण व पूरक पक्ष भी हैं।

Notes

जैनैन्द्र का बचपन का नाम आनंदी लाल जैन था। उनका जन्म 1905 में अलीगढ़ जिले के कौड़िया गंज नामक कस्बे में हुआ था। उनके पिता प्यारेलाल का देहांत अल्पावस्था में ही हो गया था। पिता की मृत्यु के उपरांत पालन-पोषण का भार उनके मामा महात्मा भगवान् दीन के कंधों पर आ गया। मां की छत्र-छाया भी उन्हें मिली।

जैनैन्द्र की आरंभिक शिक्षा एक स्थानीय स्कूल में हुई। वे यहां छह वर्ष तक पढ़े। इसके उपरांत वे अपने मामा के यहां पढ़ने के लिए आ गए। मामा ने इन्हें हस्तिनापुर के एक गुरुकुल में प्रवेश दिला दिया। इसके उपरांत ये मैट्रिक की परीक्षा देने के लिए बिजनौर आ गए। पंजाब से मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरांत उच्च शिक्षा के लिए इन्होंने काशी विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। तभी से गांधी जी के असहयोग आंदोलन से प्रभावित हुए। पढ़ाई-लिखाई छोड़ दी और आंदोलन में सक्रिय रूप से कूद पड़े। इसके बाद इन्होंने माता के सहयोग से व्यापार में मन लगाया, जिसमें काफी सफलता अर्जित हुई। असहयोग आंदोलन के दौरान वे 1924 में पहली बार जेल गए।



Notes

जैनैन्द्र का बचपन का नाम आनंदी लाल जैन था। पिता प्यारेलाल की मृत्यु के पश्चात उनके मामा भगवान दीन ने आपका पालन-पोषण किया।

जैनैन्द्र का विवाह 1932 में भगवती देवी के साथ हुआ। उनके विवाह को एक आदर्श विवाह की संज्ञा दी जा सकती है। उन्होंने विवाह में दान-दहेज आदि नहीं लिया और न ही कोई कपड़ा लत्ता वगैरह ही लिया। बारात मुजफ्फरनगर गई थी और आदमी भी पांच ही गए। पूरे विवाह पर व्यय मात्र साढ़े सत्रह रुपये आया। वस्तुतः विवाह में भी उनकी परंपरागत विचारधारा नहीं अपितु राष्ट्रीय विचारधारा ही देखने को मिली। उनकी पत्नी पढ़ी-लिखी नहीं थी फिर भी उन्होंने अपनी पत्नी को उचित सम्मान दिया। अपनी पत्नी की सराहना करते हुए एक स्थान पर उन्होंने लिखा है— “भगवती देवी मामूली पढ़ी-लिखी नहीं थी। तो यह उनके भाग्य की दृष्टि से वरदान ही साबित हुआ। उसकी जैसी सब परिस्थितियों में निर्वाह कर सकने वाली और हर तरह का श्रम और कष्ट सहने वाली पत्नी शायद दूसरी हो भी नहीं सकती थी।”

पारिवारिक व आर्थिक दृष्टि से जैनैन्द्र का जीवन अच्छा नहीं कहा जा सकता था। वे जीवन पर्यन्त किराए के मकान में रहे। आर्थिक कठिनाईयों में अपना जीवन व्यतीत किया। उनके पांच बच्चे थे। जिनमें कुसुम, कविता व कनक तीन पुत्रियाँ हैं और दिलीप व प्रदीप दो पुत्र। उनका व्यक्तित्व अत्यंत गंभीर और मर्यादित था। बाह्याडंबरों से उनका कोई अर्थ नहीं रहा। तभी उनका लेखन अनुशासनबद्ध व मर्यादित दिखाई देता है। उन्होंने अत्यंत छोटी अवस्था में ही लिखना शुरू कर दिया था। 22-23 वर्ष की आयु तक पहुंचते-पहुंचते वे कलमजीवी हो गए थे। और जीवन पर्यन्त लेखनी के स्वामी रहे।

11.2 जैनैन्द्र के कृतित्व

जैनैन्द्र जी ने 1928-29 में विधिवत लिखना शुरू किया था। 1929 में उनका पहला उपन्यास ‘परख’ प्रकाशित हुआ। उसके बाद कालक्रम से ‘सुनीता’, ‘त्यागपत्र’, ‘कल्मलि’, ‘सुखदा’, ‘विवर्त’, ‘व्यतीत’ और ‘जयवर्द्धन’ आदि प्रकाशित हुए। इनमें चर्चित उपन्यास हैं— ‘सुनीता’, ‘न्याय पत्र’ व ‘जयवर्द्धन’। ‘मुक्तिबोध’ उपन्यास साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत भी है।

जैनैन्द्र जी का पहला कथासंग्रह 'फांसी' 1929 में प्रकाशित हुआ। उनकी पहली कहानी 'खेल' प्रकाशित हुई। इस कथा का आधार बच्चों का खेल है। दूसरी कहानी 'फोटोग्राफी' प्रकाशित हुई। इस कहानी को उनके जीवन की घटनाओं की फोटोग्राफी कह सकते हैं। इसके बाद तो वे कहानी लेखन में रुचि लेते रहे। कहानियों के कई कहानी संग्रह प्रकाशित हुए— 'फांसी' (1928), 'अपना-अपना भाग्य' (1929), 'वातायन' (1930), 'नीलम देश की राजकन्या' (1933), 'जाह्नवी', 'एक रात' (1934), 'दो चिड़िया' (1935), 'ध्रुव यात्रा', 'साधु का हठ', 'पाजेब' (1942), 'जय संधि' (1959), 'तिखनी', 'अभागे लोग', 'दो सहेलियां', 'प्रेम में भगवान' कुछ ऐसे कहानी संग्रह हैं जो काफी चर्चित रहे।

जैनैन्द्र जी के लेखन नी गुरुदेव ठाकुर, उपन्यास सम्राट प्रेमचंद, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, महाकवि जयशंकर प्रसाद, महामना नेहरू जी व महात्मा गांधी आदि से होती रहती मुलाकातों का काफी असर पड़ा। इससे उनकी चेतना काफी चमत्कृत हो उठी। उन्होंने प्रेमचंद से प्रभावित होकर शुरू-शुरू में कहानी लिखनी शुरू की थी। स्वयं प्रेमचंद जी ने ही इनकी पहली कहानी को अपनी पत्रिका में प्रकाशित कर, उन्हें उत्साहित किया था। उन्होंने न केवल कहानी या उपन्यास लिखे अपितु चेतन प्रधान गद्य की ओर भी प्रवृत्त हुए। 1937 में उनकी पुस्तक प्रकाशित हुई— जैनैन्द्र के विचार। यह उनकी प्रथम वैचारिक रचना है।

जैनैन्द्र का लेखन क्षेत्र कल्पना सापेक्ष व विचार सापेक्ष है। अब तक उन्होंने 11 मौलिक उपन्यास, 10 कहानी संग्रह, 15 विचार पुस्तकें, 2 यात्रा संस्मरण, 4 अनूदित उपन्यास नाटक आदि लिखे हैं।

गृहस्थी की घातक चोटों से वे पीड़ित हुए, लेकिन अंतःचेतना लोकधर्मी ही बनाई रखी। चाहे परोपकारी संस्था हो, या फिर साहित्यिक सभा अथवा कोई राजनीतिक समिति। वे सभी में समान रूप से अपनी भूमिका निभाते रहे हैं। वे यूनेस्को राष्ट्रीय कमिशन की कार्यकारिणी के प्रथम सदस्य बनाए गए। भारतीय साहित्य अकादमी की कार्यकारिणी के प्रथम सदस्य मनोनीत हुए। 1955 में प्रथम यूरोप-यात्रा की। चीन के राष्ट्रीय साहित्यिक महोत्सव में एक भारतीय प्रतिनिधि के रूप में जैनैन्द्र जी का इस देश में जाना हुआ। 1960 में रूस में टालस्टाय की 50वीं पुण्यतिथि पर अंतरराष्ट्रीय केवेशन के सदस्य बने। उन्हीं दिनों वे एशिया लेखक सम्मेलन के संयोजक भी रहे। इनकी साहित्यिक सेवाओं के मूल्यांकन के संदर्भ में 1970 में उन्हें 'पद्म भूषण' की उपाधि से अलंकृत किया गया। 1973 में दिल्ली विश्वविद्यालय ने उन्हें 'डी. लिट्' की उपाधि से सम्मानित किया। उन्हें कृतियों पर अनेक पुरस्कार प्राप्त हुए।

'परख' पर मंगला प्रसाद पुरस्कार प्राप्त हुआ। 'पाप और प्रकाश' रचना शिक्षा मंत्रालय केंद्रीय सरकार द्वारा पुरस्कृत हुई। 'मुक्ति बोध' साहित्य अकादमी से पुरस्कृत हुआ। समय, समस्या व सिद्धांत उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत किया गया। समय और हम को हरजीमल लाल मिश्र पुरस्कार मिला। वृत्त-विवाह उत्तर प्रदेश सरकार ने सम्मानित किया। और 'प्रेमचंद: एक कृति व्यक्तित्व' उत्तर प्रदेश सरकार ने सम्मानित की।



Task

जैनैन्द्र के कहानी संग्रहों के नाम बताएँ।

संस्मरण यात्रा भी उनकी प्रकाशित हुई— 'ये और वे', 'काश्मीर की वह यात्रा', 'गांधी: कुछ स्मृतियाँ'।

Notes

वैचारिक साहित्य भी प्रकाशित हुआ— मंथन, सोच-विचार, इतस्ततः, प्रेमचंद : एक कृति व्यक्तित्व, कहानी : अनुभव और शिल्प, समय, समस्या और सिद्धांत, समय और हम, वृत्त-विहार, अकाल पुरुष गांधी, परिप्रेक्ष, राष्ट्र और राज्य प्रश्न और प्रश्न, पूर्वोदय प्रकाशन, बंगलादेश, एक यक्ष प्रश्न, काम, प्रेम और परिवार।

अनुदित रचनाओं में यात्रा (उपन्यास) पाप और प्रकाश, मंदालिनी (नाटक)।

प्रेमचंदोत्तर कथाकारों में जैनंद्र का स्थान अद्वितीय है। कला और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से वे अपने पूर्ववर्ती कथाकारों से भिन्न हैं। विद्रोही व्यक्तित्व के कारण कहानियों में भी उनका विद्रोही स्वर झांकता नजर आता है। उनके विचार में बाह्य मानवीय घटनाएं इतनी महत्वपूर्ण नहीं हैं, जितनी कि आंतरिक घटनाएं। उन्होंने समाज को महत्व न देकर व्यक्ति को दिया है और अपने रचना संसार में नारी पीड़ा और यातना को बड़ी सूक्ष्मता से अभिव्यक्त किया है।

उनकी 'खेल' कहानी पर प्रेमचन्द टिप्पणी देते हैं कि "हमें हिंदी में रवि बाबू व शरत बाबू जब मिले, और एक साथ मिले। वे मनोविश्लेषणात्मक परंपरा के प्रवर्तक के रूप में विख्यात हुए। नारी पात्रों के चित्रण में इन्होंने मनोविज्ञान का सहारा लिया। कथोपकथन में उनकी चिंतनशीलता स्पष्ट झलकती है। लेकिन कहीं-कहीं वैचारिक जटिलता से पाठक कठिनाई में फंस जाता है। उनके पात्र चिरंतन नैतिक मूल्यों की खोज में भटकने वाले प्राणी हैं। जिंदगी के कुछ खास निर्णायक क्षणों में वे थोड़े विश्वसनीय और सहज आत्मीय प्रतीत होते हैं। वे मध्यवर्गीय बौद्धिक पात्र हैं।"

यह अमर कथाकार 1988 में देहमुक्त हो गया। उनका रचना संसार साहित्य जगत का एक प्रशस्त मार्ग है, जिसके पदचिह्नों पर चलकर जिज्ञासु नई राह खोज सकते हैं।

11.2.1 जैनंद्र: कहानीकार के रूप में और उनकी रचनाओं का मूल स्वर

जैनंद्र कुमार के कथा साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे वस्तुओं व घटनाओं को अपने ढंग से देखने समझने वाले विचारक भी हैं। विचारक होने की चर्चा करना इसलिए भी जरूरी है कि उनके रचना संसार का उनके वैचारिक जगत् से अटूट रिश्ता है। इसी विशेषता के कारण प्रभाकर माचवे ने उनके बारे में कहा है कि "जैनंद्र में विचारक कलाकार अपने कलात्मक और विचारात्मक अस्तित्व को किसी भी प्रकार, कभी कहीं भी, जरा भी एक दूसरे से अलग न देख पाता है, और न ही रख पाता है।"

कहानी या रचना लेकर जैनंद्र ने पर्याप्त विचार मंथन किया है। उन्हें लगता है कि कहानी कला या शिल्प न होकर सृष्टि है। "लिखना मेरे लिए ऐसे चलना है, जहाँ आगे राह नहीं है—इससे मुझे ख्याल होता है, कि कहीं ऐसा तो नहीं कि कहानी कला या शिल्प हो ही नहीं, बल्कि सृष्टि हो।" जैनंद्र कुमार ने अन्यत्र लिखा है— "कहानी तो एक भूख है, जो निरंतर समाधान पाने की कोशिश करती है—यह एक निश्चित उत्तर ही नहीं दे देती, पर यह अलबत्ता कहती है कि शायद उस रास्ते मिले। यह सूचक होती है, कुछ सुझा देती है और पाठक अपनी चिंतन-प्रक्रिया के सहारे उस सूझ को ले लेते हैं।" यह उद्धरण इस बात को स्पष्ट कर देता है कि जैनंद्र के दिमाग में कहानी की जो परिकल्पना है, वह प्रेमचंद की कहानियों से एकदम अलग है। इस अंतर को यों भी समझा जा सकता है कि अगर प्रेमचंद पाठक की अंगुली पकड़ कर पाठक को गन्तव्य तक पहुँचा देते हैं, तो जैनंद्र बस सुझाव देते हैं। यह पाठक स्वयं जानता है कि उसका गंतव्य क्या है? हालांकि प्रेमचंद की अंतिम दौर की कहानियों में उनकी

कहानियों का यह रूढ़ पैटर्न टूटने लगा था। उन्होंने रूपहीन कहानियां लिखी हैं और उनकी कहानी कहीं से भी शुरू हो सकती है, और कहीं भी समाप्त हो सकती है।

‘कहानी की कहानी’ जैनैन्द्र की एक कहानी भी है। उसमें उन्होंने कहा है कि मैं कहानियों के मूल, उद्गम तक पहुँचना चाहता हूँ। कहानी के अंत में वे इस विषय पर विचार करते हुए कहते हैं, “वह दिवकालहीन मानव-मन और उसकी विरह-व्यथा ही क्या वह मर्म नहीं है, जो अनंत कथा का स्रोत है, और अक्षम है।” आदमी के भीतर की व्यथा को कहानी का मूल स्रोत मानने की पुष्टि एक अन्य स्थान पर भी हुई है। उनके उस विचार को यों व्यक्त किया जा सकता है, “भीतर का दर्द मेरा इष्ट हो। धन मैल है, मन का दर्द भी दूष है। सत्य का निवास और कहीं नहीं है।” अब जैनैन्द्र कहते हैं कि मेरे रचना कर्म का उद्देश्य है— ‘बुद्धि की दुःशानि:’ तब इसका अर्थ यही है कि बुद्धिजनित अहंकार का विरोध किया जाए, बुद्धिजनित द्वैत से मुक्त हुआ जाए। जो शास्त्र से नहीं मिलता, वह आत्मव्यथा से मिल जाता है। देखना होगा कि जैनैन्द्र की कहानियों में यह कथित आत्मव्यथा किन-किन रूपों में व्यक्त हुई है।

श्री दीक्षित के अनुसार जैनैन्द्र की पहली कहानी ‘खेल’ है, यह कहानी 1928 में ‘विशाल भारत’ में प्रकाशित हुई। अब तक उनके ‘वातायन’, ‘नीलम देश की राजकन्या’, ‘दो चिड़िया’, ‘स्पद्धा’, ‘ध्रुवयात्रा’, ‘पाजेब’, ‘एक दिन, एक रात’, ‘फांसी’, ‘जय संधि’ आदि संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी प्रमुख कहानियों में ‘पत्नी’, ‘जाह्नवी’, ‘मास्टर जी’, ‘बाहुबली’, ‘अपना-अपना भाग्य’, ‘पाजेब’, ‘जय संधि’, ‘नीलम देश की राजकन्या’, ‘प्रियव्रत’, ‘कःपंथा’ के नाम लिए जा सकते हैं।

शुरुआती कहानियों में ‘खेल’, ‘फोटोग्राफी’, ‘ब्याह’ आदि की विषयवस्तु अपने आस-पास की घटनाओं व चरित्रों से ली गई है। शुरु की कहानियों में वास्तविक जीवन के सूत्र अधिक प्रत्यक्ष व मुखर थे। कालांतर में भी कम-वेश वे वास्तविक घटनाओं और चरित्रों से कुछ न कुछ ग्रहण करते रहे। कहीं-कहीं उन्होंने यथार्थ से केवल कुछ संकेत ग्रहण किए हैं, और कहीं-कहीं जीवन का यथावत् चित्रण भी उनके साहित्य में मिलता है।

जैनैन्द्र की कहानियों की प्रमुख पहचान है मनोवैज्ञानिकता। “जैनैन्द्र कहीं भी ऐसा आभास नहीं देते, कि वे किसी मनोवैज्ञानिक सिद्धांत के सहारे आंतरिक सत्य की पहचान उभार रहे हैं, वे तो आस-पास के जाने-पहचाने पात्रों में मूर्त अंतर्सत्त्यों को ही बहुत सहज भाव से पकड़ लेते हैं और बहुत ही सहजता से बातचीत के लहजे में उसे रूपायित कर देते हैं।”

‘पाजेब’ में बाल मनोविज्ञान और उसके समानान्तर अभिभावकों की मानसिकता का परिचय बहुत सहज ढंग से किया गया है। पाजेब को बच्चे ने छुआ तक नहीं है, लेकिन पिता उस पर अपने मन की बातों को उस पर आरोपित करते हैं और उनकी पुष्टि किसी न किसी तरह करना चाहते हैं। वह बीच-बीच में खुश भी होते हैं कि उनकी धारणा सही है। लेकिन अंत में वह पूरी तरह हतप्रभ होते हैं। बाल मनोविज्ञान का संदर्भ ‘चोर’ कहानी में भी है। बच्चा चोर को लेकर आतंकित है। जब वह वास्तविक चोर को देखता है, तो उसका भय समाप्त हो जाता है। ‘पत्नी’ में पुरुष प्रधान समाज में नारी को लेकर पुरुष के व्यवहार व सोच की अभिव्यक्ति दर्शनीय है। अपनी पत्नी के त्याग और तपस्या के बूते पर समाजसेवी व भद्र पुरुष बने हुए कालिंदी चरण देर में पत्नी पर क्षुब्ध हो जाते हैं। पुरुष का व्यवहार औरों के प्रति कितना ही नर्म व भद्र क्यों न हो, पत्नी के प्रति अक्सर तीक्ष्ण हो जाता है और पत्नी कम पढ़ी लिखी समर्पित पत्नी, अपने हिस्से का भोजन भी पति के मित्रों को दे डालती है। वह संतानहीन है, नहीं तो अकेलेपन की अनुभूति इतनी न होती। उसे लगता है, पति के लिए देश, समाज,

Notes

मित्र, सब कुछ है, बस उसकी कोई सत्ता नहीं है। इस पर भी वह चिन्ता नहीं करती। उसे पति की चिन्ता है। पति के गौरव से उसे खुशी होती है। उसका अपना कुछ नहीं है। कहानी के अंत में भी वह अपने पति की आज्ञा में खड़ी है। यह बिंब कम-वेश तत्कालीन सभी भारतीय नारियों की मानसिकता का द्योतक है। यह मानसिकता आत्मपीड़न से जुड़ी है। लेकिन यह आत्मपीड़न किसी ग्रंथि का रूप नहीं लेता। यदि पत्नी के मन में कोई कड़वाहट आती भी है, तो वह बहुत सहज-प्रक्रिया के रूप में—हठात् उसके मन को लगती ही है कि देखो, उन्होंने एक बार भी नहीं पूछा कि तुम क्या खाओगी? क्या मैं यह सह सकती थी कि मैं तो खाऊं और उनके मित्र भूखे रहें। पर पूछ लेते तो क्या था? इस बात पर उसका मन टूटता सा है। मानो जो तनिक सा भाव था, वह भी कुचल गया हो।

मनोवैज्ञानिकता के प्रगाढ़ संस्पर्श से जैनैन्द्र की कहानियां चरित्र केंद्रित हो गई हैं। बहुत-सी कहानियों को पढ़ने के बाद समस्याएं या स्थितियां याद नहीं रह पातीं, चरित्र अधिक स्मरण बने रहते हैं। अधिकतर चरित्र ऊपरी तौर पर निष्क्रिय, असाधारण व विचित्र लगते हैं। उनमें अधिकतर भीतर ही भीतर घटित होता है। डॉ० लक्ष्मी नारायण लाल के शब्दों में “इन चरित्रों की सबसे बड़ी कसौटी यह है कि ये अंतर्मुखी अधिक होते हैं। सबके सब किसी न किसी अन्तर्द्वन्द्व, घात-प्रतिघात से अनुप्राणित रहते हैं कि इन्हें पूर्ण रूप से समझना कठिन कार्य है।” यह रहस्यात्मकता परिवर्ती कहानियों में दुर्बलता बनकर सामने आई है। ‘जाह्नवी’ में यह रहस्यमयता इस तरह कहानी को आच्छादित किए हुए है कि प्रतिपाद्य पाठक के हाथ से छूट-छूट जाता है। लेकिन प्रथम चरण की अधिकतर कहानियों में जैनैन्द्र के चरित्र हाड़-मांस के मनुष्य ही जान पड़ते हैं। ये अपनी दुर्बलताओं में सफल व सबलताओं में दुर्बल है। और इसकी इच्छा अनिच्छाओं, राग विरागों, मान्यताओं, विश्वासों, क्रिया, प्रतिक्रियाओं आदि का अत्यंत सूक्ष्म विश्लेषण जैनैन्द्र ने अपनी कहानियों में किया है। जैनैन्द्र अपने मनोविश्लेषण को सदैव दर्शन से अनुशासित करते रहे हैं। उन्होंने दर्शन का सहारा लेकर मानव मन की कुंठाओं को मूल रूप में बदलने का प्रयत्न किया है। जहाँ दार्शनिकता, मनोविज्ञान पर भारी पड़ी है, वहीं जैनैन्द्र की कहानियां अस्पष्ट व दुरूह होकर पाठक की पकड़ से बाहर हो गई हैं। जैनैन्द्र पर फ्रायड के मनोविज्ञान का प्रभाव उतना नहीं है जितना गेस्टाल्ट मनोविज्ञान का। खंड के माध्यम से संपूर्ण की कल्पना करने वाला गेस्टाल्ट मनोविज्ञान अद्वैतवाद के निकट पड़ता है। तत्सम कहानी में यह मनोविज्ञान बहुत प्रत्यक्ष है, जयसंधि सरीखी राजनीतिक कहानी में यशोविजय स्पष्ट करता है कि पूर्णता के संपूर्ण खंड का कोई महत्त्व नहीं, पूर्णता ही सत्य है। इसी प्रकार अधिकतर कहानियों पर गेस्टाल्टवाद का प्रभाव किसी न किसी रूप में अवश्य उभरा है।

जैनैन्द्र की कहानियों की वैचारिकता पर कई मतों व विचारकों का प्रभाव देखा जा सकता है। अहिंसा का सूत्र उन्हें ‘जैन धर्म’ से विरासत में मिला है। इस सूत्र को गांधी दर्शन से और प्रौढ़ता मिली है। जैनैन्द्र की अहिंसा और आत्मव्यथा का रूप अतिरंजना की हद तक पहुंचा हुआ है। रणवीर रांगा के साथ बातचीत में उन्होंने विद्रोह व संघर्ष को कतई स्वीकृति नहीं दी है क्योंकि वे उनके अहिंसात्मक चिंतन के विरोध में पड़ते हैं। जैनैन्द्र के अनुसार— मुझे लगता है कि विद्रोह व संघर्ष का मार्ग जब-जब अपनाया गया है, तब-तब अभीष्ट प्राप्त होने से रह गया है। इतनी क्रांतियां हुई हैं, उनका परिणाम क्या रहा है, इस तरह जैनैन्द्र बहुत कुछ यथा स्थितिवाद के समर्थन तक पहुंच जाते हैं। उनकी नैतिक स्थापनाएं बर्ट्रेण्ड रसेल के विचारों से मिलती हैं। ‘कहः’, ‘पंथा’, ‘प्रियव्रत’ कहानियों में कहीं प्रवृत्ति मार्गी चिंतन प्रमुख है, तो कहीं बाइबिल के इस कथन को आत्मसात किया गया है कि सूई के छेद में से ऊंट निकल सकता है। लेकिन स्पर्श के द्वार में किसी धनी का प्रवेश संभव नहीं है। ‘अपना-अपना भाग्य’ में नियतिवादी चिंतन को समर्थन नहीं मिला है। इस कहानी का बच्चा नैनीताल की भीषण सर्दी

में ठिठुर कर मर जाता है, नैरेटर उसकी मृत्यु पर बहुत व्यंग्यपूर्ण मुद्रा में कहता है कि अपना-अपना भाग्य है। किसी का भाग्य है कि वह प्रकृति का सुख लूटे और किसी का भाग्य है कि वह ठिठुर कर मर जाए।

जैनेंद्र ने अपनी कहानियों में भाषा का घरेलू मुहावरा प्रस्तुत किया है, लेकिन उनकी बाद की कहानियों में घरेलूपन की आत्मीयता नदारद है। उसका स्थान एक चिंतक की उलझी हुई भाषा ने ले लिया है। न तो वे प्रसाद की तरह एकदम संस्कृतनिष्ठ भाषा का व्यवहार करते दिखाई देते हैं, न उनकी भाषा सर्वथा उर्दू-बहुल है, एक बीच का रास्ता उन्होंने चुना है। डॉ० देवराज ने इस संदर्भ में अपने विचारों व्यक्त किए हैं— उर्दू से घृणा नहीं, अंग्रेजी से परहेज नहीं, संस्कृत से दुराव नहीं। उनके यहाँ भेदभाव की बू तक नहीं। केवल शर्त है तो स्वाभाविकता की, सहजता की और बोधगम्यता की। बाद की 'नीलम देश की राजकन्या' अविज्ञान जैसी कहानियों में बोधगम्यता कम होती गई है। 'पाजेब', 'पत्नी', 'खेल' आदि कहानियों में भाषा का सहज रूप दर्शनीय है— "सुनंदा ने अपने लिए कुछ भी बचाकर नहीं रखा था। उसे यह सूझा ही कहां कि उसे भी खाना है। अब कालिंदी के लौटने पर उसे जैसे मालूम हुआ कि उसने अपने लिए कुछ भी नहीं बचाकर रखा है। वह अपने से रुष्ट हुई।"

जैनेंद्र ने छोटे वाक्यों के माध्यम से अपनी बात कही है। उनमें बिंब विधायिनी शक्ति भरपूर है। अतः स्थिति और मनःस्थिति का विश्लेषण करने में प्रायः सफल होते हैं। छोटे वाक्यों की निर्मिति ने उनकी कहानी में आवश्यक विस्तार के लिए कम गुंजाइश छोड़ी है। ये शब्दों का इस्तेमाल ब्यौरे देने के लिए नहीं करते, संकेत व व्यंजना उन्हें अभीष्ट है। कालांतर में अनुभूति और विचार के पकने के साथ-साथ उनकी भाषा भी परिपक्व होती गई है। इसके फलस्वरूप उसे सूक्तिमयता का गुण दिखाई देता है। जैनेंद्र की भाषा मुहावरा निजी है, थोड़े में बहुत कहना उनकी प्रवृत्ति है। इसलिए बहुत कुछ पाठक को अपनी ओर से भी जोड़ना होता है।

जैनेंद्र की कहानियां तकनीकी दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। निस्संदेह जैनेंद्र की कहानियों में कथन पद्धति एकदम नई सी दिखाई पड़ती है। प्रेमचंद के समय कहानी का पैटर्न निश्चित सा था। जैसा कि रामदरश मिश्र ने लिखा है, जैनेंद्र ने पहली बार चेखव के कथा शिल्प को अपने ढंग से अपनाकर उसे कथानक की आरोह अवरोहमयी नाटकीयता से मुक्त किया। जैनेंद्र ने पाठक को स्तंभित, हतप्रभ या गद्गद् कर देने वाली तकनीक एक स्थान पर सोचने विचारने के लिए बाह्य करने वाली तकनीक अपनाई। इसलिए उनकी कहानियों में न तो क्लाइमेक्स जैसी कोई चीज है, और न कहानी एक बिंदु पर समाप्त हो गई है। उनकी कहानियां समाप्त होकर भी समाप्त नहीं होतीं। पाठक के सोचने का क्रम बना रहता है। रूपहीन रूप की कहानियां रचने के बावजूद जैनेंद्र की कहानियों का एक नया रूप विकसित किया जो एक ओर ललित निबंध की सीमा का स्पर्श करता है तो दूसरी ओर रेखा चित्र का। जैनेंद्र की कहानियों में से बात में से बात निकलती है। वे ऐसा जानते हैं कि मानों शिल्प के प्रति लापरवाह हैं, लेकिन वे पूर्णतः सजग रचनाकार हैं। उनकी कहानियों की संरचना वर्णनात्मक न होकर चित्रात्मक व विश्लेषणात्मक है। इसलिए उनमें घटनाओं की भूमिका महत्वपूर्ण नहीं होती। दो चार संदर्भों को एक साथ रखकर जैनेंद्र अपनी बात सलीके से कह जाते हैं। इस प्रक्रिया में पाठकीय कौतूहल का ध्यान न के बराबर रखते हैं परवर्ती कहानियों से पार्श्व निकल का अंश बढ़ने के साथ-साथ औत्सुक्य व कौतूहल का महत्व घटता गया है। कहानी की कहानी जैसी रचनाओं में विचार तत्व ही मुखर है, कथावस्तु को नेपथ्य में ढकेल दिया गया है। ए.एल. बेडर का मानना है कि कहानी की आधुनिक तकनीक खुले रूप में कथन नहीं करती। संकेत करती है या प्रतीति कराती है। जैनेंद्र की बहुत सी कहानियों की प्रकृति

Notes

यही है। इसलिए वे प्रथम पाठ के बजाय दूसरे तीसरे पाठ में अधिक बोधगम्य लगती हैं। उन्हें समझने के लिए पाठक का एक निश्चित बौद्धिक स्तर अपेक्षित है।

हिंदी कहानी को जैनंद्र की देन के बारे में भी काफी विवाद है। कुछ आलोचकों की दृष्टि में वे व्यक्तिवादी कहानीकार हैं। कुछ तो उन्हें कहानीकार से ज्यादा दार्शनिक ही मानते हैं। तो अश्वघोष के अनुसार वह दार्शनिक हैं, और ऐसे दार्शनिक हैं, जो 'हैं भी' और 'नहीं भी हैं'। उपेंद्रनाथ अश्वक के शब्दों में जैनंद्र विशिष्ट जनों की भाषा विशिष्ट जनों के लिए लिखने वाला कहानीकार है। लेकिन यह निर्विवाद है कि प्रेमचंद के बाद जैनंद्र की कहानियां नवीनता व ताजगी का सबूत देती हैं। न केवल पथ्य अपितु उनकी कहानियों का रूप बांध भी नयापन लिए हुए हैं।

मनःस्थितियों का विश्लेषण और कुछ कहानियों में काम संबंधों की अनुशीलन की दृष्टि से जैनंद्र के प्रदेय का नकारना कठिन है। जैनंद्र के विरोधी आलोचकों ने भी उनके इस प्रदेय को स्वीकारा है।

इसी प्रकार जैनंद्र की भाषा और तकनीक ने भी हिंदी कहानी की अभिव्यंजना को प्रौढ़ व परिपक्व बनाने में ऐतिहासिक योग दिया है। यदि जैनंद्र का आगमन न होता हो हिंदी कहानी कुछ और वर्षों तक किस्सागोई की गलियों में भटकती रहती। कहानी निर्माता में एक नए मार्ग का अन्वेषण और अनुसरण जैनंद्र को कालजयी कहानीकारों की पंक्ति में बैठा देता है। लेकिन बाद में जैनंद्र की भाषा और तकनीक एक मैनरिज्म के रूप में रूढ़ होती गई और उनका प्रभाव कम होता गया।

स्वयं जैनंद्र के अनुसार कहानी तो एक भूख है, जो निरन्तर समाधान पाने की कोशिश करती है। इधर जैनंद्र ने जिस तरह कहानी से अपने को दूर कर लिया है उससे लगता है, कहानी की भूख एकदम समाप्त हो गई है। इधर उन्होंने जो इक्का-दुक्का कहानियां लिखी हैं, वे सिद्ध करती हैं कि कहानी अब उनके लिए अनिवार्य माध्यम नहीं रही। अक्सर वे कहानी न लिखकर दर्शन लिखने लगते हैं। दर्शन भी ऐसा जो आज के पाठक के गले नहीं उतरता। अपनी इस परिणति के बाजूद जैनंद्र हिंदी कहानी में श्रेष्ठ कहानीकार हैं।

11.2.2 जैनंद्र के कथा साहित्य में कथा तत्व

जैनंद्र की कहानी कला का मूलाधार दर्शन व मनोविज्ञान है। इन्हीं दोनों के व्यापक धरातल से इनकी कहानियों की निर्मिति हुई है। 1935 में लिखी 'एक रात' से लेकर, 'यह संधि', (1942) तक इनके ये दोनों धरातल समान रूप से मिलते हैं। इनकी आरंभिक कहानियों में अपेक्षाकृत उनका दार्शनिक धरातल पूर्ण स्पष्ट व सशक्त है। प्रारंभ में जैनंद्र की इस दार्शनिकता की हिंदी जगत् में आलोचना हुई, क्योंकि कहानी कला में यह दार्शनिक तत्व पूर्ण मौलिक व क्रांतिकारी था। वस्तुतः विकास युग में ही यह सिद्ध हो चुका था कि कहानी की आत्मा स्वाभाविकता की है, यथार्थ सामाजिक समस्याओं की प्रतिष्ठा है। लेकिन इस नूतन प्रयोग की दिशा में स्वयं जैनंद्र ने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया है— "मैं किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं जानता जो मात्र लौकिक हो। जो संपूर्णता से शारीरिक धरातल पर रहता हो। सबके भीतर हृदय है, जो सपने देखता है। सबके भीतर आत्मा है जो जगती रहती है, जिसे शस्त्र छूता नहीं, आग जलाती नहीं। सबके भीतर वह है, जो अलौकिक है। मैं वह स्थल नहीं जानता जहां अलौकिक न हो। कहां वह कण है, जहाँ परमात्मा का निवास नहीं है? इसलिए आलोचक से मैं कहता हूँ कि जो अलौकिक है, वह भी कहानी तुम्हारी ही है, तुमसे अलग नहीं है। रोज के जीवन में काम आने वाली तुम्हारी जानी पहचानी चीजों का और व्यक्तियों का हवाला नहीं है तो क्या? उन कहानियों में तो वह अलौकिक है जो तुम्हारे भीतर अधिक तहों में बैठा है। जो और भी घनिष्ट व नित्य रूप

में तुम्हारा अपना है” कि अतएव जैनैन्द्र ने अपने दार्शनिक व्यक्तित्व की सहज प्रेरणा से विशुद्ध दार्शनिक कहानियां लिखीं। दार्शनिक संवेदनाओं में संस्कृत आख्यान, आख्यायिका, पौराणिक कथा और कल्पना के आधार से कहानियां लिखीं।

शिल्प विधि की दृष्टि से ये दर्शनगत कहानियां जिनमें धर्म, शिक्षा नीति व आदर्श की प्रतिष्ठा हुई है, साधारण कहानियों के शिल्प से दूर हट गई हैं। इनमें स्पष्ट रूप से वार्ता, दृष्टांत व कथा के तत्व आ गए हैं। स्वयं जैनैन्द्र के शब्दों में— “दार्शनिक तत्व के रूप में सत्य अत्यंत गरिष्ठ है। उस रूप में वह सत्य अपरोक्षित भी है। वह अधिकांश के लिए असाह्य है, उसको दृष्टांतगत, चित्रगत व कथा के रूप में परिवर्तित करो, तभी वह रुचिकर व कार्यकारी बनता है।” इस तरह इन दर्शनगत कहानियों में इनके शिल्पगत सत्य परम अनूठे ढंग से प्रयुक्त हुए हैं।

कथानक: जैनैन्द्र की दार्शनिक धरातल के रूप में बिखरी हुई कहानियां मुख्यतः चार प्रकार की संवेदनाओं से निर्मित हुई हैं। प्रथम, पृथ्वी के मानव व पौराणिक चरित्रों को लेकर प्रायः काल्पनिक इतिहास से जैसे ‘नारद का अर्ध’, ‘बाहुबली’, ‘देवी-देवता’, ‘ऊर्ध्व बाहु’, ‘अनबन’, ‘भद्रबाहु’ और ‘गुरु कात्यायन’, द्वितीय ऐतिहासिक संवेदना से ‘जय संधि’, ‘राजरानी’, ‘साधू’, ‘वैरागी’, ‘राजकन्या व युवराज’ आदि, तृतीय काल्पनिक व अलौकिक से संवेदना निर्माण करके जैसे— ‘रानी महामाया’, ‘राजपथिक’, ‘नीलम देश की राजकन्या’, ‘हवा महल’, ‘लाल सरोवर’, और ‘जनार्दन की रानी’ और चतुर्थ वह संवेदना है, जो पशु, पक्षी और वृक्षादि को लेकर निर्मित हुई है, जैसे— ‘बेचारा सांप’, ‘चिड़िया की बच्ची’, और ‘तत्सत’।

पहली प्रकार की संवेदना से कथानक-निर्माण पूर्ण कलात्मक हुआ है। इसका आरंभ प्रायः समस्या उद्घाटन के बीच से हुआ है। वर्णनों के माध्यम से जैसे भद्रबाहु में, पृथ्वी के एक मानव, भद्रबाहु और स्वर्ग के इंद्र के बीच स्पर्धा की समस्या है। कथानक के विकास में घटनाओं की क्रमिक अवतारणा हुई है, और इसका अंत दार्शनिक ध्येय की परिसमाप्ति पर होता है, जैसे नारद द्वारा बताई हुई विधि के अनुसार इंद्र और शची का स्वर्ग से पृथ्वी पर उतरना। ऐतिहासिक संवेदना से भी कथानक का निर्माण इसी पद्धति पर हुआ है। तीसरी प्रकार की संवेदना से कथा-विधान अत्यंत सरल व प्रायः कलात्मक ढंग से हुआ है।

कुछ कहानियों में कथानक निर्माण कथात्मक तत्व, कार्य व्यापार और घटनाओं के तादात्म्य से हुआ है, जैसे ‘हवा महल’, ‘रानी महामाया’, और ‘जनार्दन की रानी’ के कथानक। इन तीनों प्रकार के कथानक मुख्यतः सुस्पष्ट व अपने कथातत्व में पूर्ण रहते हैं। इतिवृत्त में कलात्मकता का आग्रह मुख्य रूप से रहता है। चतुर्थ प्रकार के संवेदना से कथानक निर्माण मुख्यतः कलात्मक ढंग से हो ही जाता है, क्योंकि प्रायः इस धरातल की कहानियां अन्य पुरुष में हैं, जैसे ‘तत्सत्’ और ‘बेचारा सांप’ लेकिन इस दिशा की जो कहानियां विशुद्ध रूप में प्रतीकात्मक हैं उनके कथानक निर्माण में कार्य व्यापार व घटनाएं मुख्य रूप से आई हैं। ऐसी कहानियों में ‘तत्सत’ का नाम लिया जा सकता है।

चरित्र-चित्रण: दार्शनिक धरातल की कहानियों के कथानक निर्माण में काफी कम कलात्मक बनाया जा सकता है, क्योंकि इनका कथा-विधान प्राचीन शैली वार्ता, कथा दृष्टांत आदि के आधार पर निर्मित होता है। लेकिन इस प्रकार की कहानियों में जैनैन्द्र की वास्तविकता शिल्प विधान में स्पष्ट हुई है। इन्होंने यहाँ चरित्र-निर्माण, चरित्र-चित्रण, और उनके व्यक्तित्व प्रतिष्ठा में आश्चर्यजनक शिल्प कौशल का परिचय दिया है। वस्तुतः यहाँ चरित्र-निर्माण में कल्पना तत्व है। फिर भी प्राचीन वार्ताओं, कथाओं और दृष्टांतों के चरित्रों की भांति यहाँ के चरित्रों में अपना अलग-अलग आकर्षण है। यहाँ के चरित्र मुख्यतः छह वर्गों में बाँटे जा सकते हैं।

Notes

प्रथम कोटि में ऐतिहासिक चरित्र, जैसे— 'यशोविजय', 'वसंत तिलका', 'जयवीर' और 'जयसंधि'। दूसरी कोटि पौराणिक चरित्रों की है, जैसे— शंकर, पार्वती, इंद्र आदि। और तृतीय लौकिक है, जैसे— राजा रानी, योगी, वैरागी आदि। चतुर्थ आध्यात्मिक व पंचम विशुद्ध भावात्मक व काल्पनिक चरित्र हैं और अंतिम है— प्रतीकात्मक पशु पक्षी चरित्र।

ऐतिहासिक चरित्र: 'जय संधि', ऐतिहासिक संवेदना की प्रतिनिधि कहानी है। इसमें केवल चार चरित्र हैं। दो पति-पत्नियों के जोड़े, जैसे यशो विजय और वसंत तिलका व जयवीर व यशस्तिलका, ये सभी चरित्र किसी न किसी अज्ञात प्रेरणा व अन्तर्द्वन्द्व से अभिभूत हैं। इनके व्यक्तित्व में एक विचित्र रहस्यात्मक प्रेरणा है, यशोविजय में वसंत तिलका ने वसंत से इसलिए विवाह किया है कि वह समाज की विषमताओं को चुनौती दे, दूसरी ओर यशस्तिलका ने जयवीर को इसलिए अपना पति बनाया है, कि वह अपने पति को यशोविजय के सामने पराजित करे, क्योंकि यशस्तिलका यशोविजय से प्रेम करती है। रूप किसी न किसी रहस्यात्मक शक्ति से प्रेरित है, और सब अपनी-अपनी सीमा में महान् व आदर्श हैं।

पौराणिक चरित्र: यहाँ शंकर, पार्वती, इंद्र, शची, नारद, कामदेव, रति और गुरु कात्यायन आदि मुख्य चरित्र हैं। लेकिन इन पौराणिक चरित्रों की अवतारणा निरपेक्ष ढंग से न होकर धरती व मानव सापेक्ष हुई है। नारद का अर्ध, में शंकर, पार्वती, कैलाशपुरी में बैठकर नीचे धरती के आदि मानव को धनराज व जनराज के रूप में अपनी लीला देखते हैं। इनमें नारद पृथ्वी और अन्य ग्रहों का भ्रमण करते हुए यहाँ पहुँचते हैं। धरती के मानव की स्थिति की चर्चा होती है। नारद का कहना था कि धरती त्वरा चाहती है, कुछ और आगे कुछ अप्राप्त, कुछ निषिध्य। पार्वती ने सहसा अपने आप लंबित केशों से एक लट को निचोड़ते हुए कालकूट अमृत की एक बूंद को पृथ्वी की धुरा में चुवा दिया, परिणामतः पृथ्वी पर धन राशि आनंद सुसंपत्ति बिखर गई और पृथ्वी पर कलह मच गया। मानव में 'अपना मेरा' का कीड़ा पैठता है, तथा संयुक्त प्रेम विनिष्ट हो जाता है। भद्रबाहु में, इंद्र कामदेव के सामने धरती के भद्रबाहु और उर्ध्वबाहु को रखकर दोनों के चारित्रिक बल और व्यक्तित्व की तुलना की गई है। इनकी परस्पर अवतारणा से यह दर्शन प्रतिपादित किया गया है कि सदा सबका कारण पृथ्वी है, उस पर मनुष्य परम बलिष्ठ व महान् है। अनबन, में बुद्धि, इंद्र व धृति की अवधारणा से नीति और दर्शन पर अपेक्षाकृत निरपेक्ष रूप से प्रकाश डाला गया है।

लौकिक राजा-रानी: लौकिक राजा-रानी के प्रकाश में जिन चरित्रों का निर्माण हुआ है, उनमें मुख्य रूप से चारित्रिक निष्ठा व जीवन नीति का सार सबसे उज्ज्वल व सशक्त है। रानी महामाया, जनार्दन की रानी और राजपथिक का राजकुमार, ये तीनों चरित्र भावुकता, चारित्रिक निष्ठा व आदर्श के प्रतीक हैं। वहाँ के स्त्री पात्र अनन्य श्रद्धा भक्ति के प्रतीक हैं। तथा राजा चरित्र व दार्शनिकता के प्रतीक हैं।

जनार्दन राजा यह कहकर कि ब्रह्माण्ड अनंत है और ग्रह मंडल में अनेक आवागमन तो लभ्य ही हैं, साथ छोड़कर विरक्ति पथ पर चल देते हैं। इस तरह राजपथिक का राजकुमार और वैजयंत भी परोक्ष सत्ता के अन्वेषण और संयोग के लिए अपना-अपना राज्य छोड़कर चल देते हैं।

आध्यात्मिक चरित्र: लौकिक धरातल पर कुछ आध्यात्मिक चरित्रों की भी अवतारणा हुई है। लाल सरोवर का वैरागी, इस प्रकार की कहानियों की प्रतिनिधि कहानी कही जा सकती है। मानवता की सेवा, आदर्श में अपार निष्ठा, वस्तु के प्रति उत्कट उपेक्षा, ईश्वर में अनन्य भक्ति इसके चरित्र की प्रमुख विशेषताएँ हैं। इस चरित्र को निश्चित सुस्पष्ट रूप देने के लिए इसके व्यतिरेक में जैनैन्द्र ने एक अधम चरित्र की अवतारणा की है। यह वैरागी की चारित्रिक विशेषताओं से बिलकुल उलटा है, वैरागी में

इतना आत्मबल है कि वह मानवता की सेवा में अथवा वैसे ही जहाँ कहीं जाता है, उसके प्रत्येक पग पर एक-एक अशर्फी पैदा होती रहती है। लेकिन यह वैरागी सोना पदार्थ का परम उपेक्षक है, और उसे अपने अध्यात्म बल का कुछ पता भी नहीं है। इसके विपरीत मंगल दास अधिक स्वर्ण की लालच से वैरागी भक्त हो जाता है। वैरागी को अन्यान्य जीवन परीक्षाएं देनी पड़ती हैं। लेकिन अंत में वैरागी को जब अशर्फी के रहस्य का पता चलता है, तब वह ईश्वर से उसकी परिसमाप्ति की प्रार्थना करता है, और अपने अभीष्ट को प्राप्त होता है। वैरागी के व्यक्तित्व से परोक्ष सत्ता की भक्ति या अध्यात्म बल की निष्ठा वस्तु, से ऊपर उठकर रहस्यात्मक शक्ति की ओर प्रेरित होने का हमें संदेश मिलता है।

भावात्मक चरित्र: दार्शनिक धरातल से लिखी कहानियों में कुछ ऐसे चरित्रों की भी अवतारणा हुई है, जो विशुद्ध रूप से भावात्मक व काल्पनिक हैं। नीलम देश की राजकुन्या उसकी सखियां व नीलम देश पहुंचने वाला राजकुमार इसके प्रतीक हैं। राजकुमार की रानी राजकुमार को खाना खिलाते, रात को सुलाते समय अपनी कल्पना से नीलम देश की छोटी-सी रानी के भावात्मक व्यक्तित्व से उसका परिचय कराती है— “सात समुंदर पार नीलम का देश है, वहाँ लाल पन्नों का महल है। उसमें अकेली नीलम देश की रानी रहती है। समुद्र के नीचे से पानी की परियां सीप के पात्रों में तरह-तरह के फल-फूल लाती हैं। फूलों को वह सूंघ लेती है, फलों का रस पी लेती है। वहाँ की हवा स्वच्छ दूध की-सी है, उसको वह पीती है। वह चांदनी से बारीक सपनों के कपड़े पहनती है। ऐसी है वह रानी जो सोने के महलों में सहस्रों वर्षों से अकेली उस द्वीप की रानी है, और आदि से प्रतापी राजकुमार के आने की प्रतीक्षा में अकेलापन काट रही है।”

वस्तुतः यह भावात्मक चरित्र किसी परोक्ष सत्ता का प्रतीक है। इसमें अध्यात्म की दार्शनिक व्याख्या है। राजकुमार भी इसी प्रकाश में आता है और दोनों में परस्पर ब्रह्म और आत्मा के व्यक्तित्व का संकेत है।

प्रतीकात्मक चरित्र: प्रतीकात्मक चरित्र के प्रकाश में मुख्यतः पेड़-पौधे, जीव जंतु आदि प्रयुक्त हुए हैं। वह ‘बेचारा सांप’ में ‘सांप तत्सत में बेट’, ‘पीपल’, ‘शीसम’, ‘बबूल’ व ‘चिड़िया की बच्ची’ में चिड़िया आदि चरित्र को दिया गया है। ये प्रतीकात्मक चरित्र विशुद्ध रूप से मानव दर्शन सापेक्ष्य है। इनके माध्यम से मनुष्य जीवन इसकी नीति, उसके व्यवहार व इसके जीवन दर्शन पर प्रकाश डाला गया है। इनमें स्वाभाविकता लाने के लिए जैनैन्द्र ने स्वाभाविक परिस्थिति और वातावरण उपस्थित करने का सफल प्रयत्न किया है। वस्तुतः चरित्र निर्माण व व्यक्तित्व प्रतिभा ही इन दार्शनिक कहानियों के प्राण हैं उसके माध्यम से कहानीकार ने अपना अभीष्ट पूरा किया है।

शैली: शैली के व्यापक पक्ष में इन कहानियों की निर्माण-शैली, ‘काल व दृष्टांत के रूप में है।’ आधुनिक कहानी शैली में इन कहानियों का निर्माण-क्यों नहीं हो सका, इसका सबसे बड़ा कारण यही है कि ये कहानियाँ विशुद्ध धरातल से लिखी गई हैं। स्वयं जैनैन्द्र के ही शब्दों में दार्शनिक तत्व के रूप में सत्य अत्यंत गरिष्ठ है। उस रूप में वह अपरीक्षित भी है। यह अधिकांश के लिए अग्राह्य है। फलतः उसको चरित्रगत, व कथारूप में परिवर्तन करना पड़ा, तभी वे दार्शनिक तत्व ग्रहण हो सके।

कहानियाँ विशेषकर दृष्टांत के रूप में क्यों लिखी गई? इसके उत्तर में जैनैन्द्र का ही दृष्टिकोण इस विषय में सबसे अधिक वैज्ञानिक है। “शास्त्र ने भी कह दिया सत्यं वद लेकिन असली जिंदगी में सत्यं वद सीधी-साधी चीज नहीं रह जाती। सत्यं वद पर जब चलना शुरू करते हैं, तो पेंच पर पेंच पैदा होते हैं। उस सीधे-साधे कथन में शंकाएँ निकलती जाती हैं, जब आदमी कहता है, शास्त्र का सत्यं वद हमको मत दो, दुनिया के सामने रखकर दृष्टांत से हमें दिखलाओ, सत्यं वद क्या है? कैसे यह टिकता है।” परिणामस्वरूप ये कहानियाँ दृष्टांत शैली में लिखी गई हैं, सबमें कोई न कोई संसार घटित कथा

Notes

के दृष्टांत से दार्शनिक तत्व की प्रतिष्ठापना हुई है। वार्ता-शैली में लिखी हुई कहानियाँ अपेक्षाकृत छोटी और रेखाचित्र के रूप में निर्मित हुई हैं, जैसे 'नारद का अर्घ्य', 'बाहुबली', 'तत्सत', और 'गुरु कात्यायन' आदि वार्ता में वस्तुतः किसी की महिमा वर्णित होती है, या किसी के जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना कही जाती है। इन कहानियों में भी व्यक्तियों के विषय में बातें कही गई हैं। इनमें कथा विधान सामान्य रहकर व्यक्तियों के विषय में दार्शनिकता की निष्पत्ति सफल रूप में हुई है। कथात्मक शैली में आई हुई कहानियाँ अपेक्षाकृत लंबी और सबसे अधिक आकर्षक सिद्ध हुई हैं, जैसे— 'लाल सरोवर', और 'नीलम देश की राजकन्या'। इन दोनों कहानियों की शैली बिल्कुल उसी तरह की है, जैसे कोई कथावाचक या नानी दादी कहानियाँ सुनाती हैं। उदाहरण के लिए 'लाल सरोवर' कहानी इस तरह कथित है— "कमल के फूलों से भरे इस लाल सरोवर की कथा, भाई प्राचीन है और परंपरा के अनुसार सुनता हूँ। बहुत पहले यहाँ से उत्तर पूरब की तरफ एक नगर बसा हुआ था, उसके बाद खंडहर की हालत में एक शिवाला था आदि।" रानी महामाया कहानी की निर्माण शैली कथा व नाटक शैली के बीच की है। वस्तुतः किसी भी कहानी का आरंभ भूमिका को लेकर हुआ है, व रानी महामाया को छोड़कर किसी भी कहानी के अंत में उपसंहार नहीं और यह उपसंहार भी विवशता का परिणाम था। शैली के सामान्य पक्ष में इन कहानियों में देश काल, परिस्थिति और वक्त आदि का चित्रण, वर्णन सवल व शक्तिशाली है।

दार्शनिक धरातल के कारण इन कहानियों के निर्माण में एक निश्चित दार्शनिक नैतिक धारणा सर्वत्र व्याप्त है। यही धारणा लक्ष्य रूप में इन कहानियों के सृजन की मुख्य प्रेरणा है। लक्ष्य को हम स्पष्ट रूप से तमाम कहानियों में ढूँढ सकते हैं, जैसे जनार्दन की रानी, कहानी में लक्ष्य के प्रेरणा, "ब्रह्मांड अनंत है, और इस ब्रह्मांड में आवागमन तो लगा ही है।" लाल सरोवर में लक्ष्य की प्रेरणा, "अनेकानेक अनर्थों का मूल यह स्वर्ण है, भौतिकता, लेकिन फिर भी प्रभु सबमें तुम्हीं हो, तुम्हीं हो," इस तरह वह बेचारा सांप में तो "परमात्मा सदा मौन रहता है, कृत्य में ही वह व्यक्त है। जगत की घटना ही जगदीश्वर की वाणी है।" 'जय संधि', और 'नीलम देश की राजकन्या' जैसी कहानियों में प्रेरणा, लक्ष्य के साथ ही साथ अनुभूति की तीव्रता भी साफ झलकती है।

11.2.3 जैनैद्र की कहानियों में मनोवैज्ञानिक धरातल

मनोवैज्ञानिक धरातल पर लिखी जैनैद्र की कहानियाँ शिल्प विधि की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ हैं। यहाँ शिल्प विधान का वह चरमोत्कर्ष सर्वथा स्पष्ट है, जो प्रेमचंद, प्रसाद युग से हमारे अध्ययन को काफी गहरा बना देता है। शिल्प विधान, घटना की प्रधानता, इतिवृत्त का विस्तार बाह्य संघर्षों एवं परिस्थितियों के चित्रण, वर्णन से आगे बढ़कर स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ जाता है। इसमें बाह्य से अंतर जाने का आग्रह पूर्व सफलता से स्पष्ट किया गया है। अतएव जैनैद्र की कहानी कला में उन्हें कथा विधान के नए-नए कौशल, नए-नए प्रयोग करने पड़े और इनमें उनके आश्चर्यजनक इतिलाघवता का परिचय मिलता है।

वस्तुतः जैनैद्र की मनोवैज्ञानिक धरातल पर लिखी समस्त कहानियों को हम मुख्य रूप से चार भागों में विभाजित कर सकते हैं— प्रथम प्रकार की वे कहानियाँ हैं जो किसी के जीवन के एक लंबे भाग के आधार पर लिखी गई हैं, जैसे मास्टर जी। दूसरे प्रकार की कहानियाँ वे हैं, जो एक रात या कुछ घंटों के जीवनचक्र के आधार पर निर्मित होकर मनुष्य के संपूर्ण व्यक्तित्व का अध्ययन उपस्थित करती हैं, जैसे— एक रात। तीसरे प्रकार की वे कहानियाँ हैं जो केवल विशिष्ट रूपों के आधार पर लिखी गई हैं। वे जीवन के किन्हीं विशिष्ट चित्रों की द्रुत झांकी उपस्थित करती हैं, जैसे— क्या हो,

चौथी प्रकार की कहानियाँ मात्र चरित्र विश्लेषण और अध्ययन के आधार पर लिखी गई हैं जैसे— मित्र विद्याधर।

पहली किस्म में कथानक सुस्पष्ट व अपने निश्चित इतिवृत्त के साथ आया है। यहाँ कथानक का निर्माण चरित्रों के विकासक्रमों के माध्यम से हुआ है। दूसरे प्रकार के कथानक अपेक्षाकृत सबसे अधिक सबल व कथा विधान के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। कथानक निर्माण में वर्तमान स्थितियों का पूर्व स्थितियों से तादात्म्य स्थापित कर इसके विधान में इतना कलात्मक चमत्कार उत्पन्न किया गया है कि इससे निर्मित कहानियाँ जैनेंद्र की सर्वोत्कृष्ट कहानियाँ हैं फिर भी यह कथानक निर्माण में घटनाचक्रों और संयोगों का बहुत कम सहारा लिया गया है।

यही कारण है जहाँ ये कथानक शिल्प विधान के उत्कृष्ट उदाहरण हैं, वहीं इन्हें हृदयंगम करने के लिए पाठक को भी पूर्ण जागरूक, बौद्धिक और सशक्त रहना होगा, तभी पाठक से संवेदना का पूर्ण साधारणीकरण हो सकता है। तीसरे प्रकार के कथानक अपेक्षाकृत सूक्ष्म तत्वों से निर्मित हुए हैं। ये कुछ क्षणों की मनःस्थिति की आधार शिला से मनःउद्वेगों के घात-प्रतिघातों के साधनों से व्यक्त हुए हैं। केवल नाम मात्र के लिए कथानक ऐसे लगते हैं कि जैसे कोई मात्र भाव ही फैलकर कहानी बन गया हो और उसमें कथा चरित्र आदि इस तरह से संगुणित हो गए हैं कि सभी तत्वों की अपनी स्वतंत्र सत्ता ही एक दूसरे में खो गई है। 'क्या हो', में सब कुछ स्मृति चिन्तन द्वारा ही व्यक्त किया गया है, लेकिन फिर भी कथा तत्व सूक्ष्म स्वरूप में होता हुआ भी इतना शक्तिशाली व बेगवान है कि इससे संपूर्ण कहानी जैसी कोई अग्नि शिखा सी प्रतीत होती है। वो जो किसी तूफान की गति में जलती-जलती सहसा टूट जाती है। चौथे प्रकार में कथानक और सूक्ष्म हो गया है। इसमें एक प्रकार से कथा तत्व का सर्वथा लोप हो गया है। क्योंकि ये कहानियाँ चरित्र की आंतरिकता के रेखाचित्र हैं। और यहाँ सूक्ष्म भावों, मनोविकारों को स्थूल कथातत्व में समेटना असंगत क्रिया हो गई है।

इस तरह से चारों प्रकार के कथानक तथा उनके शिल्प विधान में मूलतः कहानी की संवेदना और मनोविज्ञान के स्तर का विभेद है। जहाँ मनोविज्ञान स्थूल संवेदना को लेकर चला है। वहाँ कथानक, उसका इतिवृत्त, उसका स्वरूप उतना ही स्पष्ट व निश्चित है। लेकिन जहाँ मनोविज्ञान केवल चरित्रों को लेकर कहानियों में प्रतिष्ठित हुआ है, वहाँ कथानक सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होते गए हैं।

जैनेंद्र की मनोवैज्ञानिक कहानियों में अधिकतर चरित्र की कहानियाँ हैं। कथा तत्व तो मात्र साधन रूप में विद्यमान है। लेकिन साध्य चरित्र विश्लेषण है। जैनेंद्र ने अपनी कहानी कला में चरित्र को क्यों इतना महत्व दिया इस आकार ने उनके सूक्ष्म दृष्टिकोण और अध्ययन का आग्रह ही कहा जा सकता है। जैनेंद्र के इस प्रकार के चरित्र अन्तर्मुखी हैं, उसके सब किसी न किसी अन्तर्द्वन्द्व, घात-प्रतिघात से अनुप्राणित हैं। वे कुछ ऐसी रहस्यमय शक्ति से प्रेरित रहते हैं कि इन्हें पूर्ण रूप से समझना कठिन हो जाता है। लेकिन इन चरित्रों को साधारण नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक चरित्र ऊपर से ऐसा लगता है, जैसे कोई अजेय दैत्य हो, पर प्रत्येक मानवीय स्थिति में वह मोम की गुड़िया-सा बन जाता है। इनके चरित्र का आकर्षण भी अपूर्व है। इनमें किसी न किसी देश से एक अव्यक्त करुणा की लय, व्यक्त टीस का अभिशाप और इनका निश्चेष्ट होना है यह सत्य इनके स्त्री चरित्र पुरुषों पर समान रूप से चरितार्थ होता है।

उनकी 'एक रात', 'ग्रामोफोन का रिकार्ड', 'मास्टरसाहब', 'पत्नी', 'पानवाला', 'बिएट्रीस' कहानियों में दमित काम भावना का विस्फोट है। 'ध्रुवयात्रा' में फ्रायड के मुक्त आसंग (Free association) वाली पद्धति का सहारा लिया गया है। जैनेंद्र की अपेक्षा अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी पर फ्रायड का अधिक

Notes

प्रभाव है। डॉ० देवराज उपाध्याय 'तत्सत्' कहानी पर गेस्टाल्टवादी मनोविज्ञान का प्रभाव मानते हैं, जिसे सम्पूर्णतावादी मनोविज्ञान कहते हैं। इसकी मूल धारणा यह है कि सम्पूर्ण आकृति पहले है, अन्य रेखायें बाद में। उपाध्याय जी का कहना है कि इस कहानी में खंड के पूर्व सम्पूर्ण के अस्तित्व का समर्थन किया गया है। किंतु इस स्थापना से सहमत हो पाना कठिन है। 'तत्सत्' जैनेंद्र की दार्शनिक कहानी है, जिसमें वे ईश्वर की सर्वव्यापकता का प्रतिपादन करते हैं। 'पाजेब' संग्रह की कुछ कहानियों में बाल-मनोविज्ञान का प्रयोग किया गया है। स्वयं 'पाजेब' कहानी इसका उत्कृष्ट उदाहरण है।

'एक रात' का राष्ट्रसेवक पात्र जयराज न्यूरोटिक पात्र है। वह कुठित और मनोविकारग्रस्त है। कहानी में जयराज की मानसिक उलझन का चित्रण करने के लिए मनोविश्लेषण शास्त्र की उस पद्धति का सहारा लिया गया है, जिसका प्रयोग मनोरोगी के भूतकाल अथवा विक्षिप्तता के कारणों की जाँच के लिए किया जाता है। जयराज स्टेशन पर होल्डर से ब्लाटिंग पैड पर बहुत सी असम्बद्ध बातें लिखता है। अंग्रेजी में प्रेम एवं विवाह के संबंध में लिखे गए असम्बद्ध से दिखने वाले वाक्यों से उसकी कामकुंठा का प्रकटीकरण होता है। प्रेमचन्द की किसी भी कहानी में इसका प्रयोग नहीं किया गया है। 'ध्रुव-यात्रा' कहानी में डायरी तथा परिप्रश्न के द्वारा विश्वविजयी पात्र की आंतरिक ग्रंथि खोली गई है। 'विण्ट्रीस' कहानी का मेजर भावनाशून्य है। सुई चुभाने पर भी उसे पीड़ा नहीं होती। अस्पताल की एक नर्स अपने स्नेह से उसे पुनः सजीव करती है। 'बिल्ली का बच्चा' में शरबती अपने नटखट भाई की मृत्यु से विक्षिप्त सी हो जाती है। उसके स्नेह का केन्द्र जब एक बिल्ली का बच्चा बन जाता है तभी वह स्वस्थ होती है। इसमें मानस की स्थानान्तरिकरण (Transference) की क्रिया की ओर संकेत किया है। हम अपनी भावनाओं के मूलाधार को परिवर्तित कर संतोष प्राप्त कर लेते हैं। शरबती ने अपने भाई के रिक्त स्थान को बिल्ली के बच्चे से भर कर संतोष प्राप्त किया। 'दृष्टिदोष' कहानी में एक नारी दृष्टि दोष के बहाने अपने प्रेमी नेत्र-विशेषज्ञ का सान्निध्य प्राप्त करती है किन्तु उसका नैतिक अहं (सुपर-इगो) इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं—इसलिए वह डॉक्टर से कहती है— "अजी, मुझे दृष्टिदोष न होता और आप आँख के डॉक्टर न होते तो मेरा आपसे क्या वास्ता था?"

जैनेंद्र कुमार पात्र के मन में चलने वाले विचारों की तरंग बड़े ही यथार्थ रूप में प्रस्तुत कर देते हैं, जिससे पाठक उसके मन की पूरी परिस्थिति जान लेता है। 'पत्नी' कहानी में सुनन्दा की मनोदशा का ऐसा ही चित्रण है। "वह सुनन्दा: सोचती है.... नहीं सोचती कहाँ है, अलस भाव से वह तो वहाँ बैठी ही है। सोचने की है तो यही कि कोयले ने बुझ जाँय... वह जाने कब आयेंगे, एक बज गया है... कुछ हो आदमी को अपनी देह की फिक्र तो करनी चाहिए... और सुनन्दा बैठी है। वह कुछ कर नहीं रही है। जब वह आयेंगे तो रोटी बना देगी। वह जाने कहाँ-कहाँ देर लगा देते हैं। और कब तक बैठूँ। मुझसे नहीं बैठा जाता। कोयले भी लहक आये हैं।"

जैनेंद्र कुमार मनोविज्ञान का उपयोग अवश्य करते हैं, लेकिन वह साधन है, साध्य नहीं। इस साधन के द्वारा ही वे चरित्र की आंतरिक झाँकी प्रस्तुत करते हैं। व्यक्ति का यह यथार्थ चित्र हमें आनन्द प्रदान करता है। डॉ० देवराज उपाध्याय ने भी यही बात कही है— "जैनेंद्र में हार्दिकता है, उनकी पकड़ कलात्मक है, उनकी दृष्टि स्वच्छन्द है, मनोविज्ञान उनकी कथाओं पर हावी नहीं हो सका है। हालांकि मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मता, जटिलता और रहस्यमय उलझनों का दर्शन उतना शायद ही कहीं किसी अन्य कलाकार में प्राप्त होता है।"

डॉ० सुरेश सिन्हा ने जैनेंद्र के पात्रों के संबंध में लिखा है कि— उनके पात्र एकाकी जीव होते हैं, सामाजिक विकास परम्परा से जो पूर्णतया असम्पृक्त होते हैं, उनमें नैराश्य, कुंठा, घुटन और पीड़न की

प्रवृत्तियाँ होती हैं और ऐसी ही विषम पर वैयक्तिक समस्याओं के जाल में उलझाकर जैनैन्द्र कुमार उनके मनोभावों एवं अन्तर्द्वन्द्वों का सूक्ष्म विश्लेषण करते हैं।' आगे डॉ० सिन्हा लिखते हैं— “इनमें एक ओर प्रगतिशील समाजवादी विचारधारा की क्षीण, अस्पष्ट एवं आरोपित रेखाएँ प्राप्त होती हैं, दूसरी ओर घोर कुंठा, निराशा एवं वासनात्मक अतृप्ति की भावना की घुटन लक्षित होती है।” यह कोई त्रुटि नहीं, बड़े से बड़े जननायक, नेता और राष्ट्रसेवी के जीवन में कुंठाएँ एवं अतृप्ति रह सकती हैं। यह तो जीवन का यथार्थ है। प्रेमचन्द और जैनैन्द्र में यही तो अंतर है। प्रेमचन्द के आदर्शवादी पात्रों से जैनैन्द्र के कुंठाग्रस्त पात्र अधिक सजीव हैं क्योंकि हमें उनका अंतरंग परिचय मिल जाता है और कभी कभी हमें उनमें अपना ही प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है। जैनैन्द्र के यथार्थवाद की सबसे बड़ी दुश्मन है उनकी दार्शनिकता और चिंतनशीलता। जैनैन्द्र भारतीय दर्शन के समर्थक हैं, इसलिए उनके पात्र भी रहस्य एवं दर्शन के आवरण को ओढ़कर साधारण पाठकों के लिए दुर्बोध तथा असामान्य हो गए हैं। दुनिया में ऐसा कौन व्यक्ति है, जिसमें कोई न कोई मनोवैज्ञानिक समस्या न हो? इस दृष्टि से जैनैन्द्र की मनोवैज्ञानिक कहानियाँ व्यक्ति के मानस के यथार्थ की कहानियाँ हैं।

स्व:मूल्यांकन

रिक्त स्थान भरें:

1. जैनैन्द्र का पहला कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ। कुछ अन्य चर्चित कहानियाँ, ... और हैं।
2. जैनैन्द्र की साहित्यिक उपलब्धियों के कारण उन्हें 1970 में की उपाधि और 1973 में दिल्ली विश्वविद्यालय से की उपाधि से सम्मानित किया गया।
3. जैनैन्द्र की संस्मरण यात्रा में और मुख्य हैं।

11.3 सारांश (Summary)

- हिंदी कथा साहित्य में कहानीकार जैनैन्द्र ने कथा में नई शैली का प्रवर्तन किया इनके व्यक्तित्व की छाप प्रत्येक कथा में ही नहीं वरन् कहानी की प्रत्येक पंक्ति में दिखाई देती है।
- जैनैन्द्र के बचपन का नाम आनंदी लाल जैन था। उनका जन्म 1905 में अलीगढ़ जिले के कौड़िया गंज नामक कस्बे में हुआ। आपके पिता का नाम प्यारेलाल था। 1932 में आपका विवाह भगवती देवी के साथ हुआ। 1928-29 में विधिवत लिखना शुरू किया। पहला कथा संग्रह 'फाँसी' 1929 में प्रकाशित हुआ। यह अमर कथाकार 1988 में देहमुक्त हो गया।
- जैनैन्द्र के मुख्य कहानी संग्रह— 'फाँसी', 'अपना-अपना भाग्य', 'एक रात', 'जाहवी', 'पाजेब', 'अभागे लोग' काफी चर्चित रहे।
- जैनैन्द्र जी ने 11 मौलिक उपन्यास, 10 कहानी संग्रह, 15 विचार पुस्तकें, 2 यात्रा संस्मरण, 4 अनूदित उपन्यास नाटक आदि लिखे हैं।
- जैनैन्द्र की कहानी कला का मूलाधार दर्शन व मनोविज्ञान है। दार्शनिक संवेदनाओं में संस्कृत आख्यान, पौराणिक कथा और कल्पना के आधार पर कहानियाँ लिखी गईं।

Notes

11.4 शब्दकोश (Keywords)

परिवेश: वातावरण, माहौल।

रचनाएँ: साहित्यिक कृतियाँ।

11.5 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. कथाकार जैनेंद्र कुमार के व्यक्तित्व और कृतित्व का संक्षिप्त वर्णन करें।
2. कथाकार जैनेंद्र के कृतित्व की विशेषताओं का वर्णन करें।
3. हिन्दी साहित्य जगत में कहानीकार के रूप में जैनेंद्र का क्या योगदान रहा है?
4. जैनेंद्र की कहानियों में मनोवैज्ञानिकता और दार्शनिकता का उल्लेख प्रकट करते हुए इसने कहानियों पर पड़े प्रभाव को स्पष्ट करें।

उत्तर: स्व:मूल्यांकन

1. फाँसी, ध्रुव यात्रा, अभागे लोग, जय संधि
2. पदम विभूषण, डी. लिट्
3. काश्मीर की वह यात्रा, गांधी: कुछ स्मृतियाँ

11.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



जैनेंद्र का जीवन दर्शन – कक्कड़ डॉ० कुसुम, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली।

जैनेंद्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ – जैन डॉ० निर्मला, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली।

जैनेंद्र की कहानियाँ: एक मूल्यांकन – शर्मा डॉ० शकुन्तला, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली।

इकाई 12: कहानियों की समीक्षा

Notes

अनुक्रमणिका (CONTENTS)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

12.1 जैनेन्द्र की कहानियों की समीक्षा

12.1.1 जैनेन्द्र की कहानी “रुकिया बुढ़िया” की समीक्षा

12.1.2 जैनेन्द्र की कहानी “एक रात” की समीक्षा

12.1.3 जैनेन्द्र की कहानी “जाह्नवी” की समीक्षा

12.1.4 कहानियों की व्याख्या

12.2 सारांश (Summary)

12.3 शब्दकोश (Keywords)

12.4 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

12.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी:

- ‘रुकिया बुढ़िया’, ‘एक रात’, ‘जाह्नवी’ कहानियों की तात्त्विक समीक्षा का अध्ययन करेंगे।
- जैनेन्द्र की कहानियों के मुख्य पात्रों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- कहानियों में उपयुक्त विचारणीय दृष्टिकोण पर प्रकाश डाल पाएंगे।

प्रस्तावना (Introduction)

कहानी के बारे में जैनेन्द्र जी के विचार हैं कि— “कहानी तो एक भूख है, जो निरंतर समाधान पाने की कोशिश करती है—यह एक निश्चित उत्तर ही नहीं देती, कुछ सुझा देती है और पाठक अपनी चिंतन प्रक्रिया के सहारे उस सूझ को ले लेते हैं।” जैनेन्द्र जी की शुरूआती कहानियों की विषयवस्तु अपने-अपने आस-पास की घटनाओं और चरित्रों से ली गई है। कहीं-कहीं यथार्थ से केवल कुछ संकेत ग्रहण किए हैं और जीवन का यथावत् चित्रण भी उनके साहित्य में मिलता है। जैनेन्द्र की कहानियाँ मनोविज्ञान, दार्शनिकता और व्यक्तिवाद पर आधारित हैं।

12.1 जैनैन्द्र की कहानियों की समीक्षा

जैनैन्द्र की साहित्यिक उपलब्धियों में मुख्य अंग कहानी में उनके कई कहानी संकलन प्रकाश में आ चुके हैं 'फांसी', 'वातायन', 'नीलम देश की राजकन्या', 'एक रात', 'पाजेब' नामक कहानी संग्रह तो पाठकों के समक्ष पहले ही आ चुके थे। इधर पूर्वोदय के प्रयास से उनकी कहानियों के आठ संग्रह और भी प्रकाशित हुए हैं जो "जैनैन्द्र की कहानियाँ" के नाम से प्रख्यात हैं। जैनैन्द्र की कहानियों के विषय में राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त जी ने कहा था कि हिन्दी साहित्य के कथा क्षेत्र में रवि और शरत बाबू को एक ही साथ पाया और वह अब पाया (जैनैन्द्र में)। उनकी कहानियाँ कथानक की दृष्टि से सर्वाधिक सशक्त हिन्दी कहानियाँ हैं, जिन्होंने यथेष्ट लोकप्रियता प्राप्त की है तथा जो विशेष अध्ययन की वस्तु मानी गई हैं।

जैनैन्द्र की सभी कहानियाँ कहानी समीक्षा के सभी मुख्य अंगों कथानक, पात्र, चरित्र-चित्रण, देशकाल और वातावरण, कथोपकथन अथवा संवाद योजना, भाषा शैली, उद्देश्य को पूर्ण रूप से निभाती हैं।

12.1.1 जैनैन्द्र की कहानी "रुकिया बुढ़िया" की समीक्षा

कथासार: 'रुकिया बुढ़िया' घटनामूलक कहानी है, पर चरित्र प्रधान भी। कहानी का कथ्य प्रेमचंद परंपरा का है, पर शिल्प नहीं। यह कहानी 1932 में लिखी गई है।

रुकिया नाम की एक बुढ़िया थी। वह तीन सालों से इस मुहल्ले की एक कोठरी में रह रही थी। वहाँ पहले ही एक गाय बँधा करती थी। काफी मुश्किल से उसे वह कोठरी मिली थी। उसे वह लीप-पोतकर और संवारकर रखती थी। सीलन भरा कमरा था। वहाँ चूहे भी काफी थे। वह डेढ़ रुपये महीने की कोठरी में रहती थी, और ईश्वर के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती रहती थी।

रुकिया फूल बेचती थी। वह हर रोज सुबह तीन बजे उठकर जमुना के किनारे जाती। शाम को वह बेल, तुलसी के पत्ते व बताशा आदि सब कुछ अपनी डलिया में सजाकर रख देती। लेकिन फूल वह सुबह ही उतारती। वह वहाँ सबसे पहले पहुँचती थी, तब तक वहाँ कोई भी नहीं पहुँच पाता था। वह सबसे पहले सड़क के मोड़ पर डलिया सामने रखकर बैठ जाती। इसके बाद आने-जाने वालों की भीड़ लग जाती। वह जल्दी-जल्दी प्रसाद के दोने लगाती जाती और बोलती जाती "भाई जी, फूल-परशाद ले जाओ।" जिसके हाथ में जो भी होता, वह डलिया में डालती और दोना ले जाती थी। कोई पैसा डालती, कोई आधा-मुट्ठी गेहूँ डलिया के पास बिछे कपड़े पर डाल जाती। कोई मंसूरी तांबा सिक्का फेंक जाती। कोई-कोई इकन्नी भी डाल जाती थी। कोई उसे कहती "रुकिया आज, मैं पैसा लाना भूल गई, कुछ भी न ला सकी", इस बात का वह जवाब यों देती, "जी मैंने कभी कुछ कहा है?" माई कहती— "कल लेती आऊँगी रुकिया।" यह सुनकर रुकिया का जी कठोर हो जाता और उसके जी में होता कि वह कह दे कि "तो कल ले जाना प्रसाद" पर कठोरता प्रकट करते उससे न बनती।

लगभग दस बजे तक यही सब चलता। तब तक वह ऐसे दिखाई देती, जैसे उसको किसी चीज की कमी न हो, आते-जाते से मजाक कर लेती, यमुना तट सूना होने के बाद वह अपनी डलिया में बाकी बचे फूल-पत्ते, पैसे व अनाज संभालती और तीन मील की दूरी पैदल तय कर पहुँचती। फिर तीसरे पहर जाती और अंधेरा हुए वापस लौटती। कहानीकार रुकिया की इस हालत पर टिप्पणी करते हुए कहता है, "सुबह को इस तरह वह शाम से मिला देती है, इस तरह रात काटती है और अपने जीने के दिन काटती है।"

मुहल्ले के बालक उसे 'नानी', 'नानी बुढ़िया', जैसी संज्ञाओं से विभूषित करते। कोई कहता—“नानी बुढ़िया फूल दे।” वस्तुतः रुकिया अपने मुहल्ले में नानी बुढ़िया के नाम से मशहूर हो चुकी थी। यही उसके वर्तमान जीवन का परिचय था।

वह अपने अतीत नहीं, अपितु वर्तमान में जीती थी। किन्तु कभी-कभी उसे अतीत भी याद आ जाता। लेकिन इतना अवश्य सत्य है कि उसका वर्तमान उसके अतीत से निश्चय ही जुड़ा हुआ होगा। तभी तो उत्तरार्द्ध जीवन के पूर्वार्द्ध जीवन की कथा, जिसे वह न चाहकर भी याद करने के लिए विवश होती है। रुकिया का पहला नाम रुक्मणी था। वह अपने संपन्न माता-पिता की इकलौती संतान थी। वह अत्यंत सुंदर थी। उसकी माँ डर के मारे, उसके माथे पर काला टीका लगा दिया करती थी कि चांद निष्कलंक न दीख पड़े, कहीं, नहीं तो गजब हो जाएगा।

रुक्मणी बड़ी हुई। उसके माता-पिता को उसके ब्याह की फिक्र सताने लगी। उसके पास पड़ोस में एक बड़ई का परिवार रहता था। उसका एक लड़का था— दीना। रुक्मणी की शादी की तैयारियाँ होने लगीं। तब दीना ने बड़े चुपके से कमरे में प्रवेश किया। रुक्मणी अकेली बैठी थी।

दीना ने कहा,— “रानी”? ‘मेरी रानी’—रुक्मणी के आँसू छलछला आए। वह मुँह फेर कर रोने लगी। दीना खो गया। खाट पर आकर एकदम उसे गोद में सँभालते हुए कहा, “क्या है मेरी रानी?” और रानी गोद में रही। बोली नहीं। कुछ क्षण बाद कोठरी में आकर चटाई पर औंधे मुँह पड़कर सिसकने लगी। तभी उसकी माँ ने आवाज दी। रुक्मणी कुंडी खोलकर बाहर आ। माँ के पास आई। तब माँ ने काम बताया, उसे करने में लग गई।

“रुक्मणी का ब्याह तो नहीं हुआ, प्यार ब्याह के एक दिन पहले, अपने माँ-बाप के घर से टूटकर, रोती हुई, दीना के कंधे से लगी और बाहुओं में थमी, उसके साथ चली जा रही थी। कहाँ जा रही, उसको यह पता नहीं, पर वह उसके हाथों में थमी, कंधे से लगी—जा रही थी” खैर, दीना के हाथों में थमी रुक्मणी दिल्ली आई, जहाँ दीना के बिरादरी वालों का एक घर था और उनसे उसका दूर का रिश्ता था। वहीं वह ठहरी।

रुक्मणी सीधी-साधी व भोली-भाली होने के कारण दीना के साथ चली गई। उसके साथ रहने लगी। लेकिन दोनों ही विरोधी स्वभाव के थे। रुक्मणी सुंदर होने के साथ-साथ लाजवंती भी थी। वह प्रेमिका से बढ़कर गृहिणी थी। उसमें गहराई ज्यादा थी। लेखक उसके इस स्वभाव पर टिप्पणी करते हुए कहता है— “वह गृहिणी है, गृहिणी नहीं बन सकी, इसलिए अभागिनी है। वह प्रेम-भरी है, इससे प्रेमिका होना उससे नहीं संभलेगा।”

दीना जल्दी ही अघा देने वाला व्यक्ति था। वह उतावले स्वभाव का भी था। वह असंतोषी स्वभाव का था। उस घर में चंपो नाम की एक विधवा रहती थी। इसकी उम्र अब ढलान पर थी। पान खाती थी, मीठा बोलती थी। रहती भी वह वहीं थी, जहाँ सभी को खुश रखा जा सकता है। बांकी चितवन थी उसकी। जो भी उसे एक बार देखता था, ठगा सा रह जाता था। रुक्मणी अंधी नहीं थी। वह सब कुछ समझती हुई भी चुपचाप रही। और वह वहाँ तब तक रही, जब तक उससे यह नहीं कहा गया कि निकल यहाँ से।

एक रात दीना बाहर से खा-पीकर निकला। और सीधा खाट पर चला गया। रुक्मणी ने कहा— “आज देर से आए।” दीना ने कहा— “हां देर से आया, तुम बैठी मुझे कोस रही हो।” दीना ने फिर कहा— “गांव में घर पर मुझे काम की कमी नहीं थी, और तुम जानती हो, यहाँ दिल्ली में किसके लिए आकर मरा हूँ।”

Notes

कुछ ठहरकर दीना ने पूछा— “आज क्या बना है?” थोड़ी देर रुककर रुक्मणी ने उत्तर दिया— कुछ नहीं बना है, कुछ था नहीं।” दोनों के बीच बातें बढ़ती ही गई। दीना ने जूते की ठोकर रुक्मणी की छाती में मारी। कुछ देर बाद वह बोला— “कुछ नहीं था, तो चंपो से क्यों नहीं मांग लिया?” वह मौन बैठी रही। दीना ने कहा, “क्यों वह डायन है? वह नहीं, डायन तू है?” शोर सुनकर चंपो भी वहाँ आ गई। बोली “लाला क्या शोर है, घर में और भी तो हैं। तुम न सोओ, उन्हें तो सो लेने दो।” यह कह चंपो वापस गई और खाने के लिए कुछ सामग्री ले आई। दीना ने कहा कि वह खाकर आया है, इसलिए उसे भूख नहीं है। इसलिए रुक्मणी ही खा ले। रुक्मणी खाना लेकर बाहर चली गई। “आधी रात में तारों की असंख्य आँखों के नीचे, उस अखाद्य खाद्य को हाथों में लेकर खड़ी है। वह दीना अवश्य निश्चित पड़ा हुआ था कि वह जल्दी लौटती है, या कब लौटती है, या फिर लौटती भी है या नहीं।”

कुछ दिनों बाद उसे पता चला कि दीना चंपो दोनों ही नहीं हैं। अब उसके पास कोई पैसा नहीं है। चार माह का किराया भी नहीं दे पाई है। ऐसी ही परिस्थितियों ने उसे असामयिक बूढ़ा बना दिया है। अब वह रुक्मणी नहीं रही, रुकिया हो गई है। अब वह उन दिनों को याद नहीं करती, सपनों में भी नहीं। और जब भी कभी वह गहरे अवसाद में डूब जाती है, तब वह मुहल्ले के बालकों को कोसकर अपने को सामान्य बना लेती है।



Did u know? इस कहानी में उदात्तीकरण का रूप उभरा है। फ्रायड के अनुसार व्यक्ति अप्रिय बातों को विस्मृत करता है। रुकिया भी अपने रुक्मणी नाम को तथा पति को भूलना चाहती है। जहाँ भी रुक्मणी का रुकिया में उदात्तीकरण हुआ है तो जैनेंद्र ने उसे पुनर्जन्म माना है।

“रुकिया बुढ़िया” कहानी की तात्विक समीक्षा

कथानक: रुकिया बुढ़िया कहानी घटनामूलक है, पर चरित्र प्रधान भी। कहानी का कैनवस भी व्यापक व पर्याप्त है। इस कहानी के कथानक में सापेक्ष घटनाओं का चयन किया गया है। जहाँ इसमें चिंतन व दर्शन है, वहाँ भावना व अनुभूति भी है। रचनाकार सापेक्ष घटनाओं का चयन करने के कारण प्रेमचंद से जुड़ा दिखाई देता है। लेकिन शिल्प के स्तर पर वह अपनी पहचान बनाने में समर्थ दिखाई भी दिया।

‘रुकिया’ कहानी के कथानक के दो पहलू कहे जा सकते हैं। अतीत की रुक्मणी के साथ हालात ने इतना करारा मज़ाक किया है कि वह अब वर्तमान में रुकिया बुढ़िया कहलाने लगी है। कहानी के केंद्र में वह एक ऐसा पात्र है जो जीवन की संध्या बेला में कभी करुणा कभी व्यंग्य और कभी आक्रोश उठाए चलती है।

‘रुकिया’ बुढ़िया के कथानक में करुणा पूरी तरह फैली हुई है। वह कभी मुहल्ले में बच्चों की ‘नानी’ बनती है तो कभी ‘नानो।’ कभी उसे बुढ़िया रानी के नाम से पुकारा जाता है। बच्चे उसे ‘नानी’ कहकर फूल और प्रसाद पाने के इच्छुक रहते हैं।

रुकिया बेहद गरीब है। वह फूल बेचकर अपनी जिंदगी का गुजारा चला रही है। मकान भी उसका अच्छा नहीं है। सीलन भरी कोठरी है, वहाँ चूहों की भरमार है। रोजाना सुबह तीन बजे उठकर वह जमुना के किनारे पर दुकान लगाती है। फूल प्रसाद के दोने बेचती है। दस बजे के बाद वहाँ से तीन मील पैदल चलकर अपनी कोठरी में पहुँचती है। फिर शाम को दोबारा वहीं जाती है। हालात ने उसे कोल्हू का बैल बना दिया है। और अब तो हालत यह है कि उसके पास अपनी बीती जिंदगी के सफे पढ़ने का भी वक्त नहीं।

‘रुकिया बुढ़िया’ कहानी की एक अन्य विशेषता यह है कि इसमें जीवन को खंडित रूप में चित्रित नहीं किया गया है, अपितु वह समग्रता से प्रस्तुत है। ‘रुकिया बुढ़िया’ के वर्तमान जीवन के बारे में पढ़कर पाठक उसके अतीत को पढ़ना चाहता है। पाठक की इस लालसा को कहानीकार ने पूर्व दीप्ति शैली में प्रस्तुत किया है। वह पूर्व दीप्ति शैली में पीछे की ओर लौटता है।— “क्यों जी! बुढ़िया के और रुकिया के और फूलवाली के अतिरिक्त क्या कुछ और यह कभी नहीं रही है? क्या यह जन्म की बुढ़िया है, ऐसी ही बुढ़िया है? किंतु कभी यह और कुछ कैसे रही होगी?” इस प्रश्न का उत्तर अपने आप में इतना करुण है कि उस मनोवेदना से रुकिया स्मृति में भी नहीं जुड़ना चाहती “किंतु यह समझ लेना चाहिए कि वह रुकिया है, रुक्मणी स्मृति द्वारा भी नहीं है। स्मृति से छुट्टी लेकर वह बैठी है।”

दरअसल कथाकार का उद्देश्य रुकिया के जीवन का सपाट चित्रण नहीं है। तभी वे रुकिया के अतीत से वर्तमान में नहीं झांकते। अपितु वर्तमान से अतीत की ओर वापस लौटते हैं। रचनाकार चाहता तो इस कहानी को घटनाक्रम से भी सुना सकता था, लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। घटनाक्रम से कहानी कहकर बेशक कथानक की जटिलता से बचा जा सकता था, पर उसका आकर्षण भी खत्म हो जाता। रचनाकार ने कथानक में पूर्व दीप्ति शैली का प्रयोग किया है, और इस प्रकार पूरे कथावृत्त को उजागर कर दिया है। दूसरी बात इस कथानक की यह है कि इसमें इतिवृत्तात्मकता न होकर अभिव्यंजना है। कथाशिल्प के माध्यम से ही कथावृत्त पूरा हुआ है। इस प्रकार कथानक के आधार पर कहानी सफल है।

चरित्र चित्रण: कहानी में जैनेंद्र घटनाएं घटनाओं के लिए प्रस्तुत नहीं करते। उनका अभीष्ट छोटी से छोटी घटनाओं के माध्यम से सत्य तक पहुँचना होता है। घटनाएँ उनकी कहानियों का मात्र साधन हैं, साध्य नहीं। साध्य तो पात्र की सूक्ष्म से सूक्ष्म चारित्रिक विशेषता का उद्घाटन है। इसलिए कहानी में उनका सारा जोर घटनाओं के तथ्य के निरूपण में न होकर चारित्रिक विशिष्टताओं के अंकन में रहता है। वे रचना में कम से कम पात्रों से काम चलाते हैं। ‘रुकिया बुढ़िया’ कहानी में भी कम से कम पात्रों का संयोजन किया है। कहानी के तीन ही पात्र हैं— दीना, रुक्मणी (रुकिया बुढ़िया) व चम्पो। इन्हीं गिने चुने पात्रों से कथा का वृत्त बुना गया है।

कहानी के सभी पात्र व्यक्तिवादी चेतना से ग्रसित हैं। सब के सब अंतर्मुखी और स्वयं केंद्रित। उन्हें अपने सिवाय किसी अन्य की चिंता नहीं। दीना काम लोलुप व लंपट प्रवृत्ति का युवक है। रुक्मणी के लिए उसके मन में तनिक भी प्रेम नहीं है। वह तो दूसरों की कमजोरी का नाजायज फायदा उठाना चाहता है। वह रुक्मणी को बहला फुसलाकर उससे ब्याह रचा लेता है, उसे घर से भगा ले जाता है और पत्नी बना लेता है। दीना के प्रेम में स्थिरता नहीं है। पत्नी में सौंदर्य का अभाव नहीं था। वह फूल की तरह कोमल थी। लेकिन दीना का उसके प्रति स्वभाव कठोर व निर्दयतापूर्वक था। उसकी निर्दयता का इससे बड़ा सबूत दूसरा और क्या हो सकता है कि वह अपनी पत्नी को जहर मिला भोजन तक खिलाने में गुरेज नहीं करता। चंपो विधवा है। पर कामवासना से पीड़ित है। इस भावना के वशीभूत हो वह दीना को अपने प्रेम-जाल में फंसा लेती है। कहानीकार ने दीना की चारित्रिक विशेषताओं को उद्घाटित करते हुए लिखा है, “दीना उतावला है, इससे जल्दी अघा जाने वाला है। उसे अतृप्ति चाहिए। तृप्ति झेलने की उसमें सामर्थ्य नहीं। इसी से तृप्ति-तृप्ति की भूख उसमें लपटें भरती रहती है। उसे रोजी के लिए कोई काम नहीं मिल सका है। वह असंतुष्ट है। असंतोष भीतरी है। ऐसे समय उसे चाहिए—नशा।” चंपो की चारित्रिक विशेषता पर भी कहानीकार की सटीक टिप्पणी देखी जा सकती है— “चंपो सुंदर न थी। उमर ढल रही थी, वह वहाँ रहती थी, जहाँ सबको प्रसन्न रखा जा सकता है और उसकी चितवन ऐसी थी कि बालक वृद्ध कौन उस पर नहीं रीझ जाए?” दीना भी चंपो के वासनाजन्य प्रेम के जाल में फंस जाता है। अंत में, उसने पाया कि वह वहाँ अकेली है, दीना नहीं, चंपो भी नहीं है, जाने कहाँ चले गए हैं।

Notes

पूरा का पूरा जीवन ही रुकिया का संघर्ष में बीता है। कल की रुक्मिणी आज की बुढ़िया हो गई। उसके जीवन का पूरा-पूरा रस सूख गया, सारे अरमान मिट्टी में मिल गए।

जैनैंद्र की कहानियों में एक विशेषता यह भी है कि उनका मन नारी पात्रों में पूरी की पूरी सहानुभूति बिखेर देता है। रुक्मिणी भावुक पात्र है, और वह भावुकता की अतिशय है। इसी कारण उसके जीवन में भटकाव आता है। तभी वह पीड़ादायक जीवन व्यतीत करती है। दुनिया के लिए उसमें आज भी सहानुभूति है। इसलिए वह भगवान् से प्रार्थना करती है— “भगवान सबका भला करे।”

देश-काल व वातावरण: जैनैंद्र की कहानियों में देश, काल व वातावरण का शास्त्रीय तत्व नहीं खोजा जा सकता। ‘रुकिया बुढ़िया’ भी ऐसी ही कहानी है। जैनैंद्र अपनी कहानियों के माध्यम से पाठक में वृत्तात्मक जिज्ञासा नहीं पैदा करते। उनका तो पूरा ध्यान समस्याओं का आंकलन करने में लगा रहता है। वह समाधान प्रस्तुत नहीं करते। वस्तुतः वे विचारक हैं। विचारों को पाठक तक पहुंचाने के लिए ही उन्होंने कथाएँ लिखी हैं। इसलिए उनकी वृत्ति या अभिरुचि घटना बुनने में नहीं रही, केवल वे पाठकों के समक्ष मौजूद रहे हैं। इसीलिए वे कहानी देश-कालातीत मानते हैं।

‘रुकिया बुढ़िया’ कहानी को किसी काल विशेष में नहीं बांधा जा सकता। वह किसी भी समय या स्थान की हो सकती है। लेकिन कहानी के कथानक का आधार मध्यम वर्ग है, यह ठीक है। मध्यम वर्गीय परिवारों में अक्सर ऐसी घटनाएं घटती रहती हैं। रुक्मिणी, दीना व चंपो एक प्रकार से टाइप पात्र हैं। चूंकि कहानी निम्न मध्यम वर्ग को उद्घाटित करती है, इसलिए उसके वातावरण को काफी सफाई के साथ रचनाकार ने उद्घाटित किया है। यमुना तट की भीड़, फूल, प्रसाद खरीदने वाले, उधार लेने वालों का तांता, बुढ़िया रुकिया से बालकों की जिद, उसे चिढ़ाने की मनोवृत्ति, चंपो जैसी मनचली औरतों से भरा माहौल आदि इस कहानी के वातावरण को उद्घाटित करने में समर्थ हैं। इसका एक उदाहरण इस प्रकार दिया जा सकता है—

“कहती जाती है—“माई जी, परशाद ले जाओ, परशाद चढ़ाओ” और वह तत्परता के साथ परशाद के दोने देती जाती है। जिसके हाथ में जो होता है, डालती हुई अपने दोने संभाले माई चलती जाती है। कोई पैसा डाल देती है, कोई आधी मुट्ठी गेहूं डलिया के पास बिछे वस्त्र पर बिखेर देती है, कोई पसभर जौ गिरा देती है, कोई मंसूरी ताँबा फेंक जाती है। कोई-कोई पुण्यवती इकन्नी भी डाल जाती है। बुढ़िया सबको एक-सी प्रसन्नता और उद्यतता के साथ प्रसाद देती जाती है। बदले में उसे कौन क्या दिए जा रहा है उसे बिल्कुल ही ध्यान नहीं रहता। हां, इकन्नी गिरती है, तब उसे पता चले बिना नहीं रहता। सब छोड़ पहले वह उसे अपने सलूके के भीतर की जेब में रख लेती है। कोई बिना कुछ दिए ही चली जाती है। बुढ़िया नहीं जानती, सो नहीं, पर ऐसी कौन-कौन हैं, यह उसने कभी भी अपने मन को पता नहीं चलने दिया है। एक ही श्रद्धा भाव से सबको दोने देती है। इकन्नी गिरना उससे नहीं छिपता सही, पर इकन्नी डालने वाली इस भीड़ में से खास कौन है, मानो यह पहचान और याद रखने की उसमें सामर्थ्य नहीं है।”

भाषा शैली: भाषा शैली के आधार पर ‘रुकिया बुढ़िया’ कहानी को घटना मूलक के साथ-साथ चरित्र मूलक भी कहा जा सकता है। जहाँ रचनाकार घटना का वर्णन करता है, वहाँ वह वर्णनात्मक भाषा का प्रयोग करता है, और जहाँ पात्रों का चारित्रिक विश्लेषण करना होता है, वहाँ व्यंजना प्रधान भाषा का प्रयोग करता है। कहानी के पूर्वार्द्ध में वर्णनात्मक भाषा शैली का प्रयोग किया गया है और इसके उत्तरार्द्ध में पूर्व दीप्ति शैली भी है।

वर्णनात्मक भाषा शैली के प्रयोग का एक उदाहरण इस रचना से यह दिया जा सकता है— बुढ़िया का नाम रुकिया है। इस मुहल्ले में वह तीन बरस से रह रही है। मुहल्ले वालों को इसका पता नहीं है। शहर है, अपने-अपने धंधों से किसी को बहुत समय नहीं बचता है। तिस पर, वह बुढ़िया है। एक सांझ बुढ़िया जमुना से फूलों की डलिया सिर पर रीति लिए लौटती थी। तभी राह में बालकों के इस उधमी दल ने घेरकर उसे रोक लिया। वे सबके सब जरूर-जरूर एक-एक फूल अपने लिए लेंगे। देख लेना, बिना लिए टल जाएं तो। चिल्ला कर बोले, “नानी बुढ़िया फूल दे।”

विश्लेषणात्मक शैली: रचनाकार ने पात्रों की सूक्ष्मता को रेखांकित करने के लिए इस शैली का प्रयोग किया है— “रुक्मिणी उठकर उस खाने को लेकर बाहर चली गई और दीना खाट पर लेटकर चंपो भाभी को देखने लगा।”

रुक्मिणी ने बाहर आकाश देखा, तारों से भरा था और उसके नीचे जगत् सोया था। सबकी आँखें नींद से और सपनों से भरी हैं, और उसकी आँखें—उसकी आँखें किसी से भी नहीं भरी हैं, बिल्कुल सूनी हैं, रीति हैं, वे आँसुओं से भी नहीं भरी हैं। हां, उसके हाथ उस खाद्य से भरे हैं, जो जहर है, पर जहर होकर भी मरने तक के लिए जिसे वह खा नहीं सकती। आधी रात में तारों की असंख्य आँखों के नीचे, उस अखाद्य खाद्य को हाथों में लेकर खड़ी है कि वह उसे उन देदीप्य नक्षत्रों के साक्ष्य में क्या करें?”



Notes

जैनेन्द्र ने इस कहानी के माध्यम से मनुष्य के समस्त चेतन और अचेतन व्यवहार, फ्रायड के सिद्धांतों को स्पष्ट किया है।

इसके अलावा भी इस कहानी में और कई शैलियों का प्रयोग है। कहीं तो उनकी भाषा में कल्पना का प्राधान्य दिखाई देता है तो कहीं स्मृति का प्राधान्य। कहीं दार्शनिक स्वर भी प्रमुखता से उठा दिखाई पड़ता है। पूर्व दीप्ति शैली का एक उदाहरण इस प्रकार दिया जा सकता है—

अतीत को वर्तमान में स्मरण करने में इस शैली का प्रयोग किया गया है। वर्तमान की रुकिया अपने अतीत में झांकने की इच्छुक नहीं है, लेकिन चेतन अवचेतन मन से झाँक ही लेती है।— “क्यों जी, बुढ़िया के और रुकिया के और फूल वाली के अतिरिक्त क्या कुछ और, यह कभी नहीं रही है? क्या यह जन्म की बुढ़िया ही है, ऐसी ही बुढ़िया है—किंतु कभी यह और कुछ कैसे रह सकी होगी? यह रुकिया नहीं थी, रुक्मिणी थी। फूल नहीं ले जाकर बेचती थी, स्वयं बोलते फूल की भांति घर के आंगन में चहकती फिरती थी, और मां-बाप का धन्य करती थी। ऐसे लुभावने बोलती थी कि क्या कहा जाए। और ऐसी निखरती-खिलती आती थी कि बड़ी उमर तक, डर के मारे माँ इसके माथे पै काजल का टीका लगा देती थी। चांद निष्कलंक न दीखे कहीं, नहीं तो गजब हो जाएगा। दार्शनिक शैली का प्रयोग जैनेन्द्र ने वहाँ किया है, जहाँ वे चिंतन में प्राधान्य दिखाना चाहते हैं— “परिवर्तन में ही हम सत्य देखेंगे। सत्य परिवर्तन न हो, हम परिमित हैं। हम यही जानते हैं, जो जैसा है, वैसा न था, और वैसा न रह पाएगा।”

इसी तरह का एक अन्य उदाहरण और दिया जा सकता है— पुनर्जन्म भी तो लोग मानते हैं। किंतु तब के नातों को कोई याद नहीं रखता। तब की बातों को हम सब छुट्टी दे चुके होते हैं। तब हम यह थे, इसका दंभ हमें नहीं फुलाता। यह न थे, इसका दुःख भी हमें नहीं सताता। उस एक अतीत से, अपने को सर्वथा तोड़कर नए जन्म में हम जीते हैं। नहीं तो अपने अनंत इतिहास का बोझ अपने माथे पै लेकर

Notes

हम जी सकते हैं? हमारा ज्ञान संकुचित है। यही हमारा वरदान है। हम परिचित हैं, यही हमारा धन्य भाग है।

काव्यात्मक शैली: निस्संदेह विचारक कथाकार है पर उनमें कवि की भावुक दृष्टि भी है। अपने समकालीन छायावादी काव्य शैली का उनकी कथा में प्रभाव विद्यमान है। वह वैसी ही काव्यमयी शैली का प्रयोग कहानियों में भी कर देते हैं इस प्रकार का एक उदाहरण प्रस्तुत है— “सौंदर्य कहाँ नहीं है? सौंदर्य परम सत्य है, परम की अभिन्न विभूति है, सत्य की भाँति सब ठौर व्यापा है। जिसकी जहाँ आँख है, वहाँ ही, वह उसे देख लेगा। इसी से अंबर नील सुंदर है, धूप झकझकाती धौली खिलती है, धरती हरी आती है, रात तारों टकी, श्यामल सुहाती है, प्रभात गुलाबी अच्छा लगता है।”

मनोविश्लेषणात्मक शैली: इस शैली का प्रयोग रचनाकार मन का विश्लेषण में करता है। दीना व रुक्मिणी के चरित्र में इस शैली का प्रयोग लेखक ने किया है। रुक्मिणी के चरित्र को उद्घाटित करते हुए रचनाकार की वाक्यावली दृष्टव्य है— “रुक्मिणी सुंदरी है। लज्जाशील है, सावन भादों में जैसी पत्नी है। प्रेम जैसी भारी चीज से भरी है, इससे स्वयं हल्की नहीं है। इसलिए प्रेमिका नहीं है, गृहिणी है। सेवा में उसका प्रेम तुष्ट है, उत्सर्ग में उसे तृप्ति है। अधिकार शील उसका प्रेम कम है, इसलिए उसमें लग सकता है कि चमक कम है, धार कम है, नमक कम है। फुहारें उसमें नहीं हैं, क्योंकि गहराई अधिक है। वह...वह... गृहिणी है, गृहिणी नहीं बन सकी, इसलिए अभागिनी है। वह प्रेम भरी है, इससे प्रेमिका होना उससे नहीं संभलेगा।” दीना की चारित्रिक विशेषता को इस शैली से भी रचनाकार ने स्पष्ट किया है। “दीना के पैर छूट गए और वह खाट पर आ रहा। गुम-सुम, कुछ क्षण बोल उसे सूझ न सका। वह अपने ही खिलाफ लड़ रहा है—अपनी चेतना के किसी भी अंश से उसे यह मान नहीं है, सो नहीं है।”

उद्देश्य: रचना निष्प्रयोजन नहीं होती। भले ही उसका उद्देश्य मात्र मनोरंजन भर हो। ‘रुकिया बुढ़िया’ कहानी का उद्देश्य रुक्मिणी के चरित्र का सूक्ष्मता से मूल्यांकन करना है। कहानी मध्यम वर्ग का चित्र प्रकट करती है। समाज में रुक्मिणी जैसी असंख्य भावुक युवक व युवतियाँ हैं, जिन्हें भावुकता के कारण असमय ही बुढ़ापा घेर लेता है। इसके अतिरिक्त दीना जैसे मनचले व कामुक पतियों की कमी नहीं है, जो सर्वगुण संपन्न व सुंदरतम पत्नी के बावजूद अन्यत्र भी काम पिपासा के लिए भटकते फिरते हैं। ‘चंपो’ जैसी विधवाएं भी हैं, जो अपने रूप जाल में किसी स्त्री के पति को फंसा कर जहाँ अपनी हवस पूरी करती हैं, वहाँ किसी का आबाद घर भी उजाड़ देती हैं। वस्तुतः रचनाकार बताना चाहता है कि जब व्यक्ति विवेक की बात नहीं मानता, और भावुकता के चंगुल में फंस जाता है, उसका वही हश्र होता है, जो ‘रुकिया’ का हुआ।

यह कहानी उद्देश्य प्रधान है पर कथ्य को भी उजागर करती है। यों भी रचनाकार कहानी से पूर्व कोई विशिष्ट या सामान्य उद्देश्य बांधकर रचना नहीं करता। इस तथ्य को उन्होंने उजागर भी किया है— “कहानी के उद्देश्य के बारे में मैं कुछ अधिक सचेत नहीं हूँ, इतना अवश्य होगा कि मेरे भीतर जो रहा विचार और भाव उसको कहानी को अमुक दिशा मिल जाती होगी। कहानी लिखता हूँ तो मेरे मन में कुछ स्पष्ट नहीं होता। प्लॉट तो होता ही नहीं। सिर्फ कहानी का अंत कुछ-कुछ मन में रहता है, कभी विचार बिंदु तो कभी भाव ग्रंथि के रूप में। उस बिंदु तक कैसे पहुँचा जाए, बस इसमें प्लॉट-व्लॉट जो होता बन जाता।” एक वाक्य में कहानी का उद्देश्य कहना चाहें तो कह सकते हैं कि कथाकार ने रुकिया के माध्यम से भावुक नारी की करुणा गाथा कही है।



Task

‘रुकिया बुढ़िया’ कहानी में प्रयुक्त मनोविश्लेषणात्मक शैली पर विचार प्रकट करें।

Notes

12.1.2 जैनेंद्र की कहानी “एक रात” की समीक्षा

कथासार: ‘एक रात’ कहानी 1934 में लिखी गई है। जैनेंद्र जी ने इस कहानी में नायक जयराज व नायिका सुदर्शना के मन की गहराई को विश्लेषित व रेखांकित किया है। इसमें घटनाओं का पूर्वाभ्यास होता है, लेकिन वह आभासमात्र होकर ही रह जाता है।

जयराज तीस वर्ष का था। अपनी धुन में मस्त था। सदा काम-काज में व्यस्त रहता। वह कांग्रेसी नेता है। अपने प्रदेश की कांग्रेस में उसका अपना रूतबा है। लोगों में वह लोकप्रिय है। वह अविवाहित है उससे विवाह का प्रस्ताव करने की किसी की हिम्मत नहीं पड़ती। वह खद्दर का कुर्ता व मोटी धोती पहनता है। माथा ऊंचा है, निडर प्रकृति है। उसका व्यक्तित्व श्रोताओं को सहज ही रिझा लेता है।

सुबह के नौ बजे थे। वह एक परिषद् के लिए भाषण लिख रहे थे। तभी उनसे मिलने के लिए एक डेपुटेशन आया। प्रतिनिधि मंडल जयराज को अपने साथ हरिपुर ले जाना चाहता था। जयराज ने प्रतिनिधि मंडल से पूछा— “हरिपुर कितनी दूर है? प्रतिनिधियों ने बताया सिर्फ तीन स्टेशन दूर है। इस बार तो आप जरूर आएंगे, जनता आपके दर्शन करने के लिए उत्कण्ठित है। जयराज प्रतिनिधियों से नाटकीय मुद्रा में बात करता है। कभी बैठता है, कभी बातचीत करता है, कभी टहलता है। अंत में उसका उत्तर नकारात्मक होता है—“नहीं, मैं नहीं आ सकूंगा। मुझे क्षमा करें।” उसका नकारात्मक उत्तर सुनकर प्रतिनिधियों को कष्ट पहुंचा। फिर बात ही बात में कहता है— “आ सकूंगा तो मैं अकेला ही आ जाऊंगा। आप विश्वास रखें, मैं भरसक प्रयत्न करूंगा।”

डेपुटेशन के लोग चले गए। कुछ समय तक वह टहलता रहा। अंत में टहलते-टहलते वह अपनी मेज पर जा बैठा। इसके बाद ब्लाटिंग पैड पर लिखा—

“Swaraj is our birth right—as in disputable else where as in politics.

Swaraj - But there is marriage

Love - Marriage gives man a fool hold.

Independence - Society a unit, it gives us home.

Marriage - Alright, Perfectly alright. But?

And there is love in human breast. Love gives us glow gives us bliss love makes us transcend the physical and touch the spiritual. That makes us reach out beyond the here and the now, reach out into the eternal varieties of life.

God made love, did God make marriage also. No, man did the making of it. And I say love is not chaos. It is never that never. Never?

Ah how slavish of me thus unwittingly to use English must write and Hindi.

हिंदी हिंदी! हिंद हमारा देश, हिंदुस्तानी हैं हम, हिंदी हमारी भाषा, हिंद हमारा बाना—भाइयों—”

यों जयराज सबका है। लेकिन रहता अकेला है। उसने पांच साल जेल में भी बिताए हैं। वह आत्म चिंतन भी करता है— “मैं क्या हूँ? मैं एक उद्देश्य पर समर्पित व्यक्ति हूँ। मेरा निजत्व क्या है? कुछ नहीं! मैं राष्ट्र सेवक हूँ। जयराज मात्र नाम है।”

Notes

वह आत्म संभाषण के रूप में सोचता रहता है— “देखो जयराज! तुम जरा भी अपने नहीं हो। तुमको अपने सेवा कार्य के साथ अशेष रूप से एकाकार रहना होगा। वही रहे, तुम न रहो। राष्ट्र रहे और राष्ट्र के सेवक के अतिरिक्त तुम और कुछ न रहो।” यह सब सोचते-सोचते वह हरिपुर जा पहुँचा। वहाँ उसका भव्य स्वागत हुआ। श्रीमती सुदर्शना देवी ने जयराज के गले में खहर के फूलों की माला पहनाई। प्रणाम किया। स्वागत गान गाया। जयराज की आंखें गीत गाती सुदर्शना की ओर खुद-ब-खुद घूम गईं। तभी जैसे उनकी अंतरात्मा से आवाज आई— “जयराज, सीधे देखो, राष्ट्र की आरती को पवित्र रहने दो। तुम्हारी अमानत में देकर, यह स्वागत राष्ट्र के भविष्य के साथ किया जा रहा है।”

जयराज वापस लौटना चाहता है। कार्यकर्त्ताओं ने उसे रोकने की काफी कोशिश की, पर उसने एक न सुनी। वह अकेले स्टेशन आ गया। गाड़ी तब तक निकल चुकी थी। बाद में वह रात के एक विशेष कार्यक्रम में शामिल होने के लिए हरिपुर दोबारा लौटता है। कुछ देर बाद वापस लौटने की जिद करने लगता है। आखिर में उसने कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं से कंबल लिया, हाथ में छतरी संभाली और चल दिया।



Did u know? इस कहानी में जैनेंद्र जी ने अपने दार्शनिक व्यक्तित्व का परिचय दिया है। फ्रायड की मुक्त असंग पद्धति भी इसमें स्पष्ट दिखाई देती है।

इसी बीच हरिपुर में एक दूसरी घटना भी घटी। सुदर्शना देवी घर गईं। घर जाकर एक चटाई पर बिना कपड़े बदले बैठ गईं। बहुत देर के बाद उठकर हाथ-मुँह धोकर एक सफेद साड़ी उसने पहनी। कुछ क्षण के बाद वह अपने पति के कमरे में गईं और उससे कहा, “मैं पतिव्रता नहीं हूँ। मैं पूरी तरह समर्पित नहीं हूँ। इसलिए मुझे जाने दो।” इसके बाद वह रोती हुई कमरे से बाहर निकल आईं।

रात अंधेरी थी। जयराज कंबल लपेटे, सिर पर छतरी ताने लंबे-लंबे डग भरते जा रहा था। तभी बिजली कौंधी। उसने देखा— कोई स्त्री सड़क के किनारे खड़ी है। जयराज उसके पास पहुँचा “कौन है बाई” सुदर्शना ने कहा— “स्टेशन जाना चाहती हूँ” उसने कहा, “मैं स्टेशन जा रहा हूँ। इधर छतरी के नीचे आ जाओ, बहुत पानी है” सुदर्शना पास आकर उससे सटी-सटी चलने लगी। धीरे-धीरे वे स्टेशन पहुँच गए। वहाँ पहुँचकर स्टेशन बाबू से दूसरा कंबल मांगा। सुदर्शना के भीतर के कपड़े भी सभी गीले थे। उसे सदीं लग रही थी। जयराज बोला, “कंबल भीगा है, उतार डालो।” सुदर्शना ने झट उतार कर अलग कर दिया। फिर नया कंबल सुदर्शना को देते हुए कहा, “इसे ओढ़ लो। कुर्ती गीली है, लाओ, मुझे दो, निचोड़ कर सुखा दूँ। फिर कहा— कुर्ता उतार दो, और जरा लेट जाओ, आराम कर लो।” सुदर्शना सुषुप्ति में सब करने लगी। उसने कुर्ता उतार कर अलग कर दिया। फिर दोनों एक साथ कंबल ओढ़कर सो गए। सुदर्शना जयराज की गोद में चिपक कर सो गई। उसे निर्वस्त्र गात पर कभी अत्यंत शीतल कोमल देह का स्पर्श होता था। वह देश मानों उसके गात पर अपने को छोड़ दे रही थी। सुदर्शना ने उहं-उहं किया, और फिर उसने जो अपनी करवट ठीक की तो दोनों बाहें जयराज के इधर-उधर पड़ गईं और शरीर का उत्तर भाग जंघाओं पर आराम से टिक गया।” गाड़ी आई और चली गई। जयराज की गोद में सुदर्शना इस तरह सिमट कर सोई थी, जैसी चिड़िया चिपककर सोई हुई हो। इसलिए वह उसकी नींद में बाधा नहीं डालना चाहता था। सुदर्शना ने कहा, “इस गाड़ी से तुम्हें जाना है।” जयराज ने कहा, “कोई बात नहीं दूसरी से चला जाऊंगा।”

सोई हुआ सुदर्शना ने भीतर से कहा— कंबल ओढ़ लो। सदीं बहुत है। इसके बाद उसने एक हाथ से कंबल ऊपर उठा लिया। जयराज ने भी कंबल कंधों तक ले लिया। उसकी हाथ की उंगलियाँ कमर

तक गई और फिर सुदर्शना के बालों से खेलने लगीं। सुदर्शना का शरीर उसके शरीर पर दबाव देकर चिपटता ही गया। वह अब जयराज की गोद में है। एकदम निश्चित है। न वह अतीत से दबी है, और न वर्तमान से शक्ति। वह भविष्य से भी प्रार्थी नहीं दिखाई पड़ती।

जयराज को लगा कि सुदर्शना की साड़ी गीली है। उसने उसे साड़ी उतारने को कहा। सुदर्शना ने साड़ी उतार कर अलग कर दी। वह जयराज की गोदी में ही पड़ी रही।

सबेरा होने लगा था। सुदर्शना जागकर उठी। पूरा प्लेटफार्म सूना था। उसने कपड़े पहन लिए। कुछ देर बाद जयराज की भी आँखें खुलीं। उसने देखा, गोद तो खाली है, और उसके पास ही दोनों कंबल पड़े हैं। सुदर्शना—दूर प्लेटफार्म पर खड़ी है। जयराज उसके निकट गया। उसने आकर कहा— सुदर्शना! और चुप रहा।

सुदर्शना ने कहा, मैं जानती हूँ, तुम में मेरे लिए अपेक्षा नहीं है। जयराज यहाँ अनपेक्षा सब कुछ है—मैं अब जाती हूँ।”

“कहाँ?”

“जाती हूँ मेरा प्रणाम लो, जयराज, क्योंकि मैं एक बात तुम्हें बताती हूँ। मैं इसी वर्ष माता हो जाऊंगी।”

वह जयराज के सामने-सामने पीठ मोड़कर प्लेटफार्म के किनारे-किनारे बढ़ती चली गई, और जयराज उसे जाते देखता रहा।

कहानी की तात्त्विक समीक्षा

कथानक: ‘एक रात’ कहानी में घटनाओं की भीड़ नहीं है। केवल गिनी चुनी घटनाओं के माध्यम से कहानी कही है। कहानी के दो ही पात्र हैं— जयराज व सुदर्शना। इन दो पात्रों का चारित्रिक विश्लेषण रचनाकार ने अत्यंत सूक्ष्मता के साथ किया है। अतः कहानी में घटनाओं का पूर्वाभास लगता है, पर वह आभास ही है, इससे ज्यादा कुछ नहीं। कहानी का कथानक यों है:

तीस वर्षीय जयराज कांग्रेसी नेता है। कालेज की पढ़ाई पूरी नहीं की है। चौथे साल में ही पढ़ना छोड़ दिया है। वह खदर का कुर्ता, मोटी धोती, उन्नत ललाट वाला है। कांग्रेसी नेता है। प्रदेश में उसका पर्याप्त सम्मान है। एक रोज पास के इलाके हरिपुर से एक डेपुटेशन उससे मिलने के लिए आता है। यह प्रतिनिधि मंडल उसे हरिपुर ले जाना चाहता है। पहले तो वह जाने से इन्कार कर देता है, पर बाद में ऐन मौके पर वह पहुंच भी जाता है। कार्यकर्त्ताओं के सम्मेलन को संबोधित करने के बाद वह पुनः अपने शहर लौटने के लिए हरिपुर से चल देता है। कार्यकर्त्ता उसे काफी रोकने की कोशिश करते हैं, पर वह हठवादी होने के कारण स्टेशन आ जाता है। स्टेशन पर पहुंचने के बाद उसे गाड़ी निकल जाने की बात पता चलती है। वह दोबारा रात के कार्यक्रम में शामिल होने के लिए हरिपुर आ जाता है। रात के कार्यक्रम के बाद वह बरसाती रात में भी एक कंबल व हाथ में छाता लिए स्टेशन की ओर चल देता है।

हरिपुर की श्रीमती सुदर्शना जयराज से प्रभावित है। जयराज के जाने के बाद वह भी घर चली आती है। उसका पति शराबी है, सिगरेट पीता है मगर उससे बेहद प्यार करता है। सुदर्शना उससे कहकर अकारण ही घर छोड़ देती है उसकी मुलाकात जयराज से एक चौराहे पर होती है। वह जयराज से स्टेशन का रास्ता पूछती है। जयराज को चूँकि स्टेशन जाना था वह उसे अपने कंबल व छाते के नीचे

Notes

लेकर चल पड़ता है। स्टेशन पहुंचने तक उनका कंबल और कपड़े गीले हो जाते हैं। जयराज स्टेशन मास्टर से दूसरा कंबल लेकर आता है। इसके बाद प्लेटफार्म की बेंच पर सूखे कंबल में सुदर्शना बैठ जाती है। और उसके शरीर से करीब-करीब चिपक कर लेट सी जाती है। इसके बाद वह उसे कपड़े उतारने को कहता है। सुदर्शना बिना किसी हिचक के कपड़े उतार देती है। अब सुदर्शना जयराज की गोद में निर्वस्त्र है और जयराज भी उसे सहलाता रहता है। कहीं सुदर्शना की नींद न चटक जाए, वह गाड़ी भी छोड़ देता है। सुबह होती है। वह जयराज की गोद से अलग होती है। कपड़े पहनती है और प्लेटफार्म पर खड़ी हो जाती है। जयराज को जब अपनी गोद खाली दिखाई पड़ती है तो इधर-उधर देखता है। उसे दूर प्लेटफार्म पर सुदर्शना खड़ी दिखाई देती है। वह उसके पास पहुंचता है। वह उसे पुकारती हुई कहती है, “मेरा प्रणाम लो जयराज। मैं एक बात बतलाती हूँ कि मैं इसी वर्ष माता हो जाऊंगी।” इस प्रकार कहानी में घटनाओं से ज्यादा चरित्रिक व्यापारों को महत्व दिया है। यों तो इस में कार्यावस्थाएं भी हैं— आरंभ, विकास व आदि, पर वे घटनाओं पर आधारित नहीं हैं, मानसिक व्यापारों से इनका संबंध है। इस प्रकार इस कहानी का कथानक सफल है।

पात्रों का चरित्र चित्रण: जैनंद्र की ‘एक रात’ कहानी पात्रों के आधार पर भी एक सफल कहानी है। इसमें पात्रों की भीड़-भाड़ नहीं है जयराज व सुदर्शना कहानी में दो ही पात्र हैं। ये पात्र किसी वर्ग विशेष के प्रतिनिधि नहीं हैं। ये तो केवल व्यक्ति मात्र हैं। इन दोनों ही पात्रों में अंतर्मुखी भावनाएँ हैं। यों देखा जाए तो राजनीतिक व्यक्ति अंतर्मुखी नहीं होता, पर जयराज है। वह जीवन में अकेला है। तीस वर्ष का प्रौढ़ है। विवाह में उसकी रुचि नहीं है। उसमें पौरुष है। इसलिए विवाहिता सुदर्शना उससे प्रभावित होती है। पहले तो जब सुदर्शना सम्मेलन में स्वागत गान गाती है, तब उसे वह कनखियों से देखता है, यह सुदर्शना को भी अखरता न था। मगर बाद में जयराज का भाषण सुन वह उससे इतनी प्रभावित होती है, वह पति से कहकर घर छोड़ देती है और रात भर जयराज की गोद में निर्वस्त्र पड़ी रहती है।

जयराज राष्ट्र का सेवक है लेकिन विवाह से भागता है। सुदर्शना ब्याहता है, पर पति के प्रति पूरी समर्पित नहीं। जयराज सैद्धांतिक है, इसलिए रस-वंचित है। सुदर्शना रस में सरोबार है, मगर आंशिक समर्पित। कर्मठ कार्यकर्ता जयराज नारी का साहचर्य पाकर कितना तरल हो जाता है। यह इस कहानी से जाना जा सकता है। इधर सुदर्शना का पति शराबी है, पर उसे बेहद प्यार करता है। उसके पति में प्रेम के साथ ही साथ कुछ ऐसा क्लैष्ण्य व पलायन भाव है कि सुदर्शना यह कहकर चली जाती है कि “मैं पतिव्रता नहीं हूँ, फिर भी व्यभिचारिणी नहीं हूँ।” जयराज के चरित्र में एकरसता है। प्रो० जगदीश पांडेय ने उसके चरित्र पर टिप्पणी करते हुए लिखा है— “जयराज में समष्टि के प्रति अनुराग और व्यक्ति के प्रति सहज-सरस रति का द्वन्द्व है। सुदर्शना में पति व्यक्ति के प्रति उपकृत या अनुगृहीत होने के बदले प्रिय व्यक्ति के प्रति समर्पित होने की लालसा है। जयराज व्यापक के चलते घुट रहा है, सुदर्शना अनन्यता के चलते, दोनों स्वधर्म से पीड़ित स्वभाव धर्म से प्रेरित हैं।”



Notes इस कहानी के माध्यम से भारतीय जनजागरण की चेतना प्रकट हुई है। सुदर्शना और जयराज के माध्यम से आत्मिक प्रेम को दर्शाया गया है।

‘एक रात’ में सुदर्शना जयराज से प्रेम संबंध तो बना लेती है, पर सुबह होते ही उसे अकेला छोड़कर चल देती है। जयराज के लिए वह क्षणिक प्रेम भी अनंत है। तभी तो वह कहता है— “मैं अनंत जीवन नहीं मानता। न अनंत प्राण मानता हूँ। लेकिन मेरे लिए तो प्रणय का क्षण भी अनंत है।”

जैनेंद्र की अधिकांश कहानियाँ व्यक्ति के मानसिक द्वन्द्व व घात-प्रतिघात को ध्वनित करती हैं। वे अवचेतन स्थिति से भी चरित्र चित्रण करने में समर्थ हैं। उन्होंने पात्रों के चरित्र को वर्णित कम किया है लेकिन विश्लेषित किया है। जयराज व सुदर्शना दोनों ही पात्र न केवल व्यक्तिवादी हैं, अपितु अंतर्मुखी भी हैं।

देश-काल व वातावरण: जिन दिनों यह कहानी लिखी गई है, तब देश अंग्रेजों के अधीन था। देश में स्वतंत्रता आंदोलन का जोर था। कांग्रेस ने देश की आजादी के लिये कठिन संघर्ष किया था। कहानी में जयराज इसी संघर्षशील पार्टी का प्रादेशिक नेता है। कहानी का कथानक स्वतंत्रता पूर्व का है। इसमें कुछेक सीमित घटनाएँ भी हैं, जो उस समय के वातावरण को जीवंत बनाती हैं। राष्ट्र की चिंता जयराज में कितनी गहरी है, यह इन पंक्तियों से ध्वनित होता है— “देखिए, नेतृत्व के मामले में गाँव को आत्म निर्भर बनाना होगा। नेताओं का भरोसा आप क्यों रखें। इस बार सरकार हमें हरा सकती है। नहीं, प्रत्येक व्यक्ति कृत-निश्चय हो तब तो स्वराज मिलेगा। नहीं तो अगर स्वराज मिला भी तो जनता का वह स्वराज कब हुआ? आप दिल में इरादा पैदा कीजिए और मुल्क के लिए रहिए।”

उस वक्त आजादी का जुनून था। प्रत्येक नेता अपने आपको राष्ट्र का सेवक समझता व कहता था। जयराज के सोचने का नजरिया भी यही है। “मैं राष्ट्र सेवक हूँ। और कुछ भी नहीं हूँ। जयराज मात्र नाम है। राज जय का कोई पार्थक्य नहीं, कोई व्यक्तित्व नहीं। जयराज राष्ट्र सेवक है, एक निरा, बस राष्ट्र रहे, और राष्ट्र के सेवा के अतिरिक्त तुम और कुछ न रहो। जयराज प्रभावशाली प्रवक्ता है। उसका एक कथन और दर्शनीय है— कांस्ट्रक्टिव वर्क ही वर्क है। हमें राजनीतिज्ञ नहीं चाहिए, सेवक चाहिए। सेवक अपने को सेवा में खो दे। अपने खोने का अर्थ अपने प्राण रक्षा को जनता के मूल में सींच देने का है। भूखे के साथ बेरोजगार के साथ अपने को मिला देने की कोशिश हमें करनी है। भूखे को खाना, बेकार को काम, और अशक्त को ढाढ़स हमें देना है। चरखा यह सब बता देता है।”

‘एक रात’ कहानी यद्यपि देश, काल व वातावरण के बंधन में बंधी है, पर इस बंधन से मुक्त भी है। पुरुष व नारी के पारस्परिक व अंतरंग संबंध के कारण यह कहानी देश और काल विशेष की सीमा का अतिक्रमण करती है। सुदर्शना का विश्वास क्षणवाद में है। उसके लिए अतीत, वर्तमान व भविष्य का कोई महत्व नहीं है। इस बात को जैनेंद्र जी ने कहानी में इस प्रकार अभिव्यक्त किया है— “जग से टूटी अतीत से परोक्ष, सब तरह के नातों के अभाव में वह निरी शावक निरी सब तरह चिड़िया बनी वहाँ आराम से सो रही है। कल क्या था, राम जाने, कल क्या होगा—नहीं हिसाब। अगले ही मिनट क्या हो जाएगा नहीं प्रतीक्षा। कैफियत उसे कही भी पहुँचाती नहीं है। वह अतीत से दबी नहीं है, वर्तमान से शक्ति नहीं है, भविष्य से प्रार्थी नहीं है।”

कथोपकथन: ‘एक रात कहानी’ कथोपकथन की दृष्टि से भी सफल है। इसके संवाद चुस्त, संक्षिप्त व नाटकीय हैं। इन कथोपकथनों से दुहरे-तिहरे उद्देश्यों की प्राप्ति भी संभव है। कहानी के संवाद कथानक को निर्बाध आगे बढ़ाते जाते हैं। इसके अतिरिक्त ये पात्रों की मानसिकता और उनकी सूक्ष्म से सूक्ष्म भावनाओं को स्पष्ट करने में समर्थ हैं। एक संवाद दर्शनीय है:

सुदर्शना—‘मुझे तुमसे एक बात करनी है।’

पति — ‘कहो।’

सुदर्शना —‘तुम मुझे क्या समझते हो।’

पति—‘मैं तुम्हें अपने प्रेम की प्रतिमा, प्राण का प्राण, घर की रानी, आँख की पुतली समझता हूँ मेरी रानी।’

Notes

सुदर्शना—‘मैं पतिव्रता नहीं हूँ।’

पति—‘तुम मेरी रानी हो, मेरी मलका, मेरी जरीना।’

सुदर्शना—‘तुमसे मैंने बहुत प्रेम पाया है, बहुत आदर लिया है। यह सब मैंने चोरी की है। ठगी की है। मैं उसकी बनने वाली कोई न थी। आज मुझे पता चला है कि अपना सब कुछ मैं तुम पर वार न चुकी। भीतर ही भीतर कुछ बच गया था, जो आज देखती हूँ, तुम्हारे चरणों में मैं अर्पण नहीं कर सकी थी। मैं तुम्हें धोखा देती रही। तुमसे पाती सब कुछ रही, देने में चोरी करती रही।’

पति—‘क्या है; क्या बात है?’

सुदर्शना—‘बात कुछ नहीं है। मैं अब तुम्हारे प्रति चोर नहीं रहूंगी। विश्वासघातिनी नहीं रहूंगी। तुमने मुझे इतना दिया। उस सबके लिए मैं ऋणी भी तो नहीं हो सकती, कृतज्ञ भी तो नहीं हो सकती। क्योंकि यह सब मैंने ठगाई की है। मैं पतिव्रता नहीं हूँ।’

पति—‘पतिव्रता नहीं, तो तू क्या है?’

सुदर्शना—‘मैं तुम्हारे घर से निकाल देने लायक हूँ। अपनी कृपा के नीचे मुझे एक क्षण भी नहीं टिकने दो। तुम मुझे इजाजत दो कि मैं उसे कलंकित न करूँ।’

इसी तरह के अंश जयराज व सुदर्शना के बीच हुई वार्ता के भी हैं, जिनमें व्यक्तित्व का अत्यंत सूक्ष्म चित्रण विद्यमान है।

जयराज—‘कौन हो बाई?’

सुदर्शना—‘स्टेशन जाना चाहती हूँ। कौन सड़क जाती है।’

जयराज—‘मैं स्टेशन जा रहा हूँ।’

जयराज—‘इधर छतरी के नीचे आ जाओ। बहुत पानी है।’

जयराज— ‘सुदर्शना, मैं राष्ट्र के लिए जिया। लेकिन जीवन रस तो मुझसे चुकता ही गया। कहाँ से विसर्जित करने के लिए प्राण पाता रहा, मैं नहीं जानता था। लेकिन अब तो जानता हूँ। सुदर्शना, तुम युग-युग जीओ। जहाँ रहो, सुख से रहो। हम क्या उस स्रोत को जानते हैं, जहाँ से हमें जीवन-रस मिलता है? लेकिन कहाँ स्नेह है, यज्ञ है। अब मैं देखता हूँ मैं कभी अकेला न था, मैं सदा ही अमृत से रक्षित चलता चल रहा था।’

जयराज—‘सुदर्शना, आज मैंने जाना, स्नेह अंगीकरण के लिए है अस्वीकरण के लिए नहीं।’ इस प्रकार हम देखते हैं कि जैनैन्द्र जी भाषा के संवाद जहाँ कथा को पूरी तरह गतिमान बनाने में मददगार हैं वहाँ पात्रों की चरित्रिक विशेषताओं को अत्यंत सूक्ष्मता से व्यक्त करने में भी समर्थ हैं।

भाषा-शैली: जैनैन्द्र भाषा में अत्यंत सजग हैं। इसीलिए उनकी कहानियों की भाषा अत्यंत सजग, संप्रेषणीय व प्रभावपूर्ण है। ‘एक रात’ कहानी के विवेचन के बाद एक बात स्पष्ट रूप से कही जा सकती है कि इसमें कसावट नहीं है। बल्कि एक बिखराव है, औपन्यासिक कथानक जैसा। कहानी कई टुकड़ों में बंटी हुई है। यदि कहानीकार चाहता तो इसका कलेवर और छोटा किया जा सकता है। सुदर्शना के चरित्र में तो इतना विस्तार नहीं है, पर जयराज के चरित्र को जरूरत से ज्यादा विस्तार दे दिया है।

प्रोफेसर जगदीश पांडेय ने इस संबंध में अपनी टिप्पणी यों दी है— “एक रात कहानी, कहानी जैसी नहीं, उपन्यास जैसी लगती है। एक तो इसमें मात्र पुरुष या मात्र नारी की ओर से समस्या नहीं उपस्थित की गई है, बल्कि जयराज व सुदर्शना दोनों को केंद्र में रखा गया है। भिन्न-भिन्न अध्याय इतमीनान से रखे गए हैं, और परिचय की विशदता से लेकर समाप्ति की दिशाओं तक आद्योपांत दोनों पात्रों की व्याप्ति हैं। भूमिका से प्रारंभ होकर सीमा के अंत को छूती यह कहानी अपने प्रसार और विशदता के चलते उपन्यास बन गई है।

प्रो० पांडेय ने इस कहानी की शैली पर विचार करते हुए लिखा है, “इसकी शैली में कच्चापन अधिक है। पाठ्य पुस्तकीयता अधिक है, मनस्ताप से गलपच कर, कला और कल्पना से सिप्त या ऊर्जस्थित होकर आई अभिव्यक्ति या अभिव्यंजना कम है।”

जयराज कांग्रेसी नेता है वह मंच का कुशल वक्ता भी है। रचनाकार ने उसके संवादों में मंचीय वक्तव्य शैली का दर्शन कराया है। इस प्रकार का एक संवाद दर्शनीय है— “क्या उसके प्रेम में राष्ट्र-प्रेम का ही दर्द था। उसके गान में राष्ट्र स्नेह की मिठास थी? क्या वाणी के कंपन में स्वराज युद्ध का ही आह्लाद था? क्या उसमें राष्ट्र के एक वीर को निःस्पृह पूजा देने का ही उल्लास था।” यही नहीं जयराज के आंतरिक आवेश को पूरी समर्थता के साथ रचनाकार ने अभिव्यक्त किया है और इसके लिए अनुकूल भाषा का सृजन किया है— “क्या उसमें अत्यंत निजी भी कुछ था? कुछ बिल्कुल व्यक्तिगत, हृदयगत, मर्मगत, देश के भाव से भी कुछ गहरे तल तक गया हुआ? जयराज, राष्ट्र पर चढ़ते हुए अर्ध में कुछ भी अपना निजत्व मानकर अर्ध को अपवित्र न करो। चोर न बनो। यज्ञ अशुचि न बनाओ—माला भारतीय नारी के हाथों भारतीय पौरुष के गले में पड़ी है। नारी शक्ति ने युद्ध पौरुष का स्वागत गान किया है।”

उपन्यासकार उपन्यास की शैली व्यास-प्रधान रखता है, जबकि कहानी के लिए समास-प्रधान शैली का चुनाव करता है। उपन्यास में रचनाकार एक बात को कई तरह से कह सकता है, पर कहानी में, यह शैली अपना ठीक नहीं। जहाँ तक ‘एक रात’ का सवाल है, इसमें कहानीकार ने इस शैली से काम लिया है। इसलिए कहीं-कहीं वर्णन अतिरंजनापूर्ण व उकताहट पैदा करता है। एक ही बात कई-कई बार कही गई है। इस तरह एक उदाहरण छांट जा सकता है: “जग से टूटी, अतीत से परोक्ष, सब तरह के नातों के अभाव में वह निरी शावका निरी चिड़िया बनी यहाँ आराम से सो रही है। कल क्या था, राम जाने! कल क्या होगा, नहीं हिसाब। अगले ही मिनट क्या जो जाएगा, नहीं प्रतीक्षा—वह अतीत से दबी नहीं, है वर्तमान से शक्ति नहीं है भविष्य से प्रार्थी नहीं है। जो है, वह उसी में संपूर्ण है। उसी में उपलब्ध है।”

इस कहानी में रचनाकार ने कई शैलियों का भी प्रयोग किया है। वे बाह्य घटनाओं का प्रस्तुतीकरण वर्णनात्मक शैली में करते हैं जैसे— “उसी हरिपुर में एक छत के नीचे कुछ और घट रहा था। सुदर्शना देवी ने माला जयराज के गले में डाली। स्वागत गान पढ़ा। उसके चरणों में फूल चढ़ा दिए। और उन चरणों को प्रणाम कर अपनी जगह पर आ बैठी, इसके बाद जयराज का उसने भाषण सुना।” खदर का मोटा कुर्ता, मोटी धोती, उन्नत ललाट, निर्भीक व संकल्प युक्त वाणी के साथ जयराज भाषण करता रहा, तब सुदर्शना उसे सुनती रही।

जयराज के चातुर्य का जहाँ रचनाकार ने चित्रण किया है, वहाँ उन्होंने अनुकूल भाषण का चयन किया है।

Notes

उद्देश्य: 'एक रात' कहानी स्वतंत्रता पूर्व की कहानी है। उस समय पूरे देश में स्वतंत्रता आंदोलन जोरों पर था। पूरे देश में कांग्रेस पार्टी हावी थी। उस समय नेताओं के प्रति जनता की अपार श्रद्धा थी। वे व्यक्तित्व के धनी थे, सिद्धांतवादी थे। जयराज के माध्यम से रचनाकार ने तत्कालिक नेताओं का सशक्त चित्रण किया है। जयराज का चरित्र मनोविज्ञान के धरातल पर गढ़ा गया है। वह न केवल राजनैतिक व्यक्ति है, अपितु एक व्यक्ति भी है, एक पुरुष भी है। रचनाकार ने उस राजनैतिक व्यक्ति की मन की गहराइयों में पैठ की, और बारीकी के साथ उसकी मनोग्रंथियों को प्रकाशित कर दिया है। इसके अतिरिक्त सुदर्शना की घुटन को भी उद्घाटित करने में सफलता प्राप्त की है। निष्कर्ष यह है कि इस कहानी के माध्यम से रचनाकार ने अपने पात्रों की वैयक्तिक संवेदना को सशक्त वाणी दी है।

12.1.3 जैनंद्र की कहानी "जाह्नवी" की समीक्षा

कथासार: 'जाह्नवी' कहानी 1934 में लिखी गई है। इस कहानी की आधारशिला चरित्र-विश्लेषण है। यह मध्यवर्गीय चेतना उद्घाटित करने में समर्थ है।

इतवार का दिन था। कहानीकार सवेरे उठा। उसने बाहर झांककर देखा कि मुहल्ले की एक मकान की छत पर कांओं-कांओं करते हुए कौओं से घिरी हुई एक लड़की खड़ी होकर कौओं को बुला रही थी— कौओं आओ, कौओं आओ। देखते-देखते छत की मुंडेर कौओं से बिलकुल काली पड़ गई उनमें से कुछ अब उड़-उड़ लड़की की धोती से टकराने लगे। कौओं के आने के बाद उसने गाना शुरू कर दिया— "कागा चुन-चुन खाइयो....।" गाने के साथ उसने रोटियों के नन्हें-नन्हें टुकड़े आसमान के चारों ओर फेंकने शुरू कर दिए। कौए चुन-चुन कर खा रहे थे। वे लड़की के चारों ओर ऐसे छा रहे थे, मानों वे प्रेम से उसको ही खाने को तैयार हों। रोटी खत्म होने लगी। जब आखिरी टुकड़ा हाथ में रह गया तो वह गाती हुई उस टुकड़े को हाथ में फहराती हुई जोर से दो-तीन चक्कर लगा उठी। फिर उसने वह टुकड़ा ऊपर आसमान की ओर फेंका, "कौओं खाओ" और बहुत से कौए एक ही साथ उड़कर उसे लपकने झपटे। उस समय उन्हें देखती हुई लड़की मानो आनंद में चीखती हुई-सी आवाज में गा उठी—

दो नैना मत खाइयो, मत खाइयो—

पीऊ मिलन की आस

रोटियाँ खाकर कौए उड़ चले। लड़की दूर तक उन्हें उड़कर जाते देखती रही। कुछ देर वह छत पर अकेली रही। थोड़ी देर बाद वह छत से उतरी और अपने घर चली गई। कुछ देर बाद वह ढेर सारे कपड़े अपने कंधों पर लादे छत पर आ गई। वह कपड़ों को फटक-फटक कर फैला रही थी। कपड़े फैला देने के बाद उसने अंगड़ाई ली और अपने बालों पर हाथ फेरने लगी। इसके बाद बालों का जूड़ा बनाया, पल्ला सिर पर खींचा और नीचे उतर गई।

उस लड़की का नाम जाह्नवी था। वह कहानीकार की साली के साथ कालेज में पढ़ती थी। इस लड़की का मकान लेखक के घर के आस-पास था। चार दिन बाद फिर कौओं को बुलाना, उन्हें रोटी खिलाना और अर्द्धाली का बार-बार गाना। उस दिन वह कुछ ज्यादा ही खुश थी। मानों वह उनसे साग्रह कर रही थी। 'कौओं, खाओं' पर एक बात है कि ओ कौओं, जो तन चुन-चुन कर खा लिया जाएगा, उसको खा लेने में मेरी अनुमति है। वह खा-खाकर तुम सब निबटा देना। लेकिन ऐ मेरे भाई कौओं, इन दो नैनों को छोड़ देना। इन्हें भई रहने देना। क्या तुम नहीं जानते कि उन नैनों में एक आस बसी है, जो

पराए के बस है। वे नैना पीऊ की बात में हैं। ऐ कौओं, वे मेरे नहीं हैं, मेरे तन के नहीं हैं। वे पीऊ की आस को बसाए रखने के लिए हैं। सो, उन्हें छोड़ देना।”

लेखक ने जाह्वी को एक बार घर में देखा था। तब पत्नी ने उसे खासतौर पर देख लेने को कहा था और उसके चले जाने पर पूछा था, “क्यों कैसी है!”

मैंने कहा था, “बहुत भली मालूम होती है। सुंदर भी है। पर क्यों?”

“अपने बिरजू के लिए कैसी रहेगी।”

मैंने कहा, “अरे, ब्रजनंदनदत्त! वह उसके सामने बच्चा है।”

पत्नी ने अचरज से कहा, “बच्चा है। बाईस बरस का तो हुआ।”

“बाईस छोड़ बयालीस का भी हो जाय। देखा नहीं कैसे ठाठ से रहता है—यह लड़की देखो, कैसी बस सफेद साड़ी पहनती है। बिरजू इसके लायक कहाँ है। यों भी कह सकती हो कि यह बेचारी लड़की बिरजू के ठाठ के लायक नहीं है।”

लेकिन पत्नी ने लेखक की बात अनसुनी कर दी। और दोनों के शादी-ब्याह की बात आगे बढ़ानी शुरू कर दी। एक दिन इस सबके बीच एक घटना घट गई। हुआ यों कि जाह्वी ने ब्रजनंदन को चिट्ठी लिखी। लेखक की पत्नी को यह बुरा लगा और उसने उसके चरित्र को शक्ति दृष्टि से देखा। उस पत्र के कारण सब चौपट हो गया। पत्नी एक दिन सामने आ धमकी। बोली—“यह तुमने जाह्वी के बारे में पहले से क्यों नहीं बतलाया?”

मैंने कहा, “जाह्वी के बारे में मैंने पहले से क्या नहीं बतलाया भाई।”

“यही कि वह ऐसी है?”

“मैंने पूछा, ऐसी कैसी?”

उन्होंने कहा, “बनो मत। जैसे तुम्हें कुछ नहीं मालूम।”

मैंने कहा, “अरे यह तो कोई हाई कोर्ट का जज भी नहीं कह सकता कि मुझे कुछ नहीं मालूम। लेकिन आखिर जाह्वी के बारे में मुझे क्या-क्या मालूम है।”

लेखक की पत्नी जाह्वी के चरित्र पर तरह-तरह की शंकाएँ उड़ाती रही। बाद में लेखक ने बात का तथ्य जानना चाहा। उसे पता लगा कि ब्रजनंदन के पास खुद लड़की का पत्र आया था। उस पत्र को पढ़कर लगा कि उसमें कोई ऐसी बात नहीं थी, जो उसके चरित्र को शक्ति बनाती। पत्र कोई खास बड़ा नहीं था। सीधे-साधे ढंग से लिखा था— “आप जब विवाह के लिए यहाँ प्रस्तुत पहुंचेंगे तो मुझे प्रस्तुत भी पाएंगे। लेकिन मेरे चित्त की हालत इस समय ठीक नहीं है, और विवाह जैसे धार्मिक अनुष्ठान की पात्रता मुझमें नहीं है। एक अनुगता आपको विवाह द्वारा मिल जाएगी। पर चाहिए कि वह जीवन संगिनी भी हो। वह मैं हो सकती हूँ, इसमें मुझे बहुत संदेह है। फिर भी अगर आप चाहें, आपके माता-पिता चाहें तो प्रस्तुत मैं अवश्य हूँ। विवाह में आप मुझे लेंगे और स्वीकार करेंगे तो मैं अपने को दे भी दूंगी, आपके चरणों की धूल माथे से लगाऊंगी। आपकी कृपा मनाऊंगी। कृतज्ञ होऊंगी। पर निवेदन है कि यदि आप मुझ पर से अपनी मांग उठा लेंगे। मुझे छोड़ देंगे, तो मैं और भी कृतज्ञ होऊंगी। निर्णय आपके हाथ में है। जो चाहे निर्णय करें।”

Notes

इसके बाद ब्रजनंदन ने शादी से इन्कार कर दिया। लेकिन उसने लेखक को साफ-साफ कह दिया कि “चाचा जी, मैं और विवाह करूंगा ही नहीं, करूंगा तो उसी से करूंगा।” ब्रजनंदन हर वक्त अब जाह्नवी का पत्र चिपकाए फिरता है। एक पल भी वह इसे अपने से अलग नहीं करता। अब धीरे-धीरे उसके जीवन में भी बदलाव दिखाई देने लगा। कभी वह ठाट-बाट से रहता था, पर अब सादा रहने लगा। एक दिन उसकी चाची उससे बोली, “तुझे भी क्या हो गया है? अपने चाचा की बात तुझे भी लग गई क्या? न ढंग के कपड़े, न रीति की बातें। उन्हें तो अच्छे कपड़े लत्ते शोभते नहीं हैं। तू क्यों ऐसा रहने लगा है? चाचा ने भी एक दिन उससे कहा— “ब्रजनंदन, अब शादी करके काम में लगना चाहिए, और घर बसाना चाहिए। है कि नहीं।” उसने उत्तर दिया— “अभी तो उमर पड़ी है चाचा जी।”



Did u know? ‘जाह्नवी’ कहानी पर फ्रायड के ‘सेक्स’ संबंधी विचारों का प्रभाव पड़ा है।

उधर जाह्नवी रोजाना कौओं को बुला-बुला कर रोटी खिलाने व गीत के टेक की तरह बार-बार यही गाना— “कागा चुन-चुन खाइयो....।” और कौवे भी उसके चारों ओर ऐसी छीना-झपटी करते हुए उड़ते थे मानों बड़े स्वाद से, बड़े प्रेम से, चोंथ-चोथकर उसे खाने के लिए आपस में बदाबदी मचा रहे हों। पर उनसे घिरी वह कहती, “खाओ कौओं, आओ!” उनके आ जाने पर वह गाती है—

कागा चुन-चुन खाइयो!

और जब जाने कहाँ-कहाँ के कौए इकट्ठे के इकट्ठे काऊ-काऊ करते हुए चुन-चुन कर खाने लगते हैं और फिर भी खाऊ-खाऊ करते हुए उससे भी ज्यादा मांगने लगते हैं, तब वह चीख मारकर चिल्लाती है कि ओरे कागा, नहीं ये—

दो नैना मत खाइयो!

मत खाइयो—

पीऊ मिलन की आस।

जाह्नवी कहानी की तात्विक समीक्षा

कथानक: जैनंद्र ने एक स्थान पर लिखा है, “मैं किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं जानता, जो मात्र लौकिक हो, जो संपूर्णता से शारीरिक धरातल पर रहता हो। सबके भीतर हृदय है, जो सपने देखता है, सबके भीतर आत्मा है, जो जागती रहती है।” उनका यह वक्तव्य ‘जाह्नवी’ के कथानक पर सटीक उतरता है। अत्यंत क्षीण कथानक है, पर इसमें भावुकता, प्रेम तत्व व मर्म पूर्णतः विद्यमान है। इस कथानक को ‘जैनेंद्रीय’ भी कहा जा सकता है।

कथानक में एक विख्यात गीत की कुछ पंक्तियाँ हैं। इससे रचनाकार प्रेम में टूटी एक युवती के हृदय की मार्मिकता को प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत करने में समर्थ रहा है। कहानी का कथानक पर गीत के टेक की तरह तरल, सूक्ष्म है। ‘जाह्नवी’ छत पर कौओं के बीच घिरी है। उनके लिए रोटी के टुकड़े फैक रही है और साथ में गा भी रही है:

कागा चुन-चुन खाइयो

X X X

दो नैना मत खाइयो

पीऊ मिलन की आस

इन पंक्तियों की टेकात्मक धुन, और कौओं का घिरा हुआ काला झुंड में ही जाह्नवी की कथा आरंभ होकर समाप्त हो जाती है। जैसे वह कहती हो, यह जीवन अब निरर्थक है, इसमें कुछ भी नहीं बचा है। कोई लालसा नहीं है। अभी तक खा गया है, खाते रहो। पूरा का पूरा जिस्म खा जाओ, कोई एतराज नहीं, पर एक प्रार्थना है, ये दो आँखों को छोड़ देना। मेरे प्रिय शायद मुझसे मिलने आ जाएँ तो उसे जी भर निहार तो लूंगी। यह वह बिंब है, जहाँ कथा उभरती है, और फिर अतीत में जा खोती है। मगर कुछ देर बाद इस बिंब से टकराकर नया जीवन लेती है।

चरित्र-योजना: इस कहानी का कथानक संक्षिप्त तो है ही, पात्रों की भीड़-भाड़ भी ज्यादा नहीं है। इसमें सिर्फ चार पात्र हैं— जाह्नवी, ब्रजनंदन, कहानीकार व उसकी धर्मपत्नी। कहानी की मुख्य पात्र जाह्नवी ही है। इस संबंध में जगदीश पांडेय ने अपने विचार यों व्यक्त किए हैं— “प्रेम योग व पार्वती हठ का सार भाव लिए तन पर सफेद साड़ी और मुख पर कविता की प्रसंग गर्भ सनातन भावपूर्ण पंक्तियाँ लिए जाह्नवी कहानी के बीचों बीच बह रही है। जाह्नवी इसलिए भी कि पवित्र ही नहीं, पावन भी है कि ब्रजनंदन को भी पवित्र कर देती है। सरिता एक तट ब्रजनंदन है, जो वहाँ तक चलता चलेगा, जहाँ तक जाह्नवी बहती चलेगी और दूसरा तट कहानीकार और इसकी धर्मपत्नी मिलकर बनाते हैं। कहानीकार कुतूहल व अलगाव लिए हुए है, कौओं को घिनौना महसूस करता है, लेकिन जाह्नवी के प्रति वात्सल्य और श्रद्धा व स्नेह और अनादर का भाव रखता है। कहानीकार जल से अलग तट का वह हिस्सा है, जो पंक्ति और मुलायम है। तट की कठोर मिट्टी के रूप में कहानीकार की धर्मपत्नी है जो सामाजिक बुद्धि या परंपरा-चेतना लिए हुए है। इसलिए वह आलोचना करती है, उसे गंगा के तट पर बसे हुए पुरों या नगरों में होने वाली वैवाहिक रीति से अधिक प्रयोजन है, गंगा में या गंगा के बाद भी पुनर्मिलन को वह नहीं समझ सकती।”

कहानी में जाह्नवी छत पर कपड़े सुखाती है, कपड़ों की अनंत संख्या उसकी विरह वेदना की प्रबलता अभिव्यक्त करती है। यह कोरा वर्णन नहीं है। कहानी का आधार ही इस पात्र का विश्लेषण है। इस पात्र को कहानी से हटाने पर, कुछ भी नहीं बचता। वह अपने प्रेमी के प्रेम में रंगी-बसी है, उसमें उसके प्रति श्रद्धा भाव भी है, मगर पारंपरिक रूढ़ियों व मान्यताओं का विरोध नहीं कर सकती। इस कथन की पुष्टि इन पंक्तियों से हो सकती है— “...आप जब विवाह के लिए यहाँ पहुंचेंगे तो मुझे प्रस्तुत भी पाएंगे। लेकिन मेरे चित्त की हालत इस समय ठीक नहीं है, और विवाह जैसे धार्मिक अनुष्ठान की पात्रता मुझमें नहीं है। एक अनुगता आपको विवाह द्वारा मिल जाएगी। पर चाहिए कि वह जीवन संगिनी भी हो। वह मैं हूँ या हो सकती हूँ, इसमें मुझे संदेह है।” सामाजिक परिवेश के कारण उसका मन कुंठित है। सामाजिक मान्यताएँ उसकी इच्छा पूरी नहीं होने देतीं। इसीलिए उसमें कुंठा घर कर लेती है। रचनाकार ने पूर्ण मनोयोग से इस पात्र का गठन किया है। उसमें इस पात्र के लिए संवेदना है। विश्लेषणात्मक प्रणाली में इस चरित्र को उभारा है। जाह्नवी शिक्षित है, सुंदर है, सीधे-साधे स्वभाव की है। वह प्रिय के दर्शन में रची-रंगी है। पूरा शरीर वह कौओं को समर्पित करने को तैयार है, पर आँखें बचाए रखना चाहती है। इन आँखों से ही वह अपने प्रिय का चित्र देखना चाहती है और असे तक इंतजार कर सकती है। ‘दो नैना मत खाइयो, मत खाइयो, पीऊ मिलन की आस’। ये पंक्तियाँ जाह्नवी के चरित्र की गंभीरता व एकाग्रता को अभिव्यक्त करती हैं।

जैनैद्र की विशेषता यह है कि वे नारी पात्रों के प्रति सहानुभूति रखते हैं। इस कहानी के साथ भी यही बात है। प्रो० पांडेय के शब्दों में “उनका उदात्त प्रेम, उसकी विरह वेदना, यौवन में ही उसका योगिनी वाला प्रेम बाना, शांत, गंभीर, धीर, कोलाहल-शून्य, अविज्ञापित स्नेह का गूढ़ गंभीर साहस, जल-जलकर कोयला होने को उद्यत इस बेटी-सी लगने वाली लड़की की अनन्यता, अनन्यता ऐसी है

Notes

कि जिसके सामने वार्ताकार का अलगाव या कोतूहल प्रेम के सामने ज्ञान की हार है, जहाँ कहानी कहने वाली अपनी पत्नी का मूर्खता का हल्के ढंग से मजाक उड़ाता है, वहाँ तो स्पष्ट ही वह जाह्नवी के साथ है और समाज से उसका मतभेद है।”

‘जाह्नवी’ का चरित्र उदात्त भावना से ओत-प्रोत है। इसी चरित्र से प्रभावित होकर ब्रजनंदन ठाट-बाट व फैशनपरस्ती छोड़कर सीधे-साधे युवक का जीवन व्यतीत करने लगता है। ब्रजनंदन में यह परिवर्तन जिसके कारण आया है, वह यह सब नहीं जानती। जाह्नवी का ब्रजनंदन पर कितना गहरा रंग चढ़ा है, इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि वह भी शादी न करने का संकल्प ले लेता है। तभी वह कहता है— या तो वह शादी जाह्नवी से करेगा, या फिर अविवाहित ही रहेगा। पहले तो ब्रजनंदन रूप व श्रृंगार को पसंद करता था, पर जाह्नवी के प्रति आकर्षित होने पर अपने आपको पूरी तरह समर्पित मानता है।

जाह्नवी का चरित्र विरहिणी का ही नहीं है, उसमें भावुकता भी कूट-कूट कर भरी है। उसकी दृष्टि में विवाह एक धार्मिक अनुष्ठान है, मात्र रीति-रिवाज नहीं। उसका मन तो किसी और के प्रति समर्पित है, रही शरीर की बात, तो वह तो कोई भी ले सकता है। यद्यपि जाह्नवी किसी अन्य के ध्यान में लीन है, लेकिन बाद में ब्रजनंदन की आराध्या भी बन जाती है। कथाकार की पत्नी का चरित्र सामाजिक कुरीति का प्रतीक बनकर रह गया है। उसमें शंका, जड़ता व परंपरा बोध सभी कुछ है। उसकी दृष्टि में लड़कियों का पढ़ा-लिखा होना ही गलत है। इस प्रकार रचनाकार ने इस कहानी में चरित्र-चित्रण का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। कहानी इसके आधार पर भी सफल है।

देश-काल व वातावरण: इस कहानी में देश काल की सीमा का कोई अर्थ नहीं है। यह एक सनातन कहानी है। कहानीकार ने कथा व कथानक की चाशनी मिलाकर इसे नवीन रूप दे दिया है। वस्तुतः जाह्नवी की कथा देह गाथा न होकर मन गाथा है। इसलिए इसे किसी खास देश-काल व वातावरण में नहीं बाँधा जा सकता। ‘जाह्नवी’ मध्यवर्गीय चेतना को उजागर करने में समर्थ है। कहानी का रचनाकाल 1934 का है। उस समय लड़कियों का पढ़ा-लिखा होना एक अवगुण समझा जाता था। पुरुष ही नहीं महिलाएं भी उन्हें हिकारत की नजर से देखती थीं। यही नहीं पढ़ी-लिखी लड़कियों के चरित्र पर भी संदेह किया जाता था। तभी कहानीकार की पत्नी को जब लड़की के पढ़े-लिखे होने की बात पता चलती है तो शक्ति हो उठती है। वह उससे शिकायती लहजे में कहती है— “यह तुमने जाह्नवी के बारे में पहले क्यों नहीं बतलाया।” फिर कहती है— “बिरजू के पास खत आया है, सो तुमने कुछ नहीं सुना? आजकल की लड़कियाँ, बस कुछ न पूछो। यह तो चलो भला हुआ कि मामला खुल गया। पढ़ी-लिखी सभी एक जात की होती हैं।” विवेचन यह बता देने के लिए काफी है कि कहानीकार की पत्नी लकीर की फकीर है। पढ़ी-लिखी लड़कियों से उसकी कोई हमदर्दी नहीं। वस्तुतः कहानी दो पीढ़ियों के सोच विचार को स्पष्ट रूप से अंकित करने में समर्थ रही है।

संवाद: आलोच्य कहानी में संवाद न के बराबर हैं। पहले तो इसमें पात्र ही कम हैं, और जो हैं, वे संवाद कम बोलते हैं। कहानी में ऐसे कम ही स्थल हैं, जहाँ पात्र आपस में बातचीत करते नजर आते हैं। पात्रों की बातचीत से ही पात्रों की मानसिकता का उद्घाटन होता है। कहानी का भेद खोलने में भी संवादों का सहारा ही लिया गया है। इस संदर्भ में कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं:

“क्यों जी, जाह्नवी का मकान जानती हो?”

“जाह्नवी! क्यों, वह कहाँ है?”

“मैं क्या जानता हूँ, कहाँ है, पर देखो, वह घर तो उसका नहीं है?”

उसने कहा— “मैंने घर तो नहीं देखा। इधर उसने कालिज भी छोड़ दिया है।”

यह संवाद कहानी के कथानक को साफ करने में काफी मददगार है। इसी से मालूम पड़ता है कि जाह्नवी पहले कालिज में पढ़ती थी, मगर अब उसने पढ़ाई-लिखाई छोड़ दी है। कहानीकार कहानी के कथानक को और ज्यादा स्पष्ट करने के लिए संवाद का सहारा लेता है। इस संवाद से ही पाठकों को मालूम पड़ता है कि ब्रजनंदन व जाह्नवी की शादी की बातचीत चल रही है। लेखक व उसकी पत्नी का यह वार्तालाप इस कथन की पुष्टि के लिए पर्याप्त है:

“क्यों, कैसी है?”

कहानीकार—“बहुत भली मालूम होती है। सुंदर भी है। पर क्यों?”

पत्नी—“अपने बिरजू के लिए कैसी रहेगी?”

कहानीकार—“अरे, ब्रजनंदन! वह उसके समाने बच्चा है।”

पत्नी—“बच्चा है। बाईस बरस का तो हुआ।”



Notes

कहानी की नायिका जाह्नवी के माध्यम से काम संबंधी भावना स्पष्ट की गई है।

कहानीकार: “बाईस छोड़ बयालीस का भी हो जाय। देखा नहीं कैसे ठाट से रहता है—यह लड़की देखो, कैसी सफेद साड़ी पहनती है। बिरजू इसके लायक कहाँ है। यों भी कह सकती हो कि यह बेचारी लड़की बिरजू के ठाट-बाट के लायक नहीं है।”

इसी तरह का एक संवाद और खोजा जा सकता है—

कहानीकार की पत्नी—“तुमने जाह्नवी के बारे में पहले से क्यों नहीं बतलाया?”

कहानीकार—“क्या नहीं बताया?”

पत्नी—“वह लड़की आशताई में फंसी थी। पढ़ी-लिखी सब एक जात की होती हैं।”

इस संवाद से यह साफ होता है कि कहानीकार की पत्नी अंधविश्वासी व परंपरावादी थी। कहानी के संवाद लंबे नहीं हैं, ज्यादा भी नहीं। संवादों में सार्थकता है, वे कथानक को न केवल गति प्रदान करते हैं, बल्कि स्पष्ट भी करते जाते हैं। जाह्नवी के चरित्र की कुछ बातों का पता तो संवादों से ही लगता है।

भाषा शैली: आलोच्य कहानी की भाषा में भावुकता, तरल संवेदना व काव्यमय लय विद्यमान है। प्रो० जगदीश पांडेय ने इस संबंध में अपने विचार यों व्यक्त किए हैं— ‘जाह्नवी’ कहानी की भाषा शैली प्रसाद की कहानियों की भाषा शैली की टक्कर की है, अर्थात् वही भावुकता, वैसी ही तरल संवेदना और वही काव्यात्मकता, लयात्मकता। कहानी की भाषा पात्रानुकूल है। कहानी में रचनाकार ने भाषा की दृष्टि से काफी सतर्कता बरती है। कहानी में विद्यमान सभी सूक्ष्मता व बारीकियों को रचनाकार ने भाषा के माध्यम से उभार दिया है। कहानी का आरंभ एक अनिश्चय की स्थिति से होता है— “आज तीसरा रोज है—तीसरा नहीं चौथा रोज है।” दोबारा इसी की आवृत्ति ‘इसके बाद सोमवार हो गया, मंगलवार

Notes

हो गया और आज बुध भी होकर चुका जा रहा है। चौथा रोज है।' इस कहानी में गीतिकाव्य की तरलता का भावात्मक आप्लावन है जिसमें पाठकों का सरल मन डूबता-उतरता है। इसलिए इसमें एक विशेष प्रकार की करुणा का उद्रेक है। कहानी में रचनाकार ने 'जाह्नवी' की मानसिक दशा की अभिव्यक्ति की है, लेकिन इसके लिए अनुकूल बिंब का प्रयोग किया है। 'जाह्नवी' छत पर कौओं के बीच घिरी हुई उनके लिए रोटी के टुकड़े फेंकती हुई गाती है—

कागा चुन-चुन खाइयो

X X X

दो नैना मत खाइयो

पीऊ मिलन की आस

वस्तुतः ये पंक्तियाँ, और कौओं का घिरा हुआ काला झुंड ही 'जाह्नवी' की कथा है। यह जीवन व्यर्थ है। अब इसकी कोई इच्छा शेष नहीं रही। अतः सारा का सारा शरीर खा जाओ, पर ये दोनों आँखें छोड़ देना। इन्हें मत खाना। चूँकि इन आँखों में अभी भी प्रिय मिलन की आस है। यह एक ऐसा बिंब है, जिसमें अतीत की कथा उभर कर सामने आती है फिर एक हल्की-सी अतीत कथा लौटकर इसी बिंब पर प्रहार करती है। परिणामस्वरूप बिंब अपनी अनुभूति की संपूर्णता तीव्रता पर अत्यधिक मार्मिक हो उठता है। इस कहानी में रचनाकार ने एक साथ कई शैलियों का प्रयोग किया है, जैसे— वर्णन प्रधान, विश्लेषण-प्रधान, विवेचनात्मक, विश्लेषणात्मक व व्यंग्यात्मक आदि। प्रो. जगदीश पांडेय ने 'जाह्नवी' की शैली के बारे में विचार अभिव्यक्त करते हुए लिखा है— "जैनेंद्र की शैली इस कहानी में एक सधे हुए गद्यकार की शैली है—उस गद्यकार की शैली, जिसके ज्ञानरस की स्वीकृति मंजुल कोमल मधुर, सुंदर स्वरों से लेकर चीखते कर्कश व्यंजनों तक है।"

उद्देश्य: जैनेंद्र की यह कहानी रोमांटिक है। वस्तुतः इसमें रचनाकार ने प्रेम व इसकी पीर की अभिव्यक्ति की है। उन्होंने इसमें सामाजिक सत्य को नकारा है, लेकिन व्यक्ति सत्य को स्वीकार किया है। रचनाकार की पूरी क्षमता व्यक्तिवादी जीवन दर्शन का उद्घाटन करने में ही व्यय हुई है। कहानी में भावुकता का प्राधान्य है और ज्ञान पराजित है। 'जहाँ कहानी कहने वाला अपनी पत्नी की मूर्खता का हल्के ढंग से मजाक उड़ाता है, वहाँ तो स्पष्ट ही वह जाह्नवी के साथ है, और समाज से उसका मतभेद है।' निस्संदेह ऊपरी तौर पर कहानी पढ़कर निराशा हाथ लगे, पर इसका अंतिम भाव आशा का है। 'जाह्नवी' में प्रियतम से मिलने की अंतिम आशा शेष है। उसे इस बात की भी परवाह नहीं, कि कौन क्या कहता होगा।

जैनेंद्र गांधीवादी दर्शन से बेहद प्रभावित हैं। गांधी जी मनुष्य के हृदय परिवर्तन में विश्वास रखते थे, उनका कहना था कि मनुष्य जन्म से बुरा नहीं होता, अपितु परिस्थितियाँ ही उसे बुरा बनाती हैं। गांधी जी का यह भी विश्वास था कि बुरे व्यक्ति में परिवर्तन लाया जा सकता है। उन्होंने 'सादा जीवन व उच्च विचार' पर जोर दिया। रूप व श्रृंगार को अतिशय महत्व देने वाला ब्रजानंदन 'जाह्नवी' से प्रभावित हो जाता है, उसमें अब इतना परिवर्तन हो जाता है कि वह बाह्य सौंदर्य की अपेक्षा आंतरिक सौंदर्य को महत्त्व देने लगता है। तभी वह यह संकल्प लेता है कि वह विवाह नहीं करेगा, और करेगा तो सिर्फ जाह्नवी से ही। कहानीकार ने अपनी पत्नी के माध्यम से दो पीढ़ियों के स्वाभाविक मतभेद को उजागर करना चाहा है। कहानीकार यद्यपि पुरानी पीढ़ी का है, लेकिन वह नई पीढ़ी को अपना पूरा समर्थन व सहानुभूति देता है।



Task जाहूवी कहानी की तात्विक समीक्षा करें।

Notes

12.1.4 कहानियों की व्याख्या

- हाँ, जब आते-आते ही उसने सांझ के मेल में, जमना जी से लौटती बेला इस बालिका या उस बालक के हाथ में आप ही आप फूल देने शुरू किए, तो चट मुहल्ले के सब बालक उसे जान गए तो उनके पास इस बुढ़िया के लिए बना-बनाया नाम था ही-नानी। वह इनकी नानी बुढ़िया हो गई। होते-होते नानी से भी बच्चों को संतोष होना कम होने लगा। संबोधन में मानों जितने अपने जी का अपनापन वे बालक भर देना चाहते थे, यह नानी शब्द उतना अपने में धारण नहीं रख सकता है। यह शब्द जैसे कहीं ओछा रह जाता है।

प्रसंग: व्याख्येय कथांश 'रुकिया बुढ़िया' कहानी से लिया गया है। कहानी के लेखक श्री जैनंद्र कुमार हैं। इसमें लेखक ने यह बताने की कोशिश की है कि मुहल्ले के बच्चे रुकिया बुढ़िया से कितना स्नेह करते थे पर उससे डरते भी कितना थे। इसी भाव को इन पंक्तियों में प्रस्तुत किया है।

व्याख्या: रुकिया एक अर्से से इस मुहल्ले में रह रही है। मगर किसी का भी ध्यान उस तरफ नहीं खिंचा। लेकिन जब उसने छोटे-छोटे बच्चों को फूल देने शुरू किए, तो वह बहुत जल्द मशहूर हो गई। बच्चे उससे मिलने के लिए आँखें बिछाए बैठे रहते थे। बच्चों ने रुकिया के लिए 'नानी' शब्द खोज निकाला था। अब आलम यह था कि वह पूरे मुहल्ले के बच्चों की नानी बन बैठी थी। फिर भी रुकिया बुढ़िया का व्यवहार स्नेह भरा व अपनत्व लिए था। बच्चों को वह बहुत अच्छी लगती थी। बच्चों को लगता था कि जितना रुकिया उन बच्चों को प्यार करती है, उसके आगे 'नानी' संबोधन छोटा ही है। यानी वह तो नानी से भी ज्यादा प्यार करती थी। पर बच्चों के सामने सबसे बड़ी परेशानी यही थी कि वे 'नानी' से बड़ा कोई और संबोधन जानते ही नहीं थे।

विशेष: बच्चों का मन निश्छल होता है। जो उन्हें प्यार करता है, उसकी तरफ वह खिंच जाता है। रुकिया चूँकि बच्चों से बेहद प्यार करती थी, इसलिए बच्चे भी उससे बेपनाह मुहब्बत करते थे। इसी बाल मनोविज्ञान का परिचय इन पंक्तियों से मिलता है। 'नानी' संबोधन में जो मिठास है, उसकी तुलना करना संभव नहीं है। वह अतुलनीय है। पर बालकों को लगता था जैसे रुकिया का उनके प्रति प्यार तो 'नानी' से भी ज्यादा है। पर उनकी विवशता थी कि वह इससे ज्यादा अपनत्व के लिए कोई अन्य संबोधन नहीं जानते थे।

- अनायास नानी उस सरस्वती कुमारी के कंठ में से नानी बनकर निकली और तुरंत वहाँ खड़े बालकों ने प्रत्यक्ष देख लिया कि नानी का यह नवाष्कृत रूप मानों उनके मन के अधिक भीतर है। नानी अर्थात् हमारी अपनी नानी। नानी में अपना निजत्व भरा जाए, तो किस तरह उसे नानी बन उठना होगा। यह हमारी समझ में कुछ भी नहीं आ सका है; पर सच, बालकों को लग रहा है कि नानो बनकर नानी को उन्होंने अपने जी में जैसे और गहरा उतार लिया है। बालक बुद्धि ही तो है। फूल अब बिल्कुल बिसर गए और हिल मिलकर वे सब दोहराने लगे नानो बुढ़िया फूल दे। नानी बुढ़िया फूल दे।" और उस बुढ़िया के चारों ओर वे बालक उछल कूद भी मचाने लगे।

Notes

प्रसंग: व्याख्येय कथांश श्री जैनंद्र कुमार द्वारा रचित 'रुकिया बुढ़िया' कहानी से लिया गया है। इससे कहानीकार ने बताया है कि किस तरह मुहल्ले के बच्चों के लिए रुकिया बुढ़िया नानी के बजाय नानो यानी नानी के संबोधन में बदल गई।

व्याख्या: कथाकार कहता है कि सरस्वती कुमारी नाम की बालिका ने रुकिया बुढ़िया को नानी के बजाय नानो कहना शुरू कर दिया। तब मुहल्ले के बालकों को भी लगा कि रुकिया के लिए 'नानी' संबोधन शायद ज्यादा उपयुक्त नहीं है, उसका प्यार तो 'नानी' से भी ज्यादा है। इसलिए उन्होंने नानो कहना शुरू कर दिया। लेखक के विचार में यह समझ पाना तो बेहद मुश्किल था कि नानी के बजाय नानो कहलाने से रुकिया व मुहल्ले के बच्चों में क्या अंतर आया था। असल में रुकिया और उसके स्वभाव में तो कोई बदलाव नहीं था। जो भी कहें, पर इस संबोधन से रुकिया से बच्चों के संबंध काफी गहरा गए थे। बालकों की बुद्धि में तर्क या विचार जैसा कुछ नहीं होता। उनका स्वभाव तो निर्मल, स्वच्छ रहता है। पहले वे रुकिया को 'नानी' कहते थे। अब उसे 'नानो' कहना शुरू कर दिया। इससे उनके मन में बेशक संतोष हो गया था, पर रुकिया के स्वभाव में कुछ भी बदलाव नहीं आया था। इस प्यार में बच्चे 'फूलों' की बात भी भूल गए थे। उनमें तो सिर्फ 'नानी' व 'नानो' शब्दों के अंतर की बारीकियाँ ही शामिल थीं। तभी उन्हें याद आया रुकिया से फूल मांगे जाने चाहिए। और तभी सब मिलकर फूल मांगने लगे— 'नानो बुढ़िया फूल दो' इस तरह बार-बार फूल मांगते हुए वह उसके इर्द-गिर्द चक्कर काटने लगे। इधर-उधर उछल-कूद करने लगे। यह सब देखकर रुकिया का मन प्रसन्न हो उठा। वह बार-बार इस याद में डूबी थी कि सुकोमल बच्चों के निश्छल स्नेह को वह कैसे अपने आंचल में बाँध सकेगी।

3. इस तरह बालकों के सहारे वह बुढ़िया रहती है, और कहीं उसका सहारा नहीं है। सब ओर से टूट चुकी है, किसी भी ओर और हिलगा हुआ बंधन शेष नहीं है। अब अपने हृदय के सारे तारों को इन बालकों में अटका कर वह जी रही है। इनसे उलझ लेती है। हंस लेती है और इन्हें कोसती है और प्यार कर लेती है, इन्हीं को लेकर आंसुओं के कड़वे घूंट पी लेती है। इन्हीं से फिर अपने जी को हरा भी कर लेती है—वह बुढ़िया इसी भाँति जी लेती है।

प्रसंग: प्रस्तुत पंक्तियाँ प्रख्यात कथाकार श्री जैनंद्र कुमार द्वारा रचित 'रुकिया बुढ़िया' नामक कहानी से ली गई हैं। इनमें लेखक ने रुकिया के ममतापूर्ण हृदय का चित्र प्रस्तुत किया है। इस संसार में रुकिया एकदम अकेली रह गई थी। उसके मन में उमड़ते प्यार का अभी तक असली हकदार नहीं मिला था। इन बच्चों को प्यार दे वह धन्य हो उठी। उसने अपना सारा प्यार इन बच्चों पर उड़ेल दिया। दरअसल उसका विवाह उसके जीवन में खुशी की बहार न लाकर दर्द की खिजा लेकर आया था। उस तकलीफ से वह टूट कर बिखर चुकी थी। अब इन बच्चों ने उसे दोबारा जीना सिखा दिया था। इसी भाव का सरस वर्णन इन पंक्तियों में उतर कर आया है।

व्याख्या: मुहल्ले भर के बच्चों की बुढ़िया ही एक आश्रय स्थली थी। उसका भी इन बच्चों के सिवाय कोई दूसरा नहीं था। वह हर तरह से टूट चुकी थी। कोई भी नहीं था, जिसे वह अपना कह पाती। पति व पिता पक्ष से कोई भी अब संबंधी बाकी नहीं था। शायद इसीलिए उसका भीतरी प्यार इन बच्चों पर लुट रहा था। अब तो आलम यह है ये मुहल्ले के बच्चे उसके रह गए हैं। उसका मन कहीं और नहीं अटका है। इन्हीं बच्चों की हंसी या रोष उसके जीवन का जैसे सुख-दुःख हो गया है। इन बच्चों पर उसके—दिल के प्यार का जर्ज-जर्ज बरसना चाहता है। जब मिलकर बच्चों से लड़-भिड़ लेती है, और कभी हंस-खेल लेती है जैसे अतीत की वेदना

भूलने के ये साधन बनकर रह गए हैं। कभी वह इन बच्चों को लेकर अजस्र धारा बहा लेती है, या फिर कभी उनके साथ घंटों हंस लेती है। मतलब यह है कि हंसना-रोना, रूठना-मनाना, हास-उपहास, प्रेम-घृणा जैसे सबके साथ रुकिया का नाता जुड़ गया है। यों ही रुकिया की जिंदगी की गाड़ी चल रही है।

4. कहती जाती है माई जी परशाद ले जाओ, परशाद चढ़ाओ और वह तत्परता के साथ परशाद के दोने देती जाती है। जिसके हाथ जो होता है, डालती हुई अपने दोने संभाले माई चलती जाती है। कोई पैसा डाल देता है, कोई आधी मुट्ठी गेहूं डलिया के पास बिछे वस्त्र पर बिखेर देती है, कोई पस भर जौ गिरा देती है, कोई मंसूरी तांबा फेंक जाती है। कोई-कोई पुण्यवती इकन्नी भी डाल जाती है। बुढ़िया सभी को एक-सी प्रसन्नता और उद्यतता के साथ प्रसाद देती है। बदले में उसे कौन क्या दिए जा रहा है, उसे बिल्कुल ही ध्यान नहीं रहता। हाँ, इकन्नी गिरती है, तब उसे पता चले बिना नहीं रह पाता। सब छोड़ पहले वह उसे अपने सलूके के भीतर की जेब में रख लेती है, कोई बिना कुछ दिए ही चली जाती है। बुढ़िया नहीं जानती सो नहीं; पर ऐसी कौन-कौन है, यह उसने कभी भी अपने मन को पता नहीं चलने दिया है। एक ही श्रद्धा भाव से सबको दोने देती है। इकन्नी गिरना उससे नहीं छिपता सही, पर इकन्नी डालने वाली इस भीड़ में से खास कौन है, मानों यह पहचान और याद रखने की उसमें सामर्थ्य नहीं है।

प्रसंग: प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यक्रम में निर्धारित 'रुकिया बुढ़िया' कहानी से ली गई हैं। इसमें रचनाकार ने रुकिया के निश्छल स्वभाव का यथार्थ चित्रण किया है। वह प्रसाद बेचती है, लेकिन ग्राहकों के प्रति उसके मन में असीम श्रद्धा का भाव है। इसी भाव को प्रकट करते हुए जैनेंद्र जी कहते हैं।

व्याख्या: यमुना नदी में स्नान के लिए जाने वाली प्रत्येक माई को रुकिया प्रसाद की थाली लेने का आग्रह करती है। वह सवेरे तीन बजे प्रसाद की थालियाँ सजा यमुना तट पर बैठ जाती है। वह तत्परता के साथ दोने देती है। जो भी माई उससे दोना खरीदती है, उसे बदले में कुछ न कुछ अवश्य देती है। कोई जौ का आटा डाल जाती है, तो कोई तांबे का पैसा फेंक जाती है। कोई ऐसी है, जो इकन्नी फेंक जाती है। लेकिन रुकिया में सबके प्रति समान आदर है। उसके मन में किसी प्रकार का किसी के प्रति भी असमानता का भाव नहीं है। यदि कोई उसे प्रसाद के बदले कुछ न भी देता, वह बुरा नहीं मानती। वह तो सिर्फ प्रसन्न मुद्रा में पूजा करने वालों को दोना देती रहती है। यदि कोई माई उसकी तरफ इकन्नी फेंकती है, तो उसे इसका तत्काल आभास हो जाता है। और वह सबसे पहले इस इकन्नी को उठा तरतीब से सलूके में रख लेती है। जो भक्तिन या माई बिना कुछ दिए दोना ले जाती है, इसका उसे पूरा पता रहता है, पर वह किसी को टोकती नहीं वह तो सभी को श्रद्धा के साथ देखती है। इकन्नी गिरने का पता उसे जरूर लगता है पर इसे किस नियत से दिया गया है, इसकी जानकारी उसे कतई नहीं होती। यह जानने की वह जरूरत भी नहीं समझती। उसके लिए सभी भक्तिन एक समान हैं।

5. रुक्मिणी सुन्दरी है। लज्जाशीला है, सावन भादों में जैसे पत्नी है। प्रेम जैसी भारी चीज से भरी है, इससे स्वयं हलकी नहीं है। इसलिए प्रेमिका नहीं है, गृहिणी है। सेवा में उसका प्रेम तुष्ट है। उत्सर्ग में उसे तृप्ति है। अधिकारशील उसका प्रेम कम है, इसलिए उसमें लग सकता है कि चमक कम है, भार कम है, नमक कम है। फुहारें उसमें नहीं हैं क्योंकि गहराई अधिक है। वह गृहिणी है, गृहिणी नहीं बन सकती, इसलिए अभागिनी है। वह प्रेम भरी है, इससे प्रेमिका होना उससे नहीं सँभलेगा।

Notes

प्रसंग: प्रस्तुत पंक्तियाँ कथाकार जैनेंद्र द्वारा रचित 'रुकिया बुढ़िया' नामक कहानी से ली गई हैं। इसमें लेखक ने रुकिया के अतीत का सुखद चित्र प्रस्तुत किया है। एक समय था जब रुकिया रुक्मिणी थी। वह सुंदर थी, विवाहित थी, पर उसे अपने पति का प्रेम नहीं मिल सका। वह गृहिणी बनना चाहती थी, लेकिन उसका पति उसे प्रेमिका के रूप में ही देखना चाहता था। परिणामस्वरूप उसका विवाहित जीवन सफल नहीं रह सका। इसी भाव का सजीव चित्र इन पंक्तियों में चित्रित है।

व्याख्या: लेखक बताना चाहता है कि रुकिया बुढ़िया जैसी अब है, वैसी पहले नहीं थी। वह सुंदर थी, लज्जाशीला थी, युवा थी। भारतीय आदर्श पत्नी में जिन गुणों का होना अनिवार्य बताया गया है, वह सब उसमें थे। वह अपने पति से सच्चा स्नेह करती थी। उसमें समर्पण का भाव था। पति-मिलन की उत्कट चाह रहती थी। पति के प्रति उसका व्यवहार पूर्णतः गंभीर था। कहीं भी सस्तापन नहीं था। वह सच्चे अर्थों में गृहिणी थी। इसी रूप में सदैव जीवित रहना चाहती थी। एक प्रेमिका की तरह वह न तो अकारण रूठती थी न पति से मनुहार कराने की चाह उसमें रहती थी। प्रेमिका व गृहिणी दोनों की स्थिति अलग-अलग है। गृहिणी रहकर कोई भी नारी-प्रेमिका की भूमिका का निर्वाह नहीं कर सकती। इसी प्रकार प्रेमिका भी गृहिणी का दायित्व नहीं निभा सकती। रुक्मिणी के भाग्य की सबसे बड़ी विडंबना यही है कि वह सदैव अपने पति को संतुष्ट करने की कोशिश में लगी रहती थी। उसके सुख के लिए वह बड़े से बड़ा त्याग कर सकती थी। पति के लिए त्याग करके उसे अपूर्व सुख की प्राप्ति होती थी। तभी उसका पति प्रेम त्याग भावना पर आधारित था। उसके प्रेम में अधिकार भावना नहीं थी। तभी तो उसका प्रेम स्वाभाविक था। उसमें तड़क-भड़क नहीं थी। न ही किसी प्रकार के प्रदर्शन का भाव था। वह प्रेम दिखाने की भावना वाला नहीं था। वह सच्चा प्रेम था। निःस्वार्थ था। उसमें प्रतिफल का भाव नगण्य था। इसलिए उसके मन में गृहिणी बनी रहने का चाव था, पर उसकी यह इच्छा पूरी न हो सकी।

विशेष: गृहिणी-प्रेमिका के स्वरूप को पारिभाषित करने का कथाकार ने यहाँ प्रयास किया है। पर आज समाज बदल रहा है। आज गृहिणी व प्रेमिका दोनों की भूमिका एक ही स्त्री को जीनी पड़ती है। इसमें से एक का अभाव उसके विवाहित जीवन को तबाह कर सकता है।

6. पुनर्जन्म भी तो लोग मानते हैं। किंतु तब के नातों को कोई याद नहीं रखता। तब की बातों को हम सब छूट्टी दे चुके होते हैं। तब हम यह थे, इसका दंभ हमें नहीं फुलाता, यह न थे, इसका दुःख भी हमें नहीं सताता। अब सब घटित अतीत से अपने को स्वार्थ तोड़कर नए जन्म में हम जीते हैं। नहीं तो अपने अनंत इतिहास का बोझ अपने माथे पर लेकर हम जी सकते हैं? हमारा ज्ञान संकुचित है, यही हमारा वरदान है। हम परिमित हैं, यही हमारा धन्य भाग्य है।

प्रसंग: व्याख्येय कथांश जैनेंद्र कुमार द्वारा रचित 'रुकिया बुढ़िया' कहानी से लिया गया है। कहानीकार इस अंश में बताना चाहता है कि आज रुकिया बूढ़ी हो चुकी है, पर किसी समय वह सुंदर व पति समर्पित थी। अपनी पूर्ण अवस्था को उसने भुला दिया है। ऐसा लगता था, जैसे रुकिया का पुनर्जन्म हुआ हो वह भी बुढ़िया के रूप में। भावार्थ यह कि वह अपने अतीत को पूरी तरह भुला चुकी थी।

व्याख्या: रचनाकार कहता है रुक्मिणी मर चुकी है। अब 'रुकिया बुढ़िया' के रूप में अवतरित हुई है। यह उसका पुनर्जन्म हुआ है। पुनर्जन्म के कारण ही हमें पूर्व भूल जाता है। हमें यह भी मालूम नहीं कि पहले हम कितने महत्वपूर्ण व्यक्ति थे। इसीलिए हमें यह दुःख भी नहीं सताता

कि काश! हम कुछ हुए होते। यदि हमें अपना अतीत याद आ जाए तो यह जन्म काटना ही मुश्किल जो जाए। वर्तमान में हम इसलिए जी पाते हैं, चूँकि हम अतीत भूल चुके होते हैं। पिछले जन्म की हमें कटु या मधुर याद नहीं रहती। इसलिए वर्तमान जीवन पर इन भावों का कुछ असर नहीं पड़ता। हमें पिछला कुछ भी याद नहीं है, यह हमारे लिए वरदान से कम नहीं है। यह हमारे लिए परम सौभाग्य है कि हमें पूर्ववृत्त याद नहीं है।

7. नहीं, मैं नहीं आ सकूंगा। मुझे क्षमा करें। देखिए, नेतृत्व के मामले में गावों को आत्मनिर्भर बनाना होगा। नेताओं का भरोसा आप क्यों रखें? इस तरह सरकार हमें हरा सकती है। चुन-चुन कर कुछ आदमियों को जेल में डाल दिया, और राष्ट्र की रीढ़ टूट गयी। नहीं, प्रत्येक व्यक्ति कृत निश्चय हो तब तो स्वराज्य मिलेगा। नहीं तो अगर स्वराज्य मिला भी तो जनता का स्वराज्य वह कब हुआ? हम लोगों का आसरा अब छोड़ दीजिए, मैं आप सा ही आदमी हूँ, दो टांगें दो हाथ। आप दिल में इरादा पैदा कीजिए और मुल्क के लिए रहिए तो आप में मुझमें क्या फर्क है? तो यह ठीक है न? आप मुझे छोड़ दें। बाहरी लीडरों की आस छोड़ें। खुद लीडर बनो। आपकी तहसील का आपकी तरह मैं प्रतिनिधि हो सकता हूँ? देखिए, मैं जरूर चलता लेकिन मजबूरी आ गई है।

प्रसंग: व्याख्येय कथांश कथाकार जैनंद्र द्वारा रचित 'एक रात' नामक कहानी से लिया गया है। इसमें कथाकार ने तत्कालीन कांग्रेसी कार्यकर्ताओं के जीवन दर्शन की झाँकी प्रस्तुत की है। इस भाव को अभिव्यक्त करते हुए कथाकार कहते हैं—

व्याख्या: हरिपुर के कुछ लोग कांग्रेसी कार्यकर्ता जयराज को अपने गाँव में निर्मात्रित करने के लिए आए हैं। लेकिन जयराज उनका निमंत्रण ठुकरा देता है। वह वहाँ जाने में असमर्थता प्रकट करते हुए कहता है कि मैं हरिपुर के जलसे में शामिल नहीं हो सकता। यों भी आप लोग नेताओं के चक्कर में बेकार पड़े रहते हैं। आप लोगों में स्वावलंबन की भावना आनी चाहिए। नेताओं के भरोसे नहीं रहना चाहिए। प्रत्येक गाँव के अपने कार्यकर्ता होने चाहिए। उन्हीं के मार्गदर्शन में कार्यक्रम चलाए जाने चाहिए। बाहर से नेताओं को निर्मात्रित करने का कोई फायदा नहीं है। आपको स्थानीय कार्यकर्ताओं की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। यदि बाहरी नेताओं के चक्कर में पड़े रहे तो एक दिन अंग्रेज हमें हरा देंगे। सरकार कांग्रेस के चुनिंदा नेताओं को जेल में टूस देगी। सभी कार्यकर्ता दिशाहीन हो जाएंगे। उन्हें सुव्यवस्थित मार्ग निर्देश नहीं मिलेगा। इससे राष्ट्रीय शक्ति नष्ट होगी। यदि हमें सच्चा स्वराज प्राप्त करना है, तो इसके लिए प्रत्येक व्यक्ति को कृत संकल्प होना है। यदि ऐसा नहीं होता है तो स्वराज मिलने का कोई आसार नहीं है। जरूरत इस बात की है प्रत्येक व्यक्ति के मन में स्वराज की भावना को जागृत किया जाए। जब आप लोग स्वावलंबी हो जाएंगे। जरा-जरा सी बात के लिए नेताओं का मुँह नहीं ताकोगे, तभी सच्चा स्वराज मिल सकेगा। जयराज अपनी ओर मुखातिब होते हुए कहता है कि मुझमें आप लोगों में कुछ फर्क नहीं है। मेरे भी दो हाथ दो टांग हैं, और आपके भी। सिर्फ फर्क यही है कि आप मानते हैं कि मैं देश के लिए कुछ कर रहा हूँ, खाली नहीं बैठा हूँ। शायद इसीलिए आप लोग मुझे अपने गाँव में आने का निमंत्रण देने आए हैं। पर अगर आप में भी मेरी तरह देश अनुराग की भावना पैदा हो जाए तो वह अंतर भी खत्म हो जाएगा, जो आप मुझमें और अपने में समझ रहे हैं। इसलिए आप मुझे माफ ही करें। मैं आपके गाँव नहीं आ सकूंगा। मैं फिर कहता हूँ कि आप नेताओं के चक्कर में मत पड़ो। आप तो खुद अपने दिल में ऐसी भावना पैदा करो कि बाकी आपसे नसीहत लें। आपको खुद नेता बनना चाहिए। आप किसी से कम नहीं हैं। बल्कि आप तो नेता ही हैं। अपनी तहसील व अपने गाँव के सच्चे प्रतिनिधि आप ही हैं। मैं या कोई भी

Notes

बाहरी व्यक्ति से ज्यादा महत्वपूर्ण आप, आपके गाँव के लोग हैं। दरअसल मेरे पास वक्त की कमी है। व्यस्त कार्यक्रम है। मैं इसीलिए आपके गाँव आने में असमर्थ हूँ।

8. ठहरो मुझे साफ-साफ देखने दो। मैं क्या हूँ? मैं एक उद्देश्य पर समर्पित व्यक्ति हूँ। मेरा निजत्व क्या है? कुछ नहीं है। मेरा स्वार्थ क्या है? कुछ नहीं है। क्या मेरे लिए परमार्थ भी कुछ है? कुछ नहीं है। मेरे लिए एक ही वस्तु है। वही मेरा स्वार्थ, वही मेरा परमार्थ, वही मेरा निजत्व, वही मेरा लक्ष्य। जब मैं समर्पित हूँ, तब मैं किसी भी और अन्य विचार के लिए खाली नहीं हूँ, बचा नहीं हूँ, जीवित नहीं हूँ। मेरी देह, मेरी बुद्धि में कहीं भी कुछ और के लिए अवकाश कैसे हो? सिवाय उसके लिए जिसके लिए मैं न्यौछावर हूँ। किसके लिए मैं न्यौछावर हूँ? राष्ट्र के लिए। राष्ट्र के स्वराज के लिए। राष्ट्र क्या है? वह राष्ट्र कहाँ है? मेरे हृदय में वह राष्ट्र कहाँ है? क्या अमुक और अमुक भौगोलिक परिधियों में परिमित भारत वर्ष नामक भूखंड का चित्र मेरे भीतर गहरा उतर कर सदा जागृत रहता है? क्या वही यों जी की धड़कन में सदा स्पंदन करता रहता है? स्पंदन करता हृदय राष्ट्र की भावना के बिना भी वह स्पंदन करता है। जान शेष विश्वात्मा का निर्देश है। तब तक वह स्पंदन रुकेगा नहीं होता ही रहेगा। तब राष्ट्र क्या है? तब ठहरो मैं शक्ति चित्र नहीं बनाऊंगा। संशयात्मा, विनिश्चयि, यह प्रश्नातीत रहे कि राष्ट्र है। मैं राष्ट्र सेवक हूँ। और कुछ भी नहीं हूँ। जयराज मात्र नाम है। राज्य का कोई पार्थक्य नहीं, कोई व्यक्तित्व नहीं। जयराज राष्ट्र सेवक है, एक, निरा, बस।

प्रसंग: व्याख्येय कथांश मनीषी कथाकार श्री जैनेंद्र कुमार द्वारा रचित 'एक रात' कहानी से लिया गया है। इसमें कथाकार ने राष्ट्र सेवक के मन में देश भक्ति की अनन्य लहरों का उद्घाटन किया है। इसी भाव का विश्लेषण करते हुए रचनाकार कहते हैं।

व्याख्या: जयराज आत्मचिंतन करते हुए कहता है कि मुझे कम से कम साफ तौर से समझने का अवसर दिया जाना चाहिए। मैं अपना हर शक मिटा देना चाहता हूँ। हर बात साफ-साफ देखना चाहता हूँ। मैं अपने बारे में क्या विवेचन करूँ। मैं ऐसा व्यक्ति हूँ जो एक निश्चित उद्देश्य के लिए पूर्णतः समर्पित हूँ। मेरा अपना कुछ भी अस्तित्व नहीं। न मेरा कोई निजत्व है। मेरा स्वार्थ भी कुछ नहीं है। मेरे समक्ष परमार्थ का भी कोई महत्व नहीं है। मेरा इससे कोई हित भी सधने वाला नहीं। मेरे समक्ष मात्र एक ही लक्ष्य है। वह है राष्ट्र सेवा। इससे बड़ा उद्देश्य मेरे जीवन का न कोई है और न दूसरा हो सकता। मेरा निजत्व, मेरा स्वार्थ, मेरा लक्ष्य, मेरा उद्देश्य यानी जो कुछ भी मेरा है, वह राष्ट्र का है। राष्ट्र सेवा से बड़ा मेरा कोई दूसरा मकसद नहीं। मैं अपने राष्ट्र के लिए पूर्णतः समर्पित व्यक्ति हूँ। राष्ट्र सेवा से भिन्न मेरा कोई भी उद्देश्य नहीं। मेरे जीवन की सार्थकता राष्ट्र सेवा है। मेरी बुद्धि में राष्ट्र सेवा से अलग कोई दूसरा विचार नहीं आ सकता। प्रश्न यह बाकी है, जिस राष्ट्र के लिए मेरा तन-मन समर्पित है, आखिर उसका स्वरूप क्या है? वह राष्ट्र कहाँ है? कौन-सा है? यदि मैं यह मान लूँ कि यह राष्ट्र मेरे हृदय में विद्यमान है, तो शायद यह सब ठीक नहीं है। चूँकि मेरा हृदय तो राष्ट्र से अलग होकर भी जो धड़कता है। क्या मेरा यह मान लेना जायज है कि भौगोलिक परिधियों से बंधा भारत देश का चित्र मेरे हृदय में विद्यमान है? क्या वही भारत देश है, जो मेरे हृदय में सदैव आंदोलित रहता है? लेकिन ऐसा नहीं है। भारत का ऐसा होना ही गलत है। राष्ट्र व हृदय की धड़कन ये दोनों एक नहीं हैं। इन दोनों की अलग-अलग अहमियत है। इन दोनों की अलग-अलग सत्ता है। हृदय विश्वात्मा के निर्देश से धड़कता है। जब तक यह निर्देश रहता है, तभी तक धड़कता है। उसके बाद इसका कोई अस्तित्व नहीं रहता। ऐसी स्थिति में यदि राष्ट्र मेरे हृदय की धड़कन है, नहीं है तो क्या है? निश्चय ही

इस शंका ने जन्म ले लिया है। शंका सदैव विनाशकारी होती है। राष्ट्र की स्थिति प्रश्नातीत है। उसे लेकर प्रश्न नहीं किया जा सकता। इसे शक्ति दृष्टि से नहीं देखा जा सकता। मैं तो सिर्फ यही मानता हूँ कि मैं राष्ट्र का सेवक हूँ। इसके अलावा कुछ भी नहीं हूँ। ठीक है, मेरा नाम जयराज है, किंतु यह तो केवल नाम है। सच तो यह है, मैं अपने आपको राष्ट्र सेवक मानता हूँ। इससे बढ़कर कुछ भी नहीं। जयराज तो सिर्फ नाम भर है। इसका अपना कोई व्यक्तित्व नहीं है, वह तो सिर्फ राष्ट्र सेवक है।

9. जयराज, राष्ट्र पर चढ़ते हुए अर्ध में कुछ भी अपना निजत्व मानकर अर्ध को अपवित्र न करो। चोर न बनो। यज्ञ अशुचि न बनाओ। तुम्हारा कुछ नहीं, कुछ नहीं है। कुछ तुम्हारे लिए नहीं है, कुछ तुम्हारी स्वीकृति के लिए नहीं है। सुदर्शना सुनयना भी हो सकती है, सुलोचना भी हो सकती है। माला भारतीय नारी के हाथों में भारतीय पौरुष के गले में पड़ी है। नारी शक्ति ने युद्ध पौरुष का स्वागत किया है जयराज।

प्रसंग: व्याख्येय कथांश कथाकार जैनद्र द्वारा रचित 'एक रात' नामक कहानी से लिया गया है। इसमें लेखक ने जयराज के अन्तर्द्वन्द्व को सजीव रूप से चित्रित किया है। उसने हरिपुर जाने के लिए साफ मना कर दिया था, लेकिन फिर भी वह वहाँ पहुँच गया। हरिपुर में उसका अपूर्व स्वागत हुआ। सुदर्शना नामक महिला ने उसके गले में माला डाली। जयराज के मन में इस भाव ने जन्म ले लिया कि कहीं उस माला में निजी भाव तो नहीं छिपा हुआ था। इसी भाव का चित्रण इन पंक्तियों में प्रस्तुत है।

व्याख्या: जयराज स्वयं से बात करता हुआ कहता है कि जयराज तुम्हें उस स्त्री के बारे में, इस तरह के विचार मन में लाने का कोई अधिकार नहीं है। यह ठीक है कि सुदर्शना ने तुम्हारे गले में खदर के फूलों की माला पहना दी है, पर तुम्हें इस संदर्भ में कोई अर्थ लगाने का प्रयास नहीं करना चाहिए। सुदर्शना ने वस्तुतः तुम्हें आदर भाव नहीं दिया है, अपितु उसने तो राष्ट्र को सम्मान दिया है। तुम्हें उसके इस भाव में अपने लिए कुछ खोजना शोभा नहीं देता। इस महिला ने राष्ट्र के प्रति जो प्रेम प्रकट किया है, तुम्हें उसे कलुषित करने का कतई हक नहीं है। यह तो यज्ञ-स्वरूप है इसे अपवित्र मत करो। यदि इस पूजा में तुम निजत्व खोजने लग जाओगे तो तुममें और चोर में कोई विशेष अंतर नहीं रहेगा। विशाल सभा में सुदर्शना ने तुम्हारा नहीं अपितु राष्ट्र का सम्मान किया है। सही अर्थों में इस माला के तुम हकदार भी नहीं हो, यह तो उसने राष्ट्र का सम्मान किया है। उसने तुम्हारे गले में यह माला इसलिए डाली थी चूँकि वह तुम्हें राष्ट्र का सच्चा सेवक मानती है। तुम यह क्यों नहीं सोचते कि तुम्हारे गले में सुदर्शना नहीं तो कोई और स्त्री भी माला डाल सकती थी। अतएव सुदर्शना ने तुम्हारे गले में माला डालकर जिस तरह का भाव प्रस्तुत किया है, तुम्हें वही भाव स्वीकार करना चाहिए। असल में सुदर्शना ने माला तुम्हारे गले में न डालकर भारतीय पौरुष के गले में डाली है। उस भाव में कोई अन्य अर्थ मत खोजो, अन्यथा यह पाप कहलाएगा। इससे तुम्हारी अब तक की गई राष्ट्र सेवा भी धूल धूसरित हो जाएगी।

10. तुमसे मैंने बहुत प्रेम पाया है, बहुत आदर लिया है। वह सब मैंने चोरी की है। ठगी की है। मैं उसकी बनने वाली कोई नहीं थी। मैं अपात्र थी, आज मुझे पता चला है कि अपना सब कुछ मैं तुम पर नहीं वार सकी। भीतर ही भीतर कुछ बच गया था जो आज देखती हूँ, तुम्हारे चरणों में मैं अर्पित नहीं कर सकी थी। यों न देखो... मुझे देखो। मैं तुम्हें धोखा देती रही। तुमसे पाती सब कुछ रही, देने में चोरी करती रही।

Notes

प्रसंग: व्याख्येय कथांश श्री जैनंद्र कुमार द्वारा रचित 'एक रात' नामक कहानी से लिया गया है। इसमें सुदर्शना ने अपने पति के समक्ष अपने अपराध भाव को स्वीकार किया है। वह अपने पति को स्पष्ट बता देना चाहती है कि वह भारतीय नारी की प्राचीन मर्यादा नहीं निभा सकी है। इसी भाव को अपने पति के समक्ष प्रकट करते हुए कहती है:

व्याख्या: सुदर्शना अपने पति को संबोधित करते हुए कहती है कि तुमने निस्संदेह मुझे अथाह प्रेम दिया है। किंतु मैं इस प्रेम के योग्य नहीं हूँ। मैं तुम्हारे प्रेम व सम्मान की अधिकारिणी नहीं हूँ। यद्यपि यह सब मुझे प्राप्त हुआ है। मैंने तुम्हारे साथ ठगी की है। चोरी की है। यानी मैंने अपने आपको कभी तुम्हारे समक्ष पूर्ण समर्पित नहीं किया। तुमने तब भी मुझे जो अथाह व असीम प्रेम दिया है, मैं आभारी हूँ। एक आदर्श पत्नी के नाते जो मुझे तुम्हें देना चाहिए था वह मैं तुम्हें नहीं दे सकी। मेरा अन्तर्मन पूरी तरह तुम्हारे प्रति समर्पित न रह सका। मुझे लगा अभी मेरे पास काफी कुछ था, जो तुम्हें दिया जा सकता था। मेरी ये सब बातें तुम हैरान होकर न सुनो। मैं आज अपने दिल की बात पूरी तरह खोल देना चाहती हूँ। मैं मानती हूँ कि मैं तुम्हें बराबर धोखा देती रही हूँ। मैं तुमसे सब कुछ प्राप्त करती रही हूँ, पर बदले में मैंने तुम्हें कभी कुछ नहीं दिया। इसलिए मैं तो अपने आपको अपराधिनी मानती हूँ।

11. सुदर्शना सब ओर से छुटी, इस समूचे अंधेरे, सन्नाटे भरे शून्य के बीच में से निरुद्देश्य, अनजानी राह पर जिसके साथ चली जा रही है। उसी के प्रति अपने में शंका कहाँ से लाए? वहीं चली ही जा रही है। शब्दहीन, संदेशहीन, निर्व्याज और सम्यक भाव से, जिसे करने को न प्रश्न की आवश्यकता है, न उत्तर की अपेक्षा है। जिसमें जिज्ञासा का अवकाश नहीं है। भवितव्यता के संबंध में किसी प्रकार की आशंका के लिए गुंजाइश नहीं है। संपूर्ण असंदिग्ध, निःकांक्ष्य और निश्शंक, वह चली ही जा रही है, कहाँ नहीं जानती। क्यों, नहीं जानती। और जानने की इच्छा भी हो। इतना भर भी अभाव, इतना भी रिक्त उसमें नहीं है।

प्रसंग: व्याख्येय कथांश जैनंद्र कुमार द्वारा रचित 'एक रात' कहानी से लिया गया है। इसमें कथाकार ने स्पष्ट किया है कि जयराज के प्रति आत्मदान करते वक्त सुदर्शना तत्पर व साहस भरी थी। सच्चे प्रेम से ही मुक्ति संभव है। वह निर्बाध है। सुदर्शना के मन में जयराज के प्रति सच्चा प्रेम उमड़ा है। वह घर छोड़कर जा रही है, पर उसे इसका तनिक भी दुःख नहीं है।

व्याख्या: लेखक सुदर्शना के निर्बाध प्रेम व साहस का विवेचन करता हुआ कहता है, 'अपना घर त्याग कर चली आई सुदर्शना आज अपने सभी संबंधों को ताक पर रखकर आई थी। आज वह अपने पति और घर को छोड़कर चली आई थी। अब उसका मार्ग निर्बाध था। संबंधों की जंजीर उसने काटकर फेंक दी थी। रात सन्नाटा भरी थी। सुदर्शना दिशाहीन यात्री—सी आगे बढ़ती जा रही थी। वह निर्भय थी। अंधेरी व सुनसान रात में जयराज का साथ उसे निर्भय कर रहा था। वह भविष्य के प्रति आश्वस्त थी। जरा भी इस संदर्भ में उसके मन में क्लान्ति नहीं थी। न तो उसके मन में किसी तरह का प्रश्न झूल रहा था। और न किसी प्रश्न का उत्तर पाने की उसमें इच्छा ही शेष थी। उसके मन में यह इच्छा बलवती नहीं थी, वह यह भी जान ले कि आखिर उसे जाना कहाँ है? न उसे भविष्य की चिंता थी। वह तो पूर्ण आश्वस्त थी। रात का भयप्रद अंधेरा उसके साहस के नीचे दम तोड़ रहा था। उसमें संदेह तक की गुंजाइश नहीं थी। न उसके मन में कोई कामना ही अवशेष थी। वह कहाँ जा रही है? क्यों जा रही है? इसका उत्तर वह नहीं

चाहती थी। वह तो निर्द्वन्द्व भाव से चली जा रही है। न तो वह अपना गंतव्य जानती है, न उसमें जानने की कोई इच्छा है।

विशेष: इसमें सुदर्शना के मनोभावों का सुंदर चित्रण विद्यमान है।

12. जग से टूटी, अतीत से परोक्ष सब तरह के नातों के अभाव में वह निरी शावक, निरी चिड़िया, बनी आराम से सो रही है। कल क्या था, राम जाने। कल क्या होगा—नहीं हिसाब। अगले ही मिनट क्या हो जाएगा—नहीं प्रतीक्षा। कैफियत उसे कहीं भी पहुँचानी नहीं है। वह अतीत से दबी नहीं है, वर्तमान से शक्ति नहीं है। भविष्य से प्रार्थी नहीं है।

प्रसंग: व्याख्येय कथांश कथाकार जैनंद्र द्वारा रचित 'एक रात' कहानी से संगृहीत है। सुदर्शना घर छोड़कर जयराज के साथ स्टेशन पर आ गई है? और एक ही बेंच पर जयराज के साथ कंबल में लिपटी पड़ी है। जयराज का सान्निध्य या सुदर्शना पूर्णनियुक्त हो चुकी है इसी भाव का यथार्थ चित्रण इन पंक्तियों में रचनाकार को अभिप्रेत है।

व्याख्या: लेखक कहता है कि सुदर्शना उस वक्त स्टेशन पर जयराज के साथ एक ही कंबल में लिपटी जयराज के साथ बैठी थी। वह संसार से कट चुकी थी। वह पति का घर छोड़कर आई थी, बेफिक्र थी। उसे अपने अतीत की लेश मात्र फिक्र नहीं थी। इस संसार में उसका कोई नाता-रिश्ता नहीं बचा था। वह तो हिरण के बच्चे या चिड़िया की तरह जयराज की निकटता प्राप्त किए हुए थी। कल तक वह एक ग्रामीण की बहू थी। उसका भरा पूरा परिवार था। आज उसे यह सब याद तक नहीं है। उसे भविष्य की जरा भी चिंता नहीं है। कोई भी बात सोचकर या याद कर वह परेशान नहीं है। उसे आने वाले क्षणों में घटने वाली घटनाओं का इंतजार नहीं है। उसका अतीत उस पर हावी नहीं है। वर्तमान के प्रति उसके मन में लेश मात्र भी शंका नहीं है। और न ही उसके मन में भविष्य के लिए कोई कामना शेष है।

13. "सोओ, सुदर्शना सोओ।" जयराज ने उसके गालों पर थपकते हुए कहा, "जहाँ रहो, सुख की नींद सोओ। एक रात काल की गोद भी होगी। लेकिन मैं कहता हूँ वहाँ भी तुम सुखी रहोगी। मैं अनंत जीवन नहीं मानता हूँ। मैं अनंत प्राण मानता हूँ। लेकिन मेरे लिए तो प्रणय का क्षण भी अनंत है। चिर जीवन का क्षण भी शाश्वत है—क्या पति को छोड़कर यहाँ आ गई हो? किंतु स्नेहमयी के लिए भगवान कहाँ नहीं है? और उसके लिए वर्ज्य क्या है? नियम सब नीचे हैं। मैं आज जानता हूँ, यज्ञाहूत स्नेह सदा विजयी होता है। वह बंधन तोड़ता है। क्योंकि वह मुक्तिदाता है। वह कभी असंयत नहीं है। क्योंकि सदैव वह निर्बाध है, निर्बाध है।

प्रसंग: व्याख्येय कथांश जैनंद्र कुमार द्वारा विरचित 'एक रात' कहानी से लिया गया है। सुदर्शना के मन में तटबंधन तोड़ उमड़ती प्रेम नदी की सराहना करते हुए जयराज कहता है, तुम जिस उन्मुक्त भाव से मेरी गोद में सिर रखकर सोयी हो, सोती रहो। इसी मार्मिक भाव का विवेचन करते हुए रचनाकार कहता है।

व्याख्या: स्टेशन के बेंच पर जयराज की गोदी में सुदर्शना लेटी है। जयराज उसके गाल थपथपा रहा है। वह उसे संबोधित करते हुए कहता है— तुम जैसे, जिस भाव से निर्मुक्त व दीन-दुनिया से बेखबर मेरी गोदी में सोयी हो, सोयी रहो। यह निर्मुक्त नींद तुम्हारी कभी टूटने वाली नहीं। एक दिन काल के गाल में भी तुम्हें सोना ही है। मेरा यकीन है कि तुम्हें कभी कोई चिंता सताने वाली नहीं। मैं स्वीकार करता हूँ कि जीवन ज्यादा देर नहीं चलता लेकिन आत्मा का विनाश नहीं

Notes

होता। यह शरीर निश्चित रूप से नष्ट होना है। आज तुम मेरी गोद में सो रही हो। मुझे पहली बार अनुभव हुआ है, संसार में प्रणय के क्षण कितने अमूल्य हैं। मेरा मन तो मरुस्थली था, तुमने प्रणय की गंगा बहा दी है। यह एक ज्योति प्रज्वलित कर दी है। और ऐसी ज्योति जो शायद अब कभी बुझने वाली नहीं। आज मैं यह मानने के लिए तैयार हूँ संसार में दृश्यमान सभी अनश्वर है, पर प्रणय के क्षण शाश्वत हैं। वे चिरस्थायी हैं। इनका अंत नहीं होता।

तुम अपने पति के घर को छोड़कर आई हो। इसका कारण जानता हूँ। असल में यह तुम्हारे मन में सच्चा स्नेह है। और यही स्नेह तुम्हें मेरे पास तक खींच लाया है। जहाँ सच्चे स्नेह की सरिता बहती हो, वहीं भगवान् का निवास होता है। यहाँ कोई वर्जनाएँ नहीं होती, रोक-टोक नहीं होती। सब कुछ निर्द्वन्द्व और निर्बाध होता है, सच्चे प्रेम का कोई नियम या बंधन नहीं होता। जहाँ त्याग व समर्पण का धरातल होता है, वहाँ प्रेम कभी पराजित नहीं होता। उसके सामने कहीं कोई बाधा उपस्थित नहीं होती। वहाँ नियमविहीन सिलसिला जारी रहता है। बंधनों व वर्जनाओं से मुक्ति प्रेम के माध्यम से मिलती है। यह निर्बाध होना अनिवार्य है।

विशेष: इसमें कथाकार ने प्रेम को पारिभाषित किया है और इसके स्वरूप का भी विश्लेषण किया है।

14. मुझको नहीं मालूम कि कौए जो कुछ उसका खाएंगे। उसे कुछ भी उनका सोच है। कौओं को बुला रही है, 'कौओं आओ, कौओ आओ' साग्रह कह रही है 'कौओं खाओ' वह खुश है कि कौए आ गए और वे खा रहे हैं। पर एक बात है कि ओ कौओं, जो तन चुन-चुनकर खा लिया जाएगा, उसको खा लेने में मेरी अनुमति है। वह खा-खूकर तुम सब निपटा देना। लेकिन ए मेरे भाई कौओ, इन दो नैनों को छोड़ देना। इन्हें भई रहने देना। क्या तुम नहीं जानते कि उन नैनों में एक आस बसी है, जो पराए के बस है। वे नैना पीउ की बाट में है। ऐ कौओ, वे मेरे नहीं हैं, मेरे तन के नहीं हैं। वे पीउ की आस को बसाए रखने के लिए हैं। सो, उन्हें छोड़ देना।

प्रसंग: प्रस्तुत प्रकरण कथाकार जैनैन्द्र द्वारा रचित 'जाह्वी' कहानी से लिया गया है। इसमें कथाकार ने 'जाह्वी' के अधीन मन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। जाह्वी छत पर कौओं को बुलाती है। उन्हें रोटी खिलाती है। इन कौओं को वह अपने शरीर का कण-कण खाने का निमंत्रण देती है। इसी भाव का चित्र इन पंक्तियों में प्रस्तुत है।

व्याख्या: जाह्वी कौओं को छत पर बुलाकर रोटी खिलाती है। इसके साथ ही वह इनसे निवेदन करती जाती है कि वे भले ही उसके पूरे शरीर को खा जाएँ, पर दो आंखें छोड़ देना। यद्यपि उसे इस भाव का पूरी तरह अर्थ ज्ञात नहीं था। वह भी शायद नहीं जानती थी कि वह कौओं को क्या खाने के लिए बुला रही है, और क्या छोड़ने को उनसे निवेदन कर रही है। उसे तो सिर्फ इस बात की ही खुशी रहती कि उसके बुलाने पर कौए आ जाते थे। और उसकी दी रोटी खा जाते थे। इसके साथ ही वह इन कौओं को हिदायत भी देती रहती है वे पूरे शरीर को खा जाएँ। इसमें उसे जरा भी आपत्ति नहीं है, पर उसकी इन दो आंखों को बख्शा देना, चूँकि इनमें मेरे प्रियतम बसे हैं। वह साथ ही यह भी याद दिलाती कि मेरा प्रियतम कौन है, इसकी मुझे अभी जानकारी नहीं है, बस मैं तो इतना जानती हूँ इन नयनों पर मेरे प्रियतम का अधिकार है। ये बेशक मेरे शरीर से जुड़े हैं, पर इन पर मेरा जरा भी हक नहीं है। इन आँखों का होना ही इसका सूचक है कि इनमें मेरे प्रियतम की मूरत बसी है। अतः इन पर किसी अन्य का अधिकार है। इसलिए इन्हें छोड़ देना।

विशेष: इन पंक्तियों में डॉ० मलिक मुहम्मद जायसी के एक दोहे से जाह्वी की मानसिक स्थिति का विश्लेषण किया है। प्रयोग सार्थक है।

15. मेरी पत्नी का मुख क्यों किस भाँति दिखाने लायक नहीं रहता, उसमें क्या विकृति आ रही? सो उनकी बातों से समझ नहीं आया। उनकी बातों में रस कई भाँति का मिला, तथ्य न मिला। कुछ देर के बाद उन बातों से मैंने तथ्य पाने का यत्न ही छोड़ दिया और चुपचाप पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म का विवेचन सुनता रहा। पत्र मैंने देखा। उस पत्र को देखकर मेरे मन में कल्पना हुई कि अगर वह मेरी लड़की होती तो?—मुझे यह अपना सौभाग्य मालूम नहीं हुआ कि जाह्वी मेरी लड़की नहीं है। उस पत्र की बात कई बार मन में उठी है, और घुमड़ती रह गई है। ऐसे समय चित्त का समाधान उड़ गया है और मैं शून्य भाव से, हमें जो शून्य चारों ओर से समाए हुए है उसकी ओर देखता गया हूँ।

प्रसंग: प्रस्तुत प्रकरण श्री जैनंद्र कुमार द्वारा रचित 'जाह्वी' कहानी से लिया गया है। लेखक की पत्नी ने काफी कोशिश के बाद 'जाह्वी' का संबंध अपने भाई के साथ निश्चित कर लिया था। मगर विवाह से कुछ दिन पूर्व उसने पत्नी के भाई के पास ऐसा पत्र लिखा कि संबंध के तार ही टूट गए। इन पंक्तियों में लेखक की पत्नी की विचार भूमि पर लेखक अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत कर रहा है।

व्याख्या: लेखक की पत्नी के भाई को 'जाह्वी' ने ऐसा पत्र लिखा कि उसके साथ जुड़ा उसका परिणय संबंध ही बिखर गया। लेखक की पत्नी को यह सब बुरा लगा। उसे उस लड़की के चरित्र में बुराइयाँ नजर आने लगीं। सोचने लगी, चलो, अच्छा हुआ, यह संबंध जल्दी ही टूट गया। वरना बाद में न जाने क्या-क्या गुल खिलाता। और वह किसी को मुँह दिखाने के काबिल नहीं रहती। पर लेखक की पत्नी के इस लड़की के बारे में व्यक्त विचार अटपटे लग रहे थे। उसे समझ नहीं आ रहा था आखिर इस लड़की ने ऐसा क्या कर दिया, जिससे पत्नी ने आसमान सर पर उठा लिया है। लेखक को लगता था कि पत्नी की बातों में तथ्य की मात्रा कम है, बातों की ज्यादा। वह जाह्वी व उसके माता-पिता के बारे में नफरत से भर उठी थी। जब वह इस तरह नफरत की अंगारे सुलगाने लगी तो लेखक इस मामले में विस्तार से जानना चाहा। तहकीकात के बाद मालूम पड़ा कि लेखक की पत्नी के भाई का 'जाह्वी' के साथ रिश्ता पक्का हो चुका था, मगर विवाह के कुछ दिन पहले ही जाह्वी ने उसके भाई को ऐसा पत्र लिखा कि इस संबंध के चिथड़े-चिथड़े हो गए। लेखक ने इस पत्र के बारे में अपनी पत्नी के समक्ष टिप्पणी करते हुए कहा कि अगर यह पत्र मेरी लड़की ही अपने मंगेतर को लिखती तो मैं इसे बुरा नहीं मानता। दरअसल जाह्वी ने अपने भावी के समक्ष एक सच्चाई का बयान किया है। यह कोई दोष नहीं है। सच्चाई छिपाना दोष अवश्य है। हम लोगों की दिक्कत यही है कि हम सच्चाई के सामने चट्टान से तन के खड़े नहीं हो पाते। यही बात लेखक की पत्नी पर लागू हो रही थी। वह जाह्वी, उसके माता-पिता की बुराई करते नहीं थक रही थी। उस पत्र को लेकर मैंने उस पर एक से अधिक बार किया। इस पत्र से एक ऐसा मोड़ आया, लोग विचलित हो उठे। एक अनिश्चय का वातावरण बन गया था।

विशेष: मनोवैज्ञानिक तथ्य की ओर कथाकार का संकेत है। लेखक का कहना है कि जब भी हमारे मन के प्रतिकूल कुछ घटता है, तब हमारी तत्काल प्रतिक्रिया विरोध व घृणा में परिवर्तित हो जाती है। हम उस व्यक्ति में गुणों की अपेक्षा अवगुण खोजने लगते हैं।

Notes

16. मुझे ब्रजनंदन पर आश्चर्य आकर भी आश्चर्य नहीं होता। उसने दृढ़ता के साथ कह दिया कि मैं यह शादी नहीं करूंगा। लेकिन उसने मुझको अकेले में यह भी कहा कि चाचा जी, मैं और विवाह करूंगा ही नहीं। करूंगा तो उसी से करूंगा। उस पक्ष को अपने से कह अलहदा नहीं करता है। और मैं देखता हूँ कि उस ब्रजनंदन का ठाठ-बाट आप ही कम होता जा रहा है। सादा रहने लगा है और अपने प्रति सगर्व बिल्कुल भी नहीं दीखता है और आवश्यकता से अधिक बात नहीं करता। एक बार प्रदर्शनी में मिल गया। मैं तो देखकर हैरत में रह गया। ब्रजनंदन एकाएक पहचाना भी न जाता था।

प्रसंग: व्याख्येय कथांश श्री जैनंद्र कुमार द्वारा रचित 'जाह्नवी' कहानी से लिया गया है। 'जाह्नवी' ने ब्रजनंदन से विवाह का प्रस्ताव ठुकरा दिया। इससे ब्रजनंदन की मानसिक स्थिति ही गड़बड़ा गई। इन पंक्तियों में लेखक ने इसी मनोभाव का उद्घाटन किया है।

व्याख्या: लेखक कहना चाहता है कि ब्रजनंदन की इस स्थिति को देखकर उसके मन में अचरज नहीं है। यानी 'जाह्नवी' ने पत्र लिखकर ब्रजनंदन से विवाह के प्रस्ताव को ठुकरा दिया है, और इसी कारण ब्रजनंदन का मानसिक संतुलन गड़बड़ा गया है, तो इसमें हैरानी की कोई खास वजह नहीं। ऐसा जवाब पा कोई भी व्यक्ति असंतुलित हो सकता है। लेकिन ब्रजनंदन ने स्पष्ट रूप से यह बात अवश्य कह दी, वह किसी अन्य से विवाह करने की इच्छा अब नहीं रखता। यदि वह विवाह करेगा तो सिर्फ 'जाह्नवी' से ही। अब स्थिति यह है कि वह जाह्नवी के पत्र को हरदम छाती से चिपटाए फिरता है। इस पत्र से एक पल भी विलग नहीं होता। लेखक ब्रजनंदन की स्थिति पर विचार करते हुए कहता है कि अब ब्रजनंदन में पहले जैसा उत्साह नहीं रहा है। न ही वह उल्लास दिखाई पड़ता। उसके रहन-सहन व पहनावे में बदलाव दिखाई पड़ता है। अब पहले जैसी शान-शौकत नहीं। इस बदलाव से अंदाज लगाया जा सकता है कि 'जाह्नवी' ने उसे अंदर तक कुरेद दिया हो। तभी तो वह पहले जैसे ठाठ-बाट व 'ऐश-ओ-आराम' उसे काट खाने को दौड़ते हैं। अब वह बहुत कम बोलता है। एक बार लेखक को वह किसी प्रदर्शनी में मिला। लेखक उसकी दयनीय हालत देख कर दंग रह गया। उसे अहसास हो गया कि ब्रजनंदन की ऐसी स्थिति का एक मात्र कारण जाह्नवी ही है।

17. सवरे-सवरे इतने कौए बुला लेती है कि खुद दीखती ही नहीं, काले-काले वे ही वे दीखते हैं। और वे भी उसके चारों ओर ऐसी छीना-झपटी सी करते हुए उड़ते रहते हैं और मानो बड़े स्वाद से बड़े प्रेम से चोंथ-चोंथ कर उसे खाने के लिए आपस में बदाबदी मचा रहे हों। पर उनसे घिरी वह कहती है, 'आओ, कौओ, आओ'। जब वे आ जाते हैं तो गाती है—“कागा चुन-चुन खाइयो”, और जब जाने कहाँ-कहाँ के कौए इकट्ठे के इकट्ठे काऊं-काऊं करते हुए चुन-चुन कर खाने लगते हैं तब वह चीख मार कर चिल्लाती है कि ओरे कागा, नहीं, “दो नैना मत खाइयो। मत खाइयो। मत खाइयो-पीऊ मिलन की आस।”

प्रसंग: प्रस्तुत पंक्तियाँ कथाकार जैनंद्र द्वारा रचित 'जाह्नवी' कहानी से ली गई हैं। इनमें उन्होंने 'जाह्नवी' की दिनचर्या का वर्णन किया है। जाह्नवी हमेशा छत पर जाकर कौओं को रोटी दिखा-दिखा कर बुलाती है। ऐसे करते हुए वह 'पद्मावत' की बहुचर्चित पंक्तियाँ गुनगुनाती है।

व्याख्या: कथाकार कहते हैं कि 'जाह्नवी' सुबह उठकर कौओं को बुला लेती है। जैसे कौवे उसके बुलाने के इंतजार में रहते हैं। वह जैसे ही उन्हें आवाज देती है, बड़े-बड़े कौओं का हुजूम उसकी छत पर आ धमकता है। कौए इतनी तादाद में होते हैं कि वहाँ कौओं को छोड़कर कुछ और

दीखता ही नहीं। हालत यह होती है कि उस भीड़ में 'जाह्नवी' तक नहीं दिखाई देती। कौए भी रोटी पर चोंच मार कर ऐसे झपटते हैं, मानों कोई संग्राम छिड़ा हुआ हो। कौओं में जैसे मुकाबला हो रहा हो। वह दोबारा कौओं को बुलाती है। उस वक्त उसके होठों पर पद्मावती की ये पंक्तियाँ गुनगुना उठती हैं— 'कागा चुन-चुन खाइयो' इसके बाद तो न जानें कहाँ से कौओं की भरमार हो उठती है। वे आते हैं और रोटियाँ चुन-चुन कर खाने लगते हैं। तब भी 'जाह्नवी' को लगता है, कौओं की रोटी से संतुष्ट नहीं हुई, तो वह उन्हें अपना शरीर तक समर्पित कर देती है। लेकिन उनसे यह भी कहती है कि बेशक शरीर का कण-कण निगल जाओ, कोई तकलीफ नहीं पर इन दो आँखों को बख्श देना, चूँकि इनमें प्रिय मिलन की चाह है।

स्व:मूल्यांकन

रिक्त स्थान भरें:

1. जैनैद्र की कहानियों के आठ संग्रह के नाम से प्रख्यात हैं।
2. 'रुकिया बुढ़िया' कहानी में लिखी गई।
3. 'रुकिया बुढ़िया' कहानी के मुख्य पात्र, ..., और हैं।
4. 'एक रात' कहानी का नायक और नायिका हैं।
5. 'एक रात' कहानी के दोनों पात्र न केवल हैं अपितु अंतर्मुखी भी हैं।
6. 'जाह्नवी' कहानी में तथ्य की ओर कथाकार का संकेत है।

12.2 सारांश (Summary)

- जैनैद्र की सभी कहानियाँ समीक्षा के मुख्य सिद्धांतों पर खरी उतरती हैं। समीक्षा के सभी अंगों कथानक, पात्र चरित्र-चित्रण, देश काल और वातावरण, कथोपकथन अथवा संवाद योजना, भाषा शैली, उद्देश्य को पूर्ण रूप से निभाती हैं।
- 'रुकिया बुढ़िया' कहानी में कथाकार ने रुकिया के माध्यम से भावुक नारी की करुण गाथा कही है। जिसे लिखने में वर्णनात्मक भाषा और व्यंजना प्रधान भाषा का प्रयोग किया गया है। शैली की दृष्टि से विश्लेषणात्मक शैली, काव्यात्मक शैली, मनोविश्लेषणात्मक शैली प्रयुक्त हुई है।
- 'एक रात' कहानी भी फ्रायड की मुक्त असंग पद्धति (फ्री असोसिएशन) पर आधारित है। जिनमें उनकी लिखी हुई डायरियों की मीमांसा की जाती है और उनके मन में छिपे गुप्त रहस्यों को समझा जाता है।
- 'एक रात' कहानी का कथानक स्वतंत्रता पूर्व का है। इसमें कुछेक घटनाएँ ऐसी हैं जो उस समय के वातावरण को जीवंत बनाती हैं। इसके संवाद भी चुस्त, संक्षिप्त और नाटकीय हैं। जो कथानक को निर्बाध गति से आगे बढ़ाते जाते हैं।
- 1934 में लिखी कहानी 'जाह्नवी' का आधार चरित्र विश्लेषण है। जो मध्यवर्गीय चेतना उद्घाटित करने में समर्थ है। भाषा में भावुकता, संवेदना, काव्यमय लय विद्यमान है। इसमें प्रेम और इसकी

Notes

पीर की अभिव्यक्ति की गई है। कहानी में व्यक्तिवादी जीवन दर्शन और भावुकता का प्राधान्य है। और ज्ञान पराजित है।

12.3 शब्दकोश (Keywords)

निष्प्रयोजन: बिना किसी उद्देश्य के।

विनाशकारी: दमनकारी।

मार्मिक: दुखी।

12.4 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. जैनेंद्र की कहानी 'रुकिया बुढ़िया' की तात्त्विक समीक्षा करें।
2. 'रुकिया बुढ़िया' कहानी की भाषा शैली और उद्देश्य पर प्रकाश डालें।
3. जैनेंद्र की कहानी 'एक रात' की तात्त्विक समीक्षा करें।
4. कहानी 'एक रात' के पात्रों के चरित्र की व्याख्या कीजिए।
5. सिद्ध कीजिए कि 'जाहूवी' कहानी के माध्यम से लेखक ने दो पीढ़ियों के स्वाभाविक मतभेद को उजागर किया है।
6. कहानी 'जाहूवी' के कथानक और देशकाल के आधार पर समीक्षा कीजिए।
7. जाहूवी की पात्र योजना पर लेख लिखिए।
8. जैनेंद्र जी ने जाहूवी कहानी में किस भाषा शैली का प्रयोग किया है।
9. जैनेंद्र जी की कहानियाँ— 'रुकिया बुढ़िया', 'एक रात' और 'जाहूवी' के मुख्य पात्रों का संक्षेप में वर्णन करें।

उत्तर: स्व:मूल्यांकन

- | | |
|-------------------------|--------------------|
| 1. जैनेंद्र की कहानियाँ | 2. 1932 |
| 3. रुक्मिणी, दीना, चंपो | 4. जयराज, सुदर्शना |
| 5. व्यक्तिवादी | 6. मनोवैज्ञानिक |

12.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



हिंदी कहानी सिद्धांत और विवेचन — श्रीमती गिरीश रस्तोगी, रत्न प्रकाशन, आगरा।
हिंदी कहानी के बदलते प्रतिमान — डॉ० रघुवरदयाल वाष्णीय, पाण्डुलिपी प्रकाशन।
समीक्षा — सं. गोपाल राय, पटना (पत्र पत्रिकाएँ)।